GUARANTEED CIRCULATION 11,000 Copies

Regd. No. A--1154

वर्ष ७, खण्ड २] **अक्टूबर, १९२९** [संख्या ६, पूर्ण संख्या ८४

वार्षिक चन्दा ६॥) }
छः माही ३॥) }

PRINTED AT

{ विदेश का चन्दा ८॥)
{ इस अङ्क का मूल्य ॥)

THE FINE ART PRINTING COTTAGE, ALLAHABAD.

विषय सूची

चित्र-सूची

काश्मीरी फूल

एकत्रित कर, बिखराया-सा देख सृष्टि का सारा सार,
गढ़ कर मोहक मूर्त्ति तुम्हारी, हुआ सफल विधि का व्यापार !
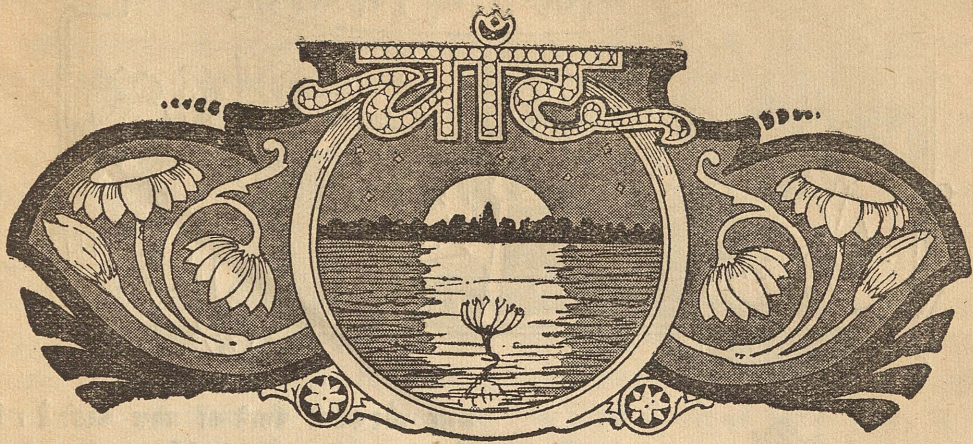
C. P. and Berar Government have also deleted from the approved list and is no longer approved by the U. P. Government and should not be purchased by any recognised institution of these Provinces. No such news from Punjab yet.

अनुरोध

[रचयिता—श्री० जटाधरप्रसाद जी शर्मा 'विकल']

अरे विश्व के माली अब तक—
नहीं खिलीं ये कलियाँ !
फिर निर्दयता से ले कर में,
क्यों पहुँचा, ये डलियाँ ?

अभी छोड़ दे इन्हें यहीं,
नाचेंगे इन पर मधुकर !
खिलने दे मिलने दे उनसे—
प्रेम-राग में पग कर !!

गाकर तान सुनाएँगे वे,
उस अगाध का गाना ;
जिसका भेद नहीं है तूने,
पथ पर अब तक जाना !!

अक्टूबर, १९२९

राष्ट्रीय शिक्षा

(३)

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली

पिछले दो अङ्कों में बताया जा चुका है कि संसार की सभी उन्नतिशील जातियाँ अपने ही आदर्शों के अनुसार अपनी सभ्यता और उसके भिन्न-भिन्न अङ्गों का निर्माण करती हैं। राष्ट्रीय सभ्यता का जो आदर्श होता है, राष्ट्रीय साहित्य उसी का गुण-गान करता है ; राष्ट्रीय कला के द्वारा उसी का चित्रण किया जाता है और राष्ट्रीय शिक्षा उसी को अमर और स्थायी बनाने का प्रयत्न करती है। शिल्प और व्यापार, सेना और राजनीति, प्रभुत्व और ऐश्वर्य—राष्ट्रीय सभ्यता के पोषण और रक्षण के साधन-मात्र हैं। इन साधनों के अभाव में राष्ट्रीय सभ्यता अपना अस्तित्व बनाए रख सकती है, पर सभ्यता के अभाव में ये साधन एक दिन के लिए भी सुरक्षित नहीं रह सकते। सभ्यता ही जातियों का जीवन है। जब तक सभ्यता जीवित रहती है, तब तक जातियाँ जीवित रहती हैं और जब सभ्यता का पतन, पराजय या विनाश हो जाता है, तब जातीय जीवन का भी पतन, पराजय या अन्त अनिवार्य है। जिस जाति की सभ्यता अक्षुण्ण है—जिस जाति के धर्म, साहित्य, कला, शिक्षा और सामाजिक सङ्गठन पर विदेशी सभ्यता का विषैला प्रभाव नहीं पड़ा है, वह जाति अपनी खोई हुई सैनिक शक्ति को पुनः प्राप्त कर सकती है; वह जाति अपनी पराजित राष्ट्रीयता को पुनः परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त कर सकती है; वह जाति अपने खोए हुए शिल्प और व्यापार को पुनः प्राप्त कर सकती है; किन्तु जो जाति, विवश या मोहान्ध होकर, विदेशी सभ्यता का अनुकरण करने लगती है; जो जाति अपने धर्म, साहित्य, शिक्षा, सामाजिक सङ्गठन आदि को तुच्छ समझ कर विदेशियों के धर्म, साहित्य, शिक्षा, सामाजिक सङ्गठन आदि को अपनाने लगती है; जो जाति अपने पूर्वजों की चरित-गाथा को हेय और निन्दनीय समझ कर विदेशियों के चरित्र को अपना आदर्श मानने लगती है—वह जाति न तो अपनी राष्ट्रीय

कर सकती है और न उस जाति का अस्तित्व ही संसार में अधिक दिनों तक क़ायम रह सकता है।

इसीलिए कोई जाति जब दूसरी जाति को पराजित करके उसकी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का अपहरण करती है तो वह अपनी विजय को दृढ़ और स्थायी बनाने के लिए पराजित जाति की सभ्यता, धर्म, साहित्य और मनोवृत्ति पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा करती है। नैतिक विजय के अभाव में राष्ट्रीय विजय का स्थायी होना असम्भव है। कोई भी पराजित जाति, जब तक उसके हृदय में आत्म-सम्मान का लेशमात्र भी शेष है, तब तक अपने नैसर्गिक अधिकारों को किसी भी प्रकार तिलाञ्जलि नहीं दे सकती। जिस जाति का अन्तःकरण लोभ, विलासिता और तमोगुण से पूर्णतया आच्छन्न नहीं हो गया है; जिस जाति के हृदय में अपनी सभ्यता और धर्म के प्रति श्रद्धा का लेशमात्र भी अवशिष्ट है; जिस जाति के व्यक्तियों में समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का थोड़ा भी ज्ञान है; वह जाति विदेशी शासन के सामने क्षण-भर के लिए भी अपना मस्तक नहीं झुका सकती। जिस समय जाति की नैतिक शक्तियाँ दुर्बल पड़ जाती हैं, उसी समय उस पर विदेशी शासन का प्रभुत्व स्थापित होता है और दासता के विषैले प्रभाव के कारण उसकी रही-सही नैतिक शक्तियों का भी क्रमशः ह्रास होने लगता है। विदेशी शासन से बढ़ कर जातीय चरित्र को भ्रष्ट करने वाली और कोई भी दूसरी वस्तु इस संसार में नहीं है। ग़ुलामी जातीय चरित्र के पतन का कार्य और कारण—दोनों ही है। नैतिक पतन के कारण जातियाँ ग़ुलाम बनती हैं और ग़ुलामी के कारण उनका नैतिक पतन होता है। जिस प्रकार शरीर के कमज़ोर होने पर उसमें रोग के कीटाणु घुस जाते हैं और उसके भीतर स्थायी रूप से अपना घर बनाने के लिए शरीर की जीवनी-शक्तियों को क्रमशः दुर्बल बनाते ही चले जाते हैं, उसी प्रकार जाति के चरित्र का पतन होते ही उस पर विदेशी शक्तियों का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है और वे शक्तियाँ अपने प्रभुत्व को स्थायी बनाने के लिए विजित जाति के चरित्र को दिनोंदिन दुर्बल, भ्रष्ट और पतित बनाने लगती हैं।

नैतिक विजय राष्ट्रीय विजय का एक अवश्यम्भावी परिणाम है; क्योंकि पराजित जाति के बल और पौरुष, स्वाभिमान तथा आत्मगौरव को पूर्णतया पददलित तथा समूल नष्ट किए बिना संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी उसे पराधीनता के अपमानजनक बन्धन में बाँध कर नहीं रख सकती। यदि विजित जाति अपने जीवन की पराधीन शताब्दियों में भी अपने हृदय में आत्माभिमान और आत्मगौरव की उज्ज्वल दीप-शिखा को प्रज्वलित रख सके, तो भविष्य में किसी न किसी दिन उसका स्वतन्त्र होना उतना ही निश्चित है, जितना जन्म के बाद मृत्यु और सृष्टि के बाद प्रलय का होना। जिस जाति का हृदय विदेशी शासकों की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता—जिस जाति की मनोवृत्ति अपने को विदेशी सभ्यता की ग़ुलामी से मुक्त रखती है, वह जाति जब तक स्वतन्त्र नहीं हो जाती, तब तक न तो स्वयं क्षण भर के लिए भी विश्राम लेती है और न अपने विदेशी शासकों को ही चैन से बैठने देती है। वह बार-बार विद्रोह करती है; बार-बार पराजित होकर कुचले जाने पर भी वह विदेशी शासन के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा खड़ा करती है और अपनी जान पर खेल कर भी अपनी स्वतन्त्रता के शत्रुओं की जान लेने पर उतारू हो जाती है। इसी विपत्ति से बचने के लिए कुशल विजेता, राजनीतिक विजय प्राप्त करने के बाद, नैतिक विजय का आश्रय लेते हैं। वे विजित जाति की सैनिक शक्ति को पङ्गु बना कर ही सन्तुष्ट नहीं होते, वरन् उसमें अपनी सभ्यता और धर्म, साहित्य और कला, शिष्टाचार और रहन-सहन की प्रणाली का भी प्रचार करते हैं। विजयी जाति विजित जाति के मन में सदा ही आत्म-अवमानना और आत्मग्लानि के भावों को दृढ़ करने की चेष्टा करती है, जिससे भविष्य में विजित जाति के विद्रोह करने की कोई आशङ्का न रह जाय। विजयी जाति विजित जाति को बताती है कि तुम कमज़ोर और असभ्य हो; तुम्हारे पूर्वज जङ्गली और मूर्ख थे; तुम्हारी वर्तमान दशा इतनी हीन और दयनीय है कि हमारी अनुपस्थिति में एक क्षण के लिए भी तुम्हारा जीना मुश्किल है। इस असहाय अवस्था में यदि हम तुम्हें छोड़ दें, तो तुम्हारी भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी श्रेणियाँ या तो आपस में ही लड़ मरेंगी या तुम्हारे पड़ोसी राष्ट्र तुम पर आक्रमण करके सदा के

लिए तुम्हें अपना गुलाम बना लेंगे। इस विपज्जनक अवस्था में तुम्हारी रक्षा करना हमारा धर्म है, क्योंकि हम ईश्वर की ओर से तुम्हारी रक्षा के लिए भेजे हुए देवदूत हैं! हमारी आज्ञाओं को मानने में ही तुम्हारा कल्याण है। हमारी सभ्यता श्रेष्ठ है; हमारा धर्म महान् है; हमारा शासन तुम्हारे रामराज्य से भी अधिक सुखकर और शान्तिमय है। ऐसा उत्तम शासन तुम्हें न तो भूत-काल में कभी प्राप्त हुआ था और न भविष्य में ही कभी नसीब होगा। हमारी छत्रछाया में तुम सुख से रहो और हमसे सभ्यता और धर्म सीख कर अपने जीवन को धन्य करो। इस प्रकार का भुलावा देकर विजयी जाति विजित जाति को सदा अपने क़ब्ज़े में रखने की चेष्टा करती है।

ग्रीस का प्रसिद्ध विजेता सिकन्दर, जिसने अपनी महत्वाकांक्षा की अग्नि में कितने ही उन्नतिशील और लहलहाते हुए राज्यों के सुख और समृद्धि को जला कर ख़ाक कर दिया, जिसने कितने ही हरे-भरे देशों को उजाड़ कर सुनसान कर दिया और जिसने कितने ही निर्दोष और सुखी परिवारों को दीन और अनाथ बना कर छोड़ दिया, जब वह किसी देश को जीतता था, तो सबसे पहले उस देश में ग्रीक सभ्यता के प्रचार का प्रबन्ध करता था; ग्रीक विद्यालय, ग्रीक नाट्यशाला, ग्रीक स्नानागार और ग्रीक संस्थाएँ खुलवाता था तथा ग्रीक भाषा और ग्रीक साहित्य का पठन-पाठन जारी कराता था। सिकन्दर की सेना के पीछे-पीछे ग्रीक विद्वानों, कवियों, लेखकों, कलाकारों और कारीगरों की एक दूसरी सेना चलती थी, जो किसी देश के पराजित होते ही उसमें महामारी के कीटाणुओं की तरह फैल जाती थी और उस देश के निवासियों को ग्रीक सभ्यता का गुलाम बनाने की क्रिया आरम्भ कर देती थी। रोमन सेनापति जब किसी देश को जीतते थे तो वे भी अपनी विजय को स्थायी बनाने के लिए उस देश में रोमन सभ्यता का प्रचार करते थे, वहाँ की प्रजा को रोम के धर्म में दीक्षित करते थे और उनकी रहन-सहन को रोमन नागरिकों की रहन-सहन के साँचे में ढालने का प्रबन्ध करते थे। रोमन लोगों ने ब्रिटेन पर भी बहुत दिनों तक शासन किया था और ब्रिटेन की जङ्गली प्रजा में अपनी सभ्यता का इस ख़ूबी से प्रचार किया था कि ब्रिटेन-निवासी सब प्रकार उनके गुलाम बन गए थे। रोमन शिक्षा के फल-स्वरूप ब्रिटन लोगों के चरित्र में परावलम्बन का भाव इतनी गहराई तक घर कर गया था कि रोमन साम्राज्य की शक्ति के कम-ज़ोर होने पर रोमन शासक जब ब्रिटेन छोड़ कर सदा के लिए रोम लौटने लगे, तो ब्रिटेन-निवासियों का हृदय भय और त्रास से काँप उठा था! उनकी समझ में नहीं आता था कि रोमन शासकों के चले जाने के बाद हमारी रक्षा कौन करेगा! वे रोम की ओर प्रस्थान करने वाले शासकों के पीछे रोते और चिल्लाते हुए दौड़ते थे और उनसे बड़ी ही दीन-भाषा में गिड़गिड़ा कर कहते थे कि आप हमारे देश में ठहर जाइए! आपके न रहने से हमारा जीना असम्भव हो जायगा!! एक राष्ट्र का इससे बढ़कर पतन और क्या हो सकता है! वास्तव में नैतिक पराजय इतनी भयङ्कर होती है कि एक बार जो राष्ट्र इसके चङ्गुल में फँस जाता है, उसके लिए पुनर्जन्म की यन्त्रणा को भोग कर निकलने के अतिरिक्त जीवन धारण करने का और कोई मार्ग ही शेष नहीं रह जाता!

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जब भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का अपहरण किया, तो उसे भी अपनी राष्ट्रीय विजय को स्थायी बनाने के लिए भारतवर्ष पर नैतिक विजय प्राप्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। कम्पनी के धूर्त कर्मचारियों ने देखा कि भारतवर्ष के सामाजिक जीवन को जब तक हम पूर्णतया कुचल न डालेंगे, तब तक भारत-रूपी सोने की चिड़िया को सदा के लिए हम अपने चङ्गुल में फँसा कर नहीं रख सकते! अङ्गरेज़ जाति को रोमन साम्राज्य की अधीनता में नैतिक गुलामी का कड़वा अनुभव हुआ था। इस अवसर पर कम्पनी के अधिकारियों ने अपने उस जातीय अनुभव से लाभ उठाया और भारतवर्ष को नैतिक गुलामी की ज़ञ्जीर से कस देने के लिए जितने भी साधनों की कल्पना की जा सकती थी उन सभी साधनों का उन्होंने उपयोग किया। कम्पनी ने भारतीय बच्चों को शिक्षा देने के लिए अङ्गरेज़ी ढङ्ग के स्कूल और कॉलेज खोले, जिनमें भारतीय भाषा और भारतीय साहित्य के बदले अङ्गरेज़ी भाषा और अङ्ग-रेज़ी साहित्य की पढ़ाई होने लगी। इन नवीन शिक्षण-संस्थाओं में ब्राह्मण आचार्य का स्थान अङ्गरेज़ प्रिंसिपल ने ग्रहण किया, क्योंकि अङ्गरेज़ जाति सभी सम्मानित

पदों पर अपना अधिकार रखना चाहती थी, जिससे भारतवासियों को पद-पद पर अपनी हीनता और अङ्गरेज़ जाति की श्रेष्ठता का अनुभव हो। शासन के सभी उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर अङ्गरेज़-अफ़सरों की नियुक्ति की गई और भारत-सन्तानों को उनके सामने सिर झुकाने तथा छोटी-छोटी नौकरियों के लिए उनसे प्रार्थना करने के लिए बाध्य किया गया। व्यवस्थापिका सभा की स्थापना करके एक ऐसे स्थान की सृष्टि की गई, जहाँ हिन्दू-जाति के बड़े-बड़े नेता अङ्गरेज़ों से मिल सकें और उन्हें प्रत्यक्ष रूप से अङ्गरेज़ों की श्रेष्ठता और अपनी दीनता का अनुभव हो। कुछ लोगों को अङ्गरेज़ी शिक्षा, सरकारी नौकरियाँ और सम्मानास्पद उपाधियों का प्रलोभन देकर, एक ऐसी श्रेणी तैयार की गई, जो भारत में अङ्गरेज़ी शासन के वर्तमान रहने में अपना हित समझे तथा अन्य लोगों को इस शासन के फ़ायदे समझाया करे। अङ्गरेज़ी सरकार केवल इस प्रकार की राजनीतिक चालें चल कर ही सन्तुष्ट न हुई, उसने भारतवासियों के सामाजिक जीवन के प्रत्येक अङ्ग पर अपना प्रभाव डालने की चेष्टा की। किन्तु यहाँ इन विषयों की विस्तृत आलोचना कर इस लेख के कलेवर को बढ़ाना अभीष्ट नहीं है। सुविधानुसार इस विषय पर फिर कभी प्रकाश डाला जायगा। यहाँ हम केवल आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में ही अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं।

आजकल भारतवर्ष में जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है, वह भारत की प्राचीन सभ्यता की उपज नहीं है; उसका जन्म आज से केवल डेढ़ सौ वर्ष पहले यूरोपीय देशों में हुआ था। इसके पहले यूरोप में कोई भी उल्लेख-योग्य शिक्षा-प्रणाली प्रचलित न थी। १८वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप के प्रायः सभी देशों की प्रजा अशिक्षा और अज्ञान के गहरे अन्धकार में डूबी हुई थी। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopedia Britanica) के प्रमाणानुसार सम्पूर्ण १८वीं शताब्दी भर यूरोप के किसी भी देश में प्रजा को शिक्षा देने का कोई समुचित प्रबन्ध न था (. . . the mass of the people in every European country remained without schooling throughout the 18th Century.)। १८ वीं शताब्दी के अन्त में यूरोपियन समाज पर फ़्रान्स के प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो के विचारों का प्रभाव पड़ा और उसी समय आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का जन्म हुआ।

भारतवर्ष की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली और रूसो द्वारा निर्मित आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के मौलिक सिद्धान्तों में इतना अधिक भेद है कि दोनों शिक्षा-प्रणालियों की किसी भी प्रकार तुलना नहीं की जा सकती। भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली—जहाँ मनुष्य को इन्द्रियों का स्वामी बनाने की चेष्टा करती थी, वहाँ आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का अन्तिम ध्येय मनुष्य को इन्द्रियों का ग़ुलाम बनाना है! भारतीय शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों के जीवन को धर्ममय बनाने का प्रयत्न करती थी, तो आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में धर्म और सदाचार का नाम लेना भी पाप समझा जाता है। भारतीय शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों को संयम और त्याग का पाठ पढ़ाती थी, तो आधुनिक शिक्षा-प्रणाली नवयुवकों के हृदय में भोग और विलास की वासना जाग्रत करती है। भारतीय शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों को सुशील और संयत बना कर उन्हें आदर्श सामाजिक व्यवस्था—वर्णाश्रम धर्म—के पालन में प्रवृत्त करती थी, तो आधुनिक शिक्षा-प्रणाली नवयुवकों को उच्छृङ्खल और मोहान्ध बना कर समाज में अशान्ति और अव्यवस्था के बीज बो रही है! दोनों शिक्षा-प्रणालियों में इतना अन्तर है, जितना सत्य और असत्य में, पुण्य और पाप में, तम और प्रकाश में, स्वर्ग और नरक में। दोनों को यदि परस्पर-विरुद्ध-दिशा-गामिनी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक मानव-चरित्र के उज्ज्वल अंश को प्रकाशित करके उसे अनन्त आलोक, अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति के राज्य में पहुँचा देना चाहती है, तो दूसरी मानव-हृदय की कलुषित प्रवृत्तियों को जाग्रत करके जीवन को अनन्त अन्धकार और अनन्त निराशा के अथाह सागर में डुबा देने पर तुली हुई है!

दोनों शिक्षा-प्रणालियों के इस विकट अन्तर का वास्तविक कारण जानने के लिए हमें भारतीय तथा यूरोपीय सभ्यताओं के मूल सिद्धान्तों की तुलना करनी पड़ेगी। भारतीय सभ्यता निवृत्ति-प्रधान है, यूरोपीय सभ्यता प्रवृत्ति-प्रधान। भारतीय सभ्यता का आदर्श त्याग है, यूरोपीय सभ्यता का आदर्श भोग। भारतीय सभ्यता शान्ति और सन्तोष को महत्त्व देती है, तो यूरो-

पीय सभ्यता क्रियाशीलता और असन्तोष को। भारतीय स्वभाव त्याग और तपस्या की पूजा करता है, तो यूरोपीय स्वभाव भोग और विलास की उपासना। भारतवासी शरीर को नाशमान् और आत्मा को अमर समझते हैं; वे शारीरिक सुखों को त्याग कर आत्मिक उत्कर्ष की साधना करते हैं। इसके विपरीत यूरोपियन जातियाँ शरीर और शारीरिक सुख को ही अपना सर्वस्व समझती हैं; वे आत्मा और परमात्मा के सारे झगड़ों से दूर रह कर स्वच्छन्द भाव से शारीरिक सुख का भोग करती हैं। भारतवासी अरूप और निराकार की उपासना करते हैं; यूरोप के बड़े से बड़े दार्शनिक भी अरूप और निराकार की बात सुन कर घबरा जाते हैं; उनकी आँखों में रूप और आकार ने इतना स्थायी घर कर लिया है कि वे अरूप और निराकार की कल्पना भी नहीं कर सकते। भारतवासी मृत्यु को 'देह-त्याग' कहते हैं यूरोपियन लोग मृत्यु को 'आत्मा का त्याग' (giving up of the ghost) कहते हैं। भारतीय मनोवृत्ति देह को गौण और आत्मा को प्रधान समझती है, यूरोपीय मनोवृत्ति आत्मा को गौण और देह को प्रधान मानती है। इस तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों सभ्यताएँ सर्वथा विरुद्ध-धर्मी हैं। भारतीय सभ्यता का जो ध्येय है, यूरोपीय सभ्यता उसे त्याज्य समझती है और यूरोपीय सभ्यता जिस वस्तु को अपना ध्येय मानती है, उसे भारतीय सभ्यता निरर्थक और निकृष्ट समझ कर त्यागने का उपदेश देती है। ऐसी दशा में दोनों सभ्यताओं से उत्पन्न होने वाली शिक्षा-प्रणालियों में महान् अन्तर का होना स्वाभाविक ही है। दोनों शिक्षा-प्रणालियाँ दो भिन्न-भिन्न आदर्शों को, जो एक दूसरे के सर्वथा विरुद्ध हैं, पूर्ण करने की चेष्टा करती हैं। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली उस व्यक्ति के जीवन को पूर्ण बना सकती है, जो पाश्चात्य सभ्यता का अनुयायी है, किन्तु भारतीय सभ्यता के अनुयायियों के जीवन को पूर्ण बनाने में वह कदापि समर्थ नहीं हो सकती। इसी प्रकार भारतीय शिक्षा-प्रणाली भारतवासियों के लिए ही लाभदायक हो सकती है; यूरोपियन जातियाँ, जिनका आदर्श भोग और विलास है, इस शिक्षा-प्रणाली से कोई लाभ नहीं उठा सकतीं। यूरोपियन जातियों के सौभाग्यवश उनमें भारतीय शिक्षा का ज़बर्दस्ती प्रचार करने वाली कोई संस्था संसार में विद्यमान नहीं है। भारतवर्ष ने न तो भूतकाल में किसी देश को पशुबल से जीत कर उसकी सभ्यता का नाश करने के लिए उसमें अपनी संस्कृति का प्रचार किया था और न भविष्य में ही वह इस प्रकार के घृणित कार्यों से अपने पवित्र नाम को कलङ्कित करना चाहता है; किन्तु भारतवर्ष की आदर्श शिक्षा-प्रणाली का जिन क्रूर और हृदय-हीन उपायों से नाश किया गया है, उसकी अनुपम सभ्यता को जिस अन्याय और अत्याचार-पूर्वक पददलित किया गया है तथा उसकी स्वतन्त्र और त्यागमय मनोवृत्ति को जिन अनुचित और निन्दनीय उपायों से पराधीन और पतित बनाने की चेष्टा की गई है, उनकी रोमाञ्चकारी कहानी पढ़ कर कोई भी सहृदय मनुष्य घृणापूर्वक उनका निषेध किए बिना नहीं रह सकता।

भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

अङ्गरेज़ों के आगमन से पूर्व सार्वजनिक शिक्षा तथा विद्या-प्रचार की दृष्टि से भारतवर्ष की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ देशों में हुआ करती थी। पहले एक स्थान पर कहा जा चुका है कि आज से केवल डेढ़ सौ वर्ष पहले यूरोप के प्रायः सभी देशों की प्रजा अशिक्षा और अज्ञान के घने अन्धकार में डूबी हुई थी। किन्तु उस समय भी भारतवर्ष में शिक्षा का इतना अधिक प्रचार था कि किसी भी देश में प्रतिशत जन-संख्या के हिसाब से पढ़े-लिखे मनुष्यों की संख्या इतनी अधिक न थी, जितनी भारतवर्ष में। उस समय भारतवर्ष में सर्व-साधारण को शिक्षा देने के लिए प्रधानतः चार प्रकार की शिक्षण-संस्थाएँ थीं—(१) अनेक विद्वान् ब्राह्मण अपने घर पर विद्यार्थियों को शिक्षा दिया करते थे, (२) प्रायः सभी मुख्य-मुख्य नगरों में संस्कृत-साहित्य की शिक्षा के लिए 'टोल' या विद्यापीठ स्थापित थीं, (३) उर्दू और फ़ारसी के हज़ारों मदरसे हिन्दू और मुसलमान-बच्चों को शिक्षा देते थे और (४) सभी गाँवों में ग्रामीण बच्चों की शिक्षा के लिए कम से कम एक पाठशाला होती थी। भारतवर्ष की शिक्षा कितनी उन्नत और बढ़ी-चढ़ी थी, इसका प्रमाण अङ्गरेज़-लेखकों की पुस्तकों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काग़ज़ों तक में पाया जाता है। सन् १८६८ ई० में बङ्गाल का एक इन्स्पेक्टर ऑफ़ स्कूल्स पञ्जाब के स्कूलों की दशा का निरीक्षण करने के लिए भेजा

गया था। उसने सरकार को जो रिपोर्ट भेजी, उसका एक अंश इस प्रकार है :—

"The indigenous education of India was founded on the sanction of the Shastras, which elevated it into religious duties and confered dignity on the commonest transactions of everyday life. The existence of village communities which left not only their municipal, but also in part their revenue and judicial administrations, in the hands of the people themselves, greatly helped to spread education among all the different members of the community. He will see the fruits of the indigenous system in the numberless *Pathshalas*, *Chatsals* and *tols* which still overspread the country, and which, however wretched their present condition, prove by their continued existence, in spite of neglect, contempt, and other adverse circumstances of a thousand years, the strong stamina they acquired at their birth."

अर्थात्—"भारत की राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण उन शास्त्रीय विधानों के अनुसार हुआ था, जो जीवन के साधारण दैनन्दिन कामों में भी गौरव का सञ्चार कर देते हैं और इसीलिए भारत की शिक्षा-पद्धति को एक धार्मिक महत्व प्राप्त हो गया था। ग्राम-पञ्चायतें, जिन्होंने न केवल गाँव की सफ़ाई का कार्य, बल्कि माल-गुज़ारी और न्याय-विभागों के कार्यों का एक अंश भी जनता के हाथों में सौंप दिए थे, समाज की भिन्न-भिन्न श्रेणियों को शिक्षित बनाने में बहुत सहायता पहुँचाती थीं। इसी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का फल है कि आज भी देश में असंख्य पाठशालाएँ, चटसाल और टोल विद्यमान हैं। इन संस्थाओं की वर्तमान दशा चाहे कितनी ही गिरी हुई क्यों न हो, किन्तु हज़ारों वर्षों की उदासीनता, घृणा और प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच में भी जीवित रह कर ये संस्थाएँ इस बात को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर देती हैं कि इनके जन्म के समय इनमें कितनी अधिक क्षमता रही होगी।"

भारतीय शिक्षा के विस्तार के सम्बन्ध में इङ्गलिस्तान की पार्लमेण्ट के प्रसिद्ध सदस्य केर हार्डी ने अपनी "इण्डिया" नाम की पुस्तक में लिखा है :—

"Max Muller, on the strength of official documents and a missionary report concerning education in Bengal prior to the British occupation, asserts that there were then 80,000 native schools in Bengal, or one for every 400 of the population. Ludlow, in his 'History of British India,' says that 'in every Hindoo village which has retained its old form, I am assured that the children generally are able to read, write, and cipher, but where we have swept away the village system, as in Bengal, there the village school has also disappeared.'"

अर्थात्—"मैक्समूलर ने, सरकारी काग़ज़ों और एक मिशनरी की रिपोर्ट के, जो बङ्गाल पर अङ्गरेज़ों का प्रभुत्व स्थापित होने के पहले वहाँ की शिक्षा के सम्बन्ध में लिखी गई थी, आधार पर लिखा है कि उस समय बङ्गाल में ८०,००० देशी पाठशालाएँ स्थापित थीं अर्थात् प्रान्त के प्रत्येक ४०० मनुष्यों पीछे एक पाठशाला थी। लडलो अपने 'ब्रिटिश भारत के इतिहास' में लिखता है कि—'प्रत्येक हिन्दू-गाँव में, जिसका पुराना सङ्गठन अभी तक बना हुआ है, मेरा विश्वास है कि आम तौर पर सब बच्चे लिखना-पढ़ना और हिसाब करना जानते हैं; किन्तु जहाँ हम लोगों ने ग्राम-पञ्चायतों का नाश कर दिया है, जैसे बङ्गाल में, वहाँ ग्राम-पञ्चायत के साथ-साथ पाठशाला भी लुप्त हो गई है।'"

भारतवर्ष की ग्रामीण शिक्षा-पद्धति की प्रशंसा केवल मैक्समूलर जैसे प्रकाण्ड पण्डितों और लडलो जैसे प्रसिद्ध इतिहास-लेखकों ने ही नहीं की है; ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गुप्त काग़ज़ों में भी इस शिक्षा-पद्धति की भूरि-भूरि प्रशंसा पाई जाती है और कम्पनी के डाइरेक्टर्स तो इसकी उत्तमता से इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपने देश में इसका अनुकरण तक करने की चेष्टा की थी। पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली में आजकल जिस पद्धति को "म्युचुअल ट्यूशन" कहते हैं, उसे यूरोपियन देशों ने वास्तव में भारतवर्ष से ही ग्रहण किया था।

भारतीय ग्रामीणों की शिक्षा के सम्बन्ध में सन् १७२३ ई० की कम्पनी की एक सरकारी रिपोर्ट में लिखा है :—

" . . . the peasantry of few other countries would bear a comparison as to their state of education with those of many parts of British India." *

अर्थात्—"ब्रिटिश-भारत के अनेक भागों के किसानों की दशा शिक्षा-प्रचार की दृष्टि से इतनी ऊँची है कि इस विषय में संसार के किसी भी देश के किसानों की तुलना उनके साथ नहीं की जा सकती।"

३ जून सन् १८१४ को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बङ्गाल के गवर्नर-जनरल के नाम जो पत्र भेजा था, उससे पता लगता है कि डॉक्टर एण्ड्रूबेल नामक एक शिक्षा-प्रेमी पादरी ने इस देश से इङ्गलैण्ड वापस जाने पर वहाँ के बच्चों को भारतीय शिक्षा-प्रणाली के अनुसार शिक्षा देना आरम्भ किया था और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उसके कार्य को बहुत पसन्द भी किया था। उक्त पत्र का एक अंश इस प्रकार है :—

"The mode of instruction that from time immemorial has been practised under these masters has received the highest tribute of praise by its adoption in this country, under the direction of the Reverend Dr. Bell, formerly chaplain in Madras, and it is now become the mode by which education is conducted in our national establishments, from a conviction of the facility it affords in the acquisition of language by simplifying the process of instruction."

"This venerable and benevolent institution of the Hindoos is represented to have withstood the shock of revolutions. . . "

अर्थात्—"भारतवर्ष में जो शिक्षा-प्रणाली वहाँ के आचार्यों के अधीन बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है, उसकी इस देश में बहुत अधिक प्रशंसा हुई है, यहाँ तक कि वह प्रणाली मद्रास के भूतपूर्व पादरी रेवरेण्ड डॉक्टर बेल की देख-रेख में इस देश में भी प्रचलित की गई है। हमारी राष्ट्रीय शालाओं में इस समय उसी पद्धति से शिक्षा दी जाती है, क्योंकि हमें विश्वास होगया है कि इससे भाषा का सीखना और सिखाना बहुत ही सहल हो जाता है।

"कहा जाता है कि हिन्दुओं की इस अत्यन्त प्राचीन और उपयोगी संस्था को राजनीतिक क्रान्तियों से भी कोई धक्का नहीं पहुँच सका है × × ×।"

अङ्गरेज़ जाति भारतवर्ष की जिस शिक्षा-प्रणाली के गुणों पर इतना अधिक मुग्ध थी कि अपने देश में उसका अनुकरण तक किया था, उसी शिक्षा-प्रणाली को कम्पनी जहाँ-जहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करती गई, वहाँ से समूल नष्ट करती गई। कम्पनी के व्यापार, लूट तथा अत्याचार से भारतवर्ष के व्यापार और उद्योग-धन्धों को गहरा धक्का लगा; देश बड़ी शीघ्रता-पूर्वक ग़रीब होने लगा और आर्थिक कठिनाइयों से विवश होकर साधारण स्थिति के बहुत से बालकों को पाठशाला त्याग देनी पड़ी। कम्पनी के राज्य में भारतीय शिक्षा के ह्रास का दूसरा बड़ा कारण यह था कि कम्पनी ने जान-बूझ कर भारत की ग्राम-पञ्चायतों का विनाश किया और पञ्चायतों के साथ ही साथ उनके द्वारा सञ्चालित होने वाली असंख्य पाठशालाओं का भी अन्त हो गया। इतने पर भी जब कम्पनी के कुटिल और क्रूर कर्मचारियों को सन्तोष न हुआ, तो उन्होंने भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में प्राचीन हिन्दू और मुसलमान-नरेशों की ओर से शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं को जो आर्थिक सहायता और जागीरें बँधी हुई थीं, उन्हें छीनना आरम्भ किया और भारतवासियों के बार-बार प्रार्थना करने पर भी शिक्षा-विभाग ने शिक्षण-संस्थाओं के दमन-सम्बन्धी अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया।

कम्पनी के अत्याचारों के कारण भारतीय शिक्षा का कितनी शीघ्रता-पूर्वक ह्रास हुआ, इसका कुछ अनुमान बेलारी ज़िले के कलेक्टर ए० डी० कैम्पबेल की सन् १८२३ ई० की एक रिपोर्ट से लगाया जा सकता है। कैम्पबेल लिखता है :—

"The means of the manufacturing classes have been of late years greatly diminished by the introduction of our own English manufacture in lieu of the Indian cotton fabrics. . . . The greater part of the middling and lower classes of

* Report of the Select Committee on the Affairs of the East India Company, Vol. I. p. 409, published 1832.

the people are now unable to defray the expenses incident upon the education of their offspring, while their necessities require the assistence of their children as soon as their tender limbs are capable of the smallest labour.

" . . . of nearly a million of souls in this District, not 7,000 are now at School, a proportion which exhibits but too strongly the result above stated. In many villages where formerly there were Schools, there are now none, and in many others where there were large Schools, now only a few children of the most opulent are taught, others being unable from poverty to attend. . . .

" . . . learning . . . has never flourished in any country except under the encouragement of the ruling power, and the countenance and support once given to science in this part of India has long been withheld.

"Of the 533 institutions for education now existing in this District, I am ashamed to say, not one now derives any support from the state.

". . . considerable alienations of revenue which formerly did honour to the state by upholding and encouraging learning, have deteriorated under our rule into the means of supporting ignorance; whilst science, deserted by the powerful aid she formerly received from Government, has often been reduced to beg her scanty and uncertain meal from the chance benevolence of charitable individuals; and it would be difficult to point out any period in the history of India when she stood more in need . . ." *

अर्थात्—"इस देश में जब से हिन्दुस्तान के सूती कपड़ों के स्थान में विलायती कपड़ों का प्रचार किया गया है, तब से यहाँ के कारीगरों के जीविकोपार्जन के साधन बहुत ही कम होगए हैं। × × × मध्यम श्रेणी और निम्न श्रेणी के अधिकांश आदमियों में अब अपने बच्चों की शिक्षा का व्यय सहन करने की शक्ति नहीं रह गई। वे इतने दरिद्र होगए हैं कि उन्हें जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए अपने बच्चों से, जैसे ही उनके कोमल अङ्ग थोड़ा सा परिश्रम कर सकने के योग्य होते हैं, वैसे ही मेहनत-मज़दूरी करानी पड़ती है।

"× × × इस ज़िले की लगभग दस लाख जनसंख्या में आजकल सात हज़ार बच्चे भी पाठशालाओं में नहीं जाते। यह शोचनीय अवस्था ऊपर कही हुई बातों का बहुत ही ज़बर्दस्त प्रमाण है। बहुत से गाँवों में, जिनमें पहले पाठशालाएँ थीं, आजकल कोई पाठशाला नहीं है, और बहुत से दूसरे गाँवों में, जहाँ पहले बहुत बड़ी-बड़ी पाठशालाएँ थीं, वहाँ अब केवल धनी लोगों के थोड़े से लड़के शिक्षा प्राप्त करते हैं और दूसरे लोगों के बच्चे निर्धनता के कारण पाठशाला नहीं जा सकते।

"× × × विद्या × × × की उन्नति किसी भी समय या देश में शासकों के प्रोत्साहन के बिना नहीं हुई और भारत के इस भाग में देशी राजाओं और दरबारों की ओर से विद्या को जो सहायता और प्रोत्साहन दिया जाता था, वह अङ्गरेज़ी राज्य में बहुत दिनों से बन्द कर दिया गया है।

"मुझे शर्म और लज्जा के साथ इस बात को स्वीकार करना पड़ रहा है कि इस ज़िले में इस समय जो केवल ५३३ पाठशालाएँ बच गई हैं, उनमें से किसी एक को भी सरकार की ओर से किसी भी प्रकार की कोई सहायता नहीं दी जाती।

"× × × पहले ज़माने में राज्य की आय का एक बहुत बड़ा भाग विद्या की उन्नति और प्रचार में व्यय किया जाता था, जिससे राज्य के सम्मान की वृद्धि होती थी; किन्तु हमारे शासन में वह भाग घट कर बहुत ही थोड़ा रह गया है और उसका भी उपयोग विद्या को प्रोत्साहन देने के बदले अविद्या की वृद्धि करने में किया जाता है। पहले राज्य की ओर से विद्या को जो प्रचुर सहायता मिलती थी, उसके बन्द हो जाने के कारण अब विद्या को केवल थोड़े से उदार व्यक्तियों के अनिश्चित और अल्प दान पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत के इतिहास में विद्या के इस प्रकार के पतन का दूसरा समय दिखा सकना कठिन है × × ×"

* Report of the Select Committee etc., Vol. I, published 1832.

यह समस्त कहानी मद्रास प्रान्त की है। बम्बई, बङ्गाल, पञ्जाब आदि प्रान्तों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की दर्दनाक और अत्याचारपूर्ण कहानियाँ, कम्पनी के कर्मचारियों की रिपोर्टों और पत्र-व्यवहारों से उद्धृत की जा सकती हैं; किन्तु उन सबका उल्लेख करने के लिए एक विस्तृत ग्रन्थ की आवश्यकता होगी। अतः यहाँ पर हम नमूने के तौर पर एक ही उद्धरण देकर सन्तोष करते हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतवर्ष की विस्तृत और आदर्श शिक्षा का नाश करने के बाद पूरे एक सौ वर्षों तक भारत में किसी भी प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया। कम्पनी के कर्मचारियों को भय था कि यदि भारतवासी शिक्षित हो जाएँगे, तो उन पर हमारा राज्य अधिक दिनों तक नहीं रह सकेगा। इसलिए सन् १७५७ ई० से लेकर लगातार एक शताब्दी तक कम्पनी के कर्मचारियों ने भारत में किसी भी प्रकार की शिक्षा के प्रचार किए जाने का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि शिक्षा-प्रचार से भारतवासियों को अपनी वर्तमान पददलित अवस्था का ज्ञान हो जायगा, उनके भीतर फैले हुए नाना प्रकार के मत-मतान्तर और फूट, जिनके सहारे हम उन पर राज्य कर रहे हैं, नष्ट हो जाएँगे और वे सङ्गठित होकर हमारा विरोध करने लगेंगे। मेजर जेनरल सर लिओनेल स्मिथ ने सन् १८३१ ई० की पार्लिमेण्टरी कमिटी के सामने गवाही देते हुए कहा था :—

"I think that the ultimate end, when you have succeeded in educating the large proportion of the people, will be that they must find by every amelioration that you can give them, that they are still a distinct and a degraded people, and if they can find the means of driving you out of the country, they will do it."

अर्थात्—"मेरी धारणा है कि जब आप अधिकांश प्रजा को शिक्षित बना चुकेंगे, तो इस कार्य का अन्तिम परिणाम यह होगा कि आप उनकी भलाई के जितने भी काम कीजिएगा, उन सबके द्वारा उन्हें अपनी पृथक् और पददलित अवस्था का ज्ञान होगा और जिस समय उन्हें साधन प्राप्त हो जाएँगे, उसी समय वे हम लोगों को अपने देश से बाहर निकाल देंगे।"

इसके बाद सर लिओनेल से पूछा गया कि क्या आप कोई ऐसा उपाय बता सकते हैं, जिसका अवलम्बन करने से उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान न हो सके? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सर लिओनेल ने कहा :—

"I think the circumstance is so unprecedented in the history of man, that a handful of foreigners should continue to govern a country of sixty millions, which is fashionably called the empire of opinion, that the moment you have educated them they must feel that the effect of education will be to do away with all the prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalmans against Hindoos, and so on; the effect of education will be to expand their minds, and show them their vast power."

अर्थात्—"मेरा विचार है कि छः करोड़ मनुष्यों पर मुट्ठी भर विदेशियों का शासन करते रहना एक ऐसी घटना है, जिसका दूसरा उदाहरण मानव-जाति के इतिहास में मिलना कठिन है; जिस क्षण भारतवासी शिक्षित हो जाएँगे, उसी क्षण उनको पता चल जायगा कि शिक्षा के द्वारा भारतवर्ष से उन सभी मत-मतान्तरों के द्वेष और धार्मिक वैमनस्यों को दूर किया जा सकता है, जिनके द्वारा अब तक हमने हिन्दू के विरुद्ध मुसलमान और इसी प्रकार एक जाति के विरुद्ध दूसरी जाति को भड़का कर देश को अपने क़ब्ज़े में रक्खा है; शिक्षा का फल यह होगा कि उनकी बुद्धि बढ़ेगी और उन्हें अपनी विशाल शक्ति का पता लग जायगा।"

इस बात को कम्पनी के बहुत से कर्मचारियों ने समय-समय पर दुहराया था। सन् १८१३ ई० में सर जॉन मैलकम ने, जिसने भारत में अङ्गरेज़ी सत्ता का विस्तार करने में बहुत बड़ा भाग लिया था और जो अपने समय के सबसे बड़े अनुभवी नीतिज्ञों में गिना जाता था, एक पार्लमेण्टरी कमिटी के सामने गवाही देते हुए कहा था :—

". . . . In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government,

and their sub-division into various castes and tribes; while they continue divided in this manner, no insurrection is likely to shake the stability of our power. . . .

" . . . we shall always find it difficult to rule in proportion as it (the Indian community) obtains union and possesses the power of throwing off that subjection in which it is now placed to the British Government.

". . . I do not think that the communication of any knowledge, which tended gradually to do away the subsisting distinctions among our native subjects or to diminish that respect which they entertain for Europeans, could be said to add to the political strength of the English Government . . ."

अर्थात्—" × × × हमने जो यह विशाल साम्राज्य स्थापित किया है और इसमें एक असाधारण प्रकार का शासन जारी किया है, इसके सुरक्षित रहने के लिए हमें केवल एक ही बात का सहारा है; वह यह कि जिन-जिन बड़ी-बड़ी जातियों पर हम राज्य कर रहे हैं, वे इस समय पृथक्-पृथक् हैं और फिर हर एक जाति अपने भीतर से कितनी ही छोटी-छोटी जातियों और उप-जातियों में बँटी हुई है; जब तक ये लोग इस प्रकार एक दूसरे से अलग रहेंगे, तब तक किसी भी विद्रोह से हमारी सत्ता के नष्ट होने का भय नहीं है। × × ×

"× × × इन लोगों में जैसे-जैसे एकता बढ़ती जायगी और ये लोग ब्रिटिश-सरकार की अधीनता में जो गुलामी सहन कर रहे हैं, उसे दूर फेंक देने की शक्ति इनमें जितनी ही अधिक बढ़ती जायगी, उतनी ही मात्रा में हमारी शासन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी बढ़ती जाएँगी।

"× × × मेरी राय है कि कोई भी ऐसी शिक्षा, जिससे हमारी भारतीय प्रजा में फैले हुए फूट और कलह के अन्त होने की सम्भावना हो अथवा जिसके द्वारा उनके मन में अङ्गरेज़ों के प्रति जो सम्मान का भाव है, उसमें कमी होने की सम्भावना हो, ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक प्रभुत्व को बढ़ाने में सहायक नहीं हो सकती × × ×।"

मार्शमैन नाम का अङ्गरेज़ लिखता है कि सन् १७९२ ई० में, जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए नया चार्टर-ऐक्ट पास होने वाला था, तो विल्बर फ़ोर्स नाम के पार्लमेण्ट के एक सदस्य ने नवीन ऐक्ट में एक धारा जुड़वानी चाही थी, जिसका आशय यह था कि भारतवासियों के लिए शिक्षा का भी थोड़ा-बहुत प्रबन्ध होना चाहिए। इस छोटी सी बात का पार्लमेण्ट के सदस्यों और कम्पनी के हिस्सेदारों ने इतना घोर विरोध किया कि विल्बर फ़ोर्स को विवश होकर अपना संशोधन वापस ले लेना पड़ा! मार्शमैन के शब्दों में :—

"On that occasion, one of the Directors stated that we had just lost America from our folly, in having allowed the establishment of Schools and Colleges, and that it would not do for us to repeat the same act of folly in regard to India; . . ."

अर्थात्—"उस अवसर पर कम्पनी के एक डाइरेक्टर ने कहा कि हम लोगों ने स्कूलों और कॉलेजों को स्थापित होने देने की बेवक़ूफ़ी करके अमरीका अपने हाथ से खो दिया। अब भारतवर्ष के सम्बन्ध में उसी मूर्खतापूर्ण कार्य को दुहराने में हमारा कल्याण नहीं है; × × ×"

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारतवासियों की शिक्षा के सम्बन्ध में कम्पनी के डाइरेक्टरों तथा अधिकांश कर्मचारियों में इसी प्रकार के विचार प्रचलित थे। भारतवासियों को उनकी विशाल शक्ति का पता न चलने देने तथा उन्हें सदा के लिए विद्या और शक्ति से हीन बना देने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी मनुष्यता के पवित्रतम नियमों तक का उल्लङ्घन करने में कभी नहीं हिचकते थे। मद्रास प्रान्त का रेवेन्यू-बोर्ड जिस समय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि बङ्गाल की भाँति मद्रास में भी ज़मीन का स्थायी बन्दोबस्त करना चाहिए या नहीं, उस समय बोर्ड के एक प्रभावशाली सदस्य ने, जिसका नाम थैकरे था, स्थायी बन्दोबस्त का विरोध करते हुए कहा कि इस प्रकार के बन्दोबस्त से ज़मींदारों की श्रेणी को लाभ पहुँचता और वे धन इकट्ठा करके बहुत ही मोटे हो जाते हैं। हमें जहाँ तक हो सके, ज़मींदारों को नष्ट करना

चाहिए और उनके पास धन एकत्र होने के मार्गों को बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि यदि उनके पास धन रहेगा तो वे पढ़-लिख कर और विद्वान् बन कर हमें क्षति पहुँचा सकते हैं। थैकरे अपनी रिपोर्ट में एक स्थान पर लिखता है:—

"It is very proper that in England, a good share of the produce of the earth should be appropriated to support certain families in affluence, to produce senators, sages, and heroes for the service and defence of the state, or, in other words, that great part of the rent should go to an opulent nobility and gentry, who are to serve their country in Parliament, in the army and navy, in the departments of science and liberal professions. The leisure, independence, and high ideas, which the enjoyment of this rent affords, has enabled them to raise Britain to the pinnacle of glory. Long may they enjoy it;—but in India, that haughty spirit, independence, and deep thought which the possession of great wealth sometimes, gives, ought to be suppressed. They are directly adverse to our power and interest. . . . We do not want generals, statesmen, and legislators; we want industrious husbandmen.

"Our first object is to govern India; and then to govern it well; . . .*"

अर्थात्—"यह सर्वथा उचित है कि इङ्गलैण्ड में भूमि की उपज का एक बड़ा भाग उन थोड़े से समृद्ध परिवारों का पालन करने में व्यय किया जाय, जो देश की सेवा और रक्षा के लिए व्यवस्थापक, महात्मा और योद्धा उत्पन्न करते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में, मालगुज़ारी का एक बहुत बड़ा भाग उन सम्पन्न रईसों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के पास जाय, जो पार्लमेण्ट, सेना, नाविक सेना, विज्ञान के विभागों तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यवसायों के द्वारा अपने देश की सेवा करते हैं। इस मालगुज़ारी के व्यय से उन्हें जो अवकाश, स्वतन्त्रता, ऊँचे विचार और सुख प्राप्त करने का अवसर मिलता है, उसके द्वारा उन्होंने इङ्गलैण्ड को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया है। वे चिरकाल तक इसका भोग करें;—किन्तु भारतवर्ष में उस गर्वपूर्ण मनोवृत्ति, स्वतन्त्रता और गम्भीर विचार का, जो अतुल धन-सम्पत्ति के द्वारा कभी-कभी प्राप्त हो जाता है, दमन किया जाना चाहिए। क्योंकि ये हमारी शक्ति और हित के प्रत्यक्ष विरोधी हैं। × × × भारत में हमें सेनानायकों, राजनीतिज्ञों और व्यवस्थापकों की आवश्यकता नहीं है; हमें ज़रूरत है मिहनती किसानों की।

"हमारा सबसे पहला उद्देश्य यह है कि हम भारतवर्ष पर शासन करें; और इसके बाद यदि हो सके तो अच्छी तरह शासन करें; × × ×।"

भारतीय संस्कृति पर आक्रमण

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारतवासियों की शिक्षा और उन्नति के सम्बन्ध में लगभग सभी अङ्गरेज़ इसी प्रकार के विचार रखते थे; किन्तु १८ वीं शताब्दी के अन्त से ही अङ्गरेज़ शासकों के विचारों में परिवर्त्तन होना आरम्भ हो गया था। भारतवर्ष जैसे विशाल और अपरिचित देश का शासन करने में उन्हें दो बड़ी कठिनाइयों का अनुभव होने लगा। पहली कठिनाई यह थी कि भारतवर्ष में शिक्षित मनुष्यों की संख्या बड़ी शीघ्रतापूर्वक घट रही थी; इसलिए अङ्गरेज़ शासकों को अपने सरकारी महकमों और विशेषतः नवीन न्यायालयों के लिए योग्य हिन्दू और मुसलमान कर्मचारियों के मिलने में कठिनाई अनुभव होने लगी। कम्पनी के अधिकारी यदि छोटे-छोटे पदों पर भी अङ्गरेज़ कर्मचारियों को ही रख कर सरकारी महकमों का काम किसी प्रकार चला भी लेते, तो भी न्यायालयों का काम भारतवासियों की सहायता के बिना चला सकना उनके लिए सर्वथा असम्भव था। दूसरी कठिनाई यह थी कि उन्हें थोड़े से इस प्रकार के मनुष्यों की आवश्यकता थी, जिनके द्वारा वे भारतीय जनता के विचारों का पता लगा सकें और उनके हृदय में अपने प्रति सम्मान तथा भक्ति के भावों का सञ्चार करा सकें। सन् १८३० ई० की पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट में इन दोनों आवश्यकताओं का बार-बार उल्लेख किया गया है और उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त में कलकत्ते का 'मुसलमानों का मदरसा' और बनारस का 'हिन्दू संस्कृत कॉलेज' दोनों

* pp. 990-991, Appdx., Fifth Report, Select Committee, E. I. Co., 1812.

इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थापित किए गए थे। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पूना का डेकन कॉलेज, कलकत्ते का मेडिकल कॉलेज और रुड़की का एञ्जीनियरिङ्ग कॉलेज भी इसी उद्देश्य से खोले गए थे। इन कॉलेजों में दी जाने वाली शिक्षा के अभिप्राय को समझाते हुए कम्पनी के डाइरेक्टरों ने अपने ६ सितम्बर सन् १८२७ ई० के पत्र में गवनर-जेनरल को लिखा था कि इस शिक्षा का धन "भारतवर्ष के उन उच्च तथा मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों पर व्यय किया जाना चाहिए, जिनमें से आपको अपने शासन का काम चलाने के लिए सबसे अधिक योग्य देशी एजेण्ट मिल सकते हैं, और जिनका अपने अन्य देशवासियों पर सबसे अधिक प्रभाव है।"

इसका स्पष्ट आशय यह है कि अङ्गरेज़ शासकों ने इस बात को भली-भाँति समझ लिया कि बिना भारत-सन्तानों का सहयोग प्राप्त किए हुए, केवल अङ्गरेज़ कर्मचारियों के ही द्वारा, भारतवर्ष जैसे विशाल देश का शासन कर सकना असम्भव है। पहले तो कम्पनी के बहुत से कर्मचारियों ने भारतवासियों के सरकारी पदों पर नियुक्त किए जाने का घोर विरोध किया; किन्तु उपरोक्त आवश्यकता उनकी समझ में ज्यों-ज्यों अधिकाधिक स्पष्ट रूप से आने लगी, त्यों-त्यों उनका विरोध कम होता गया और अन्त में भारत-सन्तानों की ही सहायता से उनकी प्यारी मातृभूमि को ग़ुलामी के चङ्गुल में फँसा रखने की नीति भारतीय शासन की निश्चित और स्थायी नीति बन गई। भारतवासियों को सरकारी महकमों के छोटे-छोटे पदों पर नियुक्त करने में अङ्गरेज़ शासकों ने प्रधानतः तीन लाभ समझे। उनका विचार था कि जो भारतवासी सरकारी नौकरी में भर्ती किए जाएँगे, वे स्वभावतः ही हमारे कृतज्ञ होंगे और हमारे राज्य के भारतवर्ष में चिरकाल तक दृढ़ रहने में अपना कल्याण समझेंगे। किसी भी प्रकार की क्रान्ति होने पर वे पहले भारतवासी होंगे, जो हमारी सहायता करेंगे और हमारे राज्य को सुरक्षित रखने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करेंगे। उन लोगों ने दूसरा लाभ यह सोचा कि छोटे-छोटे पदों पर अङ्गरेज़ों के बदले हिन्दुस्तानियों को नियुक्त करने से शासन का ख़र्च बहुत ही कम हो जायगा, क्योंकि हिन्दुस्तानी कर्मचारी अङ्गरेज़ कर्मचारियों की अपेक्षा बहुत ही कम वेतन पर रक्खे जा सकते हैं। तीसरा लाभ यह सोचा गया कि इससे भारतवासियों के चरित्र का पतन होगा और वे अङ्गरेज़ों के चरित्र को अपने से श्रेष्ठ समझने लगेंगे। कम्पनी के अधिकारियों ने सोचा कि यदि अङ्गरेज़ों को भारतवासियों के समान थोड़े वेतन के पदों पर नियुक्त किया जायगा तो वे इतने थोड़े रुपए से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकने के कारण रिश्वत लेने तथा अन्य नीति-हीन उपायों से रुपया कमाने के लिए बाध्य होंगे। इससे देशी लोगों में उनके चरित्र के प्रति अश्रद्धा फैलेगी और धीरे-धीरे यह अश्रद्धा अङ्गरेज़ जाति के प्रति घृणा के रूप में बदल जायगी। इसके विपरीत यदि थोड़े वेतन के पदों पर भारतवासियों को नियुक्त किया जाय, तो वे विवश होकर रिश्वत लेंगे तथा अन्य अनुचित उपायों से रुपया कमाने की चेष्टा करेंगे और अपराध साबित होने पर दण्डित होंगे तथा नौकरी से बरख़ास्त किए जाएँगे। इस प्रकार की घटनाएँ बार-बार होने से भारतवासियों के मन में अपने प्रति यह धारणा उत्पन्न होगी कि हम लोगों का नैतिक जीवन बहुत ही भ्रष्ट है और अङ्गरेज़ों का चरित्र हमसे कहीं अधिक पवित्र और ऊँचा है। उनके मन में इस प्रकार के भाव का दृढ़ होना साम्राज्य की दृष्टि से बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा।

मद्रास के कलेक्टर डब्लू० चैपलिन ने सन् १८३१ ई० की जाँच-कमिटी के सामने गवाही देते हुए कहा था :—

"In the highest offices of Government I would not recommend their (Indian peoples') employment ; those, I think, must always be in the possession of Europeans. By permitting the natives to fill a few of the high situations, we shall gradually raise a native aristocracy of our own, who, being indebted to our Government, will feel an interest in maintaining it, being sensible that they would be the first to suffer by any revolution ; they would then consider the security of their own fortunes identified with the safety of the Government."

अर्थात्—"मैं शासन के सर्वोच्च पदों पर भारतवासियों के नियुक्त किए जाने की नीति की प्रशंसा नहीं

कर सकता; मेरा विचार है कि उन पदों को सदा ही यूरोपियन कर्मचारियों के अधीन रखना चाहिए। किन्तु थोड़े से ऊँचे पदों पर भारतवासियों को भी नियुक्त करके कुछ दिनों में हम लोग अपने लिए भारतवासियों की एक प्रतिष्ठित श्रेणी अलग बना लेंगे, जो हमारी अनुगृहीत होने के कारण हमारी सरकार के प्रति सदा कृतज्ञ रहेगी और यह समझ कर कि किसी भी प्रकार की क्रान्ति होने से सबसे पहले उसी के स्वार्थों की क्षति होगी, वह सदा हमारी रक्षा करने के लिए प्रस्तुत रहेगी; ऐसी अवस्था में वह हमारे राज्य के अटल रहने में ही अपने स्वार्थों को सुरक्षित समझेगी।"

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मद्रास के एक सिविलियन सर टॉमस मनरो ने, जो पीछे मद्रास प्रेज़िडेन्सी का गवर्नर नियुक्त हुआ था, सरकारी नौकरियों में भारतवासियों के लिए जाने की नीति का समर्थन करते हुए तथा इसके लाभ दिखाते हुए लिखा था:—

"The preservation of our dominion in this country requires that all the higher offices, civil and military, should be filled with Europeans; but all offices that can be left in the hands of natives without danger to our power, might with advantage be left to them. . . . Were we to descend to those which are more humble and now filled by natives, we should lower our character and not perform the duties so well. . . . But it is said that all these advantages in the favour of the employment of the natives are counter-balanced by their corruption, and that the only remedy is more Europeans with European integrity. The remedy would certainly be a very expensive one, and would as certainly fail of success were we weak enough to try it. We have had instances of corruption among Europeans, notwithstanding their liberal allowences; but were the numbers of Europeans to be considerably augmented, and their allowences, as a necessary consequence, somewhat reduced, it would be contrary to all experiences to believe that this corruption would not greatly increase, more particularly as Government could not possibly exercise any efficient control over the misconduct of so many European functionaries in different provinces, where there is no public to restrain it. If we are to have corruption, it is better that it should be among the natives than among ourselves, because the natives will throw the blame of the evil upon their contrymen; they will still retain their high opinion of our superior integrity; and our character, which is one of the strongest, supports of our power, will be maintained."

अर्थात्—"इस देश में हमारे राज्य के सुरक्षित रहने के लिए यह आवश्यक है कि सेना और शासन-विभागों के सभी ऊँचे पदों पर यूरोपियनों को नियुक्त किया जाय; किन्तु जिन पदों को, हम अपनी शक्ति को बिना किसी प्रकार के सङ्कट में डाले हुए, हिन्दुस्तानी आदमियों के हाथ में रख सकते हैं, उन पर हिन्दुस्तानियों को नियुक्त कर देना ही लाभदायक है। ××× जो पद बहुत ही तुच्छ हैं और जिन पर आजकल देशी आदमी काम कर रहे हैं, उन पदों पर भी यदि हमीं लोग काम करने लगें, तो हमारा चरित्र गिर जायगा और हम उन कामों को भी अच्छी तरह नहीं कर सकते। ××× किन्तु यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तानियों को नौकरियाँ देने के जितने लाभ हैं, वे सब उनकी चरित्रहीनता के कारण व्यर्थ हो जाते हैं; और इस दोष से बचने का केवल एक ही उपाय है, वह यह कि सरकारी नौकरियों में ऐसे यूरोपियनों की संख्या बढ़ाई जाय, जिनके चरित्र में यूरोपियन ईमानदारी हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह उपाय बहुत ही ख़र्चीला है, और साथ ही साथ यह बात भी इतनी ही निस्सन्देह है कि यदि हम इसे प्रयोग करने की दुर्बलता दिखाएँगे, तो यह उपाय असफल होगा। अब तक यूरोपियनों के वेतन के अपेक्षाकृत अधिक होते हुए भी, हम लोगों ने उनमें चरित्रहीनता के उदाहरण पाए हैं; ऐसी दशा में यदि यूरोपियन कर्मचारियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ा दी जाय, और इसके अनिवार्य परिणाम-स्वरूप उनके वेतन में थोड़ी सी कमी करनी पड़े, विशेषतः ऐसी अवस्था में, जब कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों के बहुसंख्यक यूरोपियन कर्मचारियों के चरित्र पर सरकार के निरीक्षण रख सकने की सम्भावना नहीं है और न उन प्रान्तों में ही कोई ऐसा लोकमत है,

जो उनकी चरित्रहीनता पर नियन्त्रण का काम कर सके, यह आशा करना कि उनकी चरित्रहीनता बहुत अधिक नहीं बढ़ जायगी, आज तक के सभी अनुभवों के विरुद्ध होगा। यदि यह अनिवार्य है कि चरित्रहीनता रहेगी, तो उसका अङ्गरेज़ों में रहने की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों में रहना कहीं अच्छा है, क्योंकि इससे भारतवासी इस बुराई के लिए अपने ही देशवासियों को दोषी समझेंगे; और हमारी ईमानदारी के सम्बन्ध में उनके विचार पूर्ववत् ही प्रशंसामय रहेंगे; इससे हमारा चरित्र सुरक्षित रहेगा, जो हमारी शक्ति का सबसे बड़ा अवलम्ब है।"

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का स्वार्थ इस बात में था कि भारतवासियों का चरित्र पतित हो; वे अपने को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखें तथा अङ्गरेज़ों को श्रद्धा और सम्मानपूर्ण दृष्टि से। सर टॉमस मनरो जैसे उच्च पदाधिकारी का विश्वास था कि भारतवासियों को कम वेतन के तुच्छ पदों पर नियुक्त करने से इस अभिप्राय की पूर्ति बड़ी सुगमता-पूर्वक हो सकती है। इस विषय पर कम्पनी के कर्मचारियों में बहुत दिनों तक वाद-विवाद होता रहा कि सरकारी नौकरियों में भारतवासियों का लिया जाना साम्राज्य की दृष्टि से हितकर है या नहीं। इसके विरोधियों और समर्थकों की सम्मितियों में से नमूने के तौर पर क्रमशः थैकरे और मनरो के विचारों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कई वर्षों के वाद-विवाद के बाद अन्त में यह नीति निश्चित हो गई कि सरकारी महकमों के छोटे-छोटे पदों पर भारतवासियों की नियुक्ति की जाय और उन्हें इस काम के योग्य बनाने के लिए उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। इस नीति का समर्थन करने वाले अङ्गरेज़ों में भी दो दल थे। एक दल का कहना था कि भारतवासियों को केवल प्राचीन भारतीय साहित्य, भारतीय विज्ञान और संस्कृत, फ़ारसी, अरबी तथा देशी भाषाएँ पढ़ाना चाहिए; उन्हें पश्चिमी विचारों की हवा भी नहीं लगने देनी चाहिए; क्योंकि भारतवासियों को जब यूरोप के इतिहास का ज्ञान होता है और वे पश्चिम के राष्ट्रीय विचारों के सम्पर्क में आते हैं, तो मुट्ठी भर विदेशियों के द्वारा उन्हें अपने देश का शासित होते रहना अखरने लगता है और वे स्वभावतः ही अपनी मातृभूमि के मस्तक से ग़ुलामी के कलङ्क को उतार फेंकने की बात सोचने लगते हैं। दूसरे दल का यह विचार था कि भारतवासियों के चरित्र को जब तक यूरोपियन साँचे में न ढाला जायगा, तब तक हमारे चरित्र के प्रति उनके मन में श्रद्धा और सम्मान का भाव नहीं उत्पन्न हो सकता, जो हमारे राज्य के स्थायित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है; वे हमको काफ़िर, मलेच्छ और विदेशी समझते रहेंगे, और जब अवसर पाएँगे, तब हमें अपने देश से मार भगाने की चेष्टा करेंगे। इसके विपरीत यदि उन्हें अङ्गरेज़ी भाषा, अङ्गरेज़ी साहित्य, अङ्गरेज़ी विज्ञान और अङ्गरेज़ी सभ्यता की शिक्षा दी जाय, तो वे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक हमारे पूर्वजों के गुणों का अध्ययन करेंगे, उनके चरित्र से शिक्षा ग्रहण करेंगे और उनके अनुसार अपने को बनाने की चेष्टा करेंगे; ऐसी अवस्था में वे हमारा विरोध करने के बदले, हमारी आज्ञा का पालन करने में अपना गौरव समझेंगे तथा हमारी संस्कृति का अनुकरण करके हमारी बराबरी का पद पाने में अपनी सच्ची प्रतिष्ठा। वे हमारे शिष्टाचार, रहन-सहन की पद्धति तथा पोशाक का अनुकरण करेंगे। इससे हमारा राज्य चिरस्थायी होगा, हमारे विरुद्ध भारतवासियों के विद्रोह करने की आशङ्का जाती रहेगी और हमारी संस्कृति के प्रचार से यह लाभ होगा कि भारतवर्ष में हमारे देश की बनी भोग-विलास की वस्तुओं की माँग बढ़ेगी। उस समय कम्पनी के अनेक कर्मचारियों की यह निश्चित धारणा थी कि जब तक भारतीय जीवन की सादगी को नष्ट नहीं कर दिया जायगा, तब तक भारतवर्ष में इङ्गलैण्ड के व्यापार का पूर्णतया विस्तार नहीं हो सकता। व्यापार की उन्नति की दृष्टि से भारतवासियों की संस्कृति के बदल डालने की आवश्यकता दिखाते हुए सर टॉमस मनरो ने, जो मद्रास का गवर्नर रह चुका था, सन् १८१३ ई० की पार्लमेण्टरी कमिटी के सामने अपने बयान में कहा था :—

"At our principal settlements, where we have been longest established, the natives hava adopted none of our habits, and scarcely use any of our commodities, the very domestics of Europeans use none of them ; there are a few natives at Madras, and some other places, who sometimes purchase European commodities, and

fit up apartments in an European style, to receive their guests, but it is done merely, I believe, in compliment to their European friends, and what is purchased in this way by the father, is very often thrown away by the son ; the consumption does not extend, but seems to remain stationery ; I think there are other causes of a more permanent nature than the high price, which preclude the extension of the consumption of European articles in India ; among those causes ; I reckon the influence of the climate, the religious and civil habits of the natives, and more than anything else, I am afraid, the excellence of their manufactures. In this country, people who know little of India, will naturally suppose, that as the furniture of the house and the table require so much expense, a great demand will likewise be made among the natives of India for the same purposes ; but a Hindoo has no table, he eats alone upon the bare ground ; the whole of what may be called his table service consists of a brass basin and an earthen plate ; his house has no furniture ; it is generally a low building, quadrangular, rather a shed than a house, open to the centre, with mud walls and mud floor, which is generally kept bare, and sprinkled everyday with water, for coolness ; his whole furniture usually, consists of a mat or a small carpet, to rest upon ; if he had furniture, he has no place to keep it in, it would be necessary to build a house to hold his furniture ; he likes this kind of house, he finds it accomodated to the climate, it is dark and cool, and he prefers it to our large buildings ; again, the food of the Indian is simple, and is entirely found in his own country ; his clothing is all the manufacture of his own country, we cannot supply him, because while he can get it, not only better, but cheaper, at home it is impossible that we can enter into competition in the market."

अर्थात्—"हमारी प्रधान बस्तियों में, जहाँ हम बहुत पहले से बसे हुए हैं, हिन्दुओं ने हमारे आचार-व्यवहार की एक भी बात को ग्रहण नहीं किया है और वे मुश्किल से हमारे यहाँ की बनी हुई किसी भी वस्तु का व्यवहार करते हैं, यहाँ तक कि यूरोपियनों के खान-पान तक हमारे यहाँ की बनी हुई किसी भी चीज़ का इस्तेमाल नहीं करते ; मद्रास तथा कुछ अन्य जगहों में थोड़े से भारतवासी ऐसे हैं, जो अपना घर, जिसमें वे अपने मेहमानों का स्वागत किया करते हैं, सजाने के लिए कभी-कभी विलायती चीज़ें ख़रीद लेते हैं, सो भी मेरा विचार है कि केवल यूरोपियन मित्रों की ख़ातिर-दारी के लिए ऐसा किया जाता है, और इस तरह बाप जिन चीज़ों को ख़रीदता है, बेटा प्रायः उन चीज़ों को फेंक दिया करता है ; इससे हमारी चीज़ों की माँग नहीं बढ़ती, बल्कि एक ही जैसी बनी रहती है ; मेरा विचार है कि चीज़ों के मूल्य के अधिक होने के अतिरिक्त कुछ ऐसे स्थायी कारण हैं, जो भारतवर्ष में विदेशी वस्तुओं की खपत नहीं होने देते ; मैं समझता हूँ कि जल-वायु का प्रभाव, देशी आदमियों की धार्मिक और सामाजिक रीतियाँ और सबसे बढ़ कर, मुझे दुःख है कि, उनकी अपनी बनाई हुई चीज़ों की उत्तमत्ता ऐसे ही कारणों में से हैं। इस देश के लोग, जो भारतवर्ष के विषय में कुछ नहीं जानते हैं, स्वभावतः ही यह सोचेंगे कि घरेलू सामानों और टेबुल इत्यादि की, जिनके ऊपर यहाँ इतना अधिक ख़र्च करना पड़ता है, भारतवर्ष के देशी आदमियों में बहुत ज़्यादा माँग होगी; किन्तु हिन्दुओं के पास टेबुल नहीं होता, वे बिना कोई आसन या चटाई रक्खे केवल भूमि पर बैठ कर अकेले भोजन करते हैं, उनके भोजन-पात्रों में केवल एक पीतल का लोटा और एक मिट्टी की थाली या ढकनी होती है; उनके घरों के अन्दर कोई सामान नहीं होते; उनके मकान साधारणतः नीचे और चौकोर होते हैं; इन्हें मकान की अपेक्षा छप्पर कहना अधिक उपयुक्त है, ये बीच से खुले होते हैं तथा इनकी दीवारें और सहन मिट्टी की बनी हुई होती हैं; सहन पर कोई बिछावन नहीं बिछाया जाता और उसे ठण्ढा रखने के लिए उस पर प्रतिदिन पानी छिड़का जाता है; उनके घर के अन्दर यदि कोई भी सामान होता है, तो वह है चटाई या एक छोटी सी दरी, जिस पर वे सोते हैं; इससे अधिक सामान रखने के लिए उनके

घर में जगह नहीं होती; यदि उनके पास इससे अधिक सामान हो, तो उसे रखने के लिए उन्हें दूसरा मकान बनवाना पड़ेगा; वे इसी प्रकार के मकान पसन्द करते हैं, उन्हें यह मकान अपने जल-वायु के अनुकूल मालूम होता है; यह अँधेरा और ठण्डा होता है, और वे अपने इस झोपड़े को हम लोगों के विशाल भवन की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं; भारतवासियों का भोजन सादा होता है और यह पूर्णतया उन्हीं के देश में उत्पन्न होने वाले पदार्थों से तैयार होता है। उनका कपड़ा ही उन्हीं के देश का बना हुआ होता है; हम लोग उनके हाथ कपड़ा नहीं बेंच सकते, क्योंकि उनके यहाँ का बना हुआ कपड़ा हमारे कपड़े की अपेक्षा न केवल अच्छा, बल्कि सस्ता भी होता है; हम लोगों का उनके साथ बाज़ार में सङ्घर्ष कर सकना असम्भव है।"

उक्त बयान से स्पष्ट है कि सर टॉमस मनरो अङ्गरेज़ी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए भारतीय चरित्र को बदल देने के निमित्त कितना उत्सुक था। उसे भारतवासियों का सादा जीवन, उनके मकान की आडम्बर-शून्यता, उनके कपड़ों की सादगी और उनके खाद्य-पदार्थों का पूर्णतया स्वदेशी होना इत्यादि बातें पसन्द न थीं। वह चाहता था कि भारतवासी टेबुल और कुरसी पर बैठना सीखें, अङ्गरेज़ों की भाँति सुन्दर महलों में रहना पसन्द करें, विलायती वस्त्रों का व्यवहार करें और अपने खाद्य-पदार्थों में भी विलायती वस्तुओं को स्थान दें। उस समय कम्पनी के उच्च कर्मचारियों में अधिकांश व्यक्ति ऐसे ही थे, जो सर टॉमस मनरो के समान विचार रखते थे। इससे इस बात पर बहुत प्रकाश पड़ता है कि भारत में जारी की जाने वाली शिक्षा-प्रणाली के रूप को निश्चित करने में उस समय कौन-कौन सी भावनाएँ काम कर रही थीं। सर टॉमस मनरो के उक्त विचार प्रकट करने के बीस वर्षों के बाद लॉर्ड मेकॉले ने ब्रिटिश पार्लमेण्ट में भारतीय शिक्षा-नीति की आलोचना करते हुए प्रायः मनरो के ही विचारों को दुहराया था। मेकॉले की यह निश्चित धारणा थी कि भारतवर्ष में अङ्गरेज़ी व्यापार को चिरकाल तक जारी रखने का सर्वोत्तम मार्ग यह है कि भारतवासियों को अङ्गरेज़ी शिक्षा देकर उनकी रहन-सहन को यूरोपियन साँचे में ढाला जाय। मेकॉले भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य की शिक्षा देने का विरोधी तथा उन्हें अङ्गरेज़ी भाषा और अङ्गरेज़ी साहित्य पढ़ाने का समर्थक था। उसका विचार था पश्चिमी संस्कृति का प्रचार करने से ही भारतवासियों में राष्ट्रीय विचारों को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है, तथा उनकी मातृभूमि को चिरकाल तक गुलाम बनाए रखने के कार्य में उनका सहयोग भी प्राप्त किया जा सकता है। सन् १८३३ ई० के चार्टर ऐक्ट को, जिसमें सबसे पहली बार यह निश्चित किया गया था कि भारतवासियों में अङ्गरेज़ी शिक्षा का प्रचार किया जाय और उन्हें सरकारी नौकरियों में रक्खा जाय, पास कराने में मेकॉले का बहुत बड़ा भाग था। उक्त ऐक्ट के पास होने के समय मेकॉले ने पार्लमेण्ट में भाषण देते हुए अपने विरोधियों को, जिन्हें यह भय था कि पश्चिमी ढङ्ग से भारतवासियों को शिक्षा देने से उनमें राष्ट्रीय भावों का प्रचार होगा और वे अङ्गरेज़ों को अपने देश से मार भगाने पर कटिबद्ध हो जायँगे, उत्तर देते हुए कहा था :—

"It would be, . . . far better for us that the people of India were well governed and independent of us, than ill-governed and subject to us; that they were ruled by their own kings, but wearing our broadcloth and working with our cutlery, than that they were performing their salaams to Engligh Collectors and English Magistrates, but were too ignorant to value, or too poor to buy English Manufactures. To trade with civilized men is infinitely more profitable than to govern savages. That would, indeed, be a doting wisdom which, in order that India might remain a dependency, would make it a useless and costly dependency, which would keep a hundred millions of men from being our customers in order that they might continue to be our slaves."

अर्थात्—"इसके बदले कि भारतवासी हमारे अधीन बुरे शासन में रहें—इसके बदले कि वे अङ्गरेज़ कलेक्टरों और मैजिस्ट्रेटों को सलाम करते रहें, पर उन्हें चीज़ों की उपयोगिता का ज्ञान न हो और वे इतने अधिक दरिद्र हों कि इङ्गलैण्ड की बनी हुई चीज़ें न

ख़रीद सकते हों; हमारे लिए यह बात कहीं अधिक मङ्गलप्रद होगी कि वे स्वतन्त्र हो जायँ और अच्छे शासन में रहें—वे अपने ही नरेशों द्वारा शासित हों, पर हमारे बनाए हुए ऊनी कपड़े पहनें और हमारे भेजे हुए उस्तरे और चाक़ू का व्यवहार करें। असभ्य मनुष्यों पर शासन करने की अपेक्षा, सभ्य मनुष्यों के साथ व्यापार करना अत्यन्त अधिक लाभदायक है। ऐसी कोई भी नीति घोर मूर्खतापूर्ण होगी, जो भारतवर्ष को केवल अपने अधीन रखने के लिए उसे एक ऐसे परतन्त्र राज्य में परिणत कर दे, जिसका शासन करना बहुत ही अधिक व्यय-साध्य हो, किन्तु जिससे लाभ कुछ भी न हो—जो भारतवर्ष के १० करोड़ निवासियों को केवल अपना ग़ुलाम बना रखने के लिए, उन्हें हमारे गाहक बनने से रोक दे।"

उपरोक्त उद्धरण से यह साफ़ पता चलता है कि सन् १८३३ ई० के चार्टर ऐक्ट की उस नवीन धारा को, जिसके वास्तविक अभिप्राय को समझाते हुए उक्त बातें कही गई थीं, पास कराने में मेकॉले का अन्तिम लक्ष्य यह था कि भारतवासियों के चरित्र को बदल कर उसे यूरोपियन साँचे में ढाला जाय—उन्हें यूरोपीय सभ्यता की विलासिता की शिक्षा देकर, उनमें इङ्गलैण्ड की बनी हुई चीज़ों का प्रचार किया जाय, जिससे इङ्गलैण्ड के उद्योग-धन्धों को सदा हरा-भरा और पनपता रखने के लिए भारतवर्ष में उनकी बनाई हुई चीज़ों की अनन्त माँग बनी रहे। मेकॉले यह भी चाहता था कि भारतवर्ष में अङ्गरेज़ी राज्य को चिरकाल तक स्थायी बनाने के लिए भारतवासियों में राष्ट्रीय भावों को उत्पन्न होने से रोका जाय और उनके लिए एक ऐसी भ्रष्ट और नाशक शिक्षा-प्रणाली का निर्माण किया जाय, जिससे भारत-सन्तानों की मनोवृत्ति ग़ुलाम बन जाय और वे भारत में अङ्गरेज़ी सत्ता को क़ायम रखने के लिए उपयोगी यन्त्र का काम दे सकें। मेकॉले ने इस बात की आवश्यकता दिखाते हुए अपने १८३५ के 'मिनिट' में स्पष्ट लिखा है:—

"We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern; a class of persons Indian in blood and color, but English in taste, in opinions, words and intellect."*

अर्थात्—"हमें भारत में ऐसे मनुष्यों की एक श्रेणी पैदा कर देने का शक्ति-भर प्रयत्न करना चाहिए, जो हमारे और उन करोड़ों भारतवासियों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, दुभाषिए का काम करे। इन लोगों को ऐसा होना चाहिए कि ये केवल रङ्ग और रक्त की दृष्टि से भारतवासी हों, किन्तु रुचि, विचार, भाषा और भावों की दृष्टि से अङ्गरेज़ हों।"

मेकॉले यह भी चाहता था कि अङ्गरेज़ी साहित्य और भाषा के प्रचार के साथ देशी भाषाओं का दमन भी किया जाय। गवर्नर-जनरल लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क मेकॉले को बहुत मानता था और उसके विचार मेकॉले के विचारों से बहुत मिलते-जुलते थे। उसने मेकॉले की शिक्षा-सम्बन्धी योजना को स्वीकार करते हुए आज्ञा दे दी कि शिक्षा-सम्बन्धी धन को केवल अङ्गरेज़ी शिक्षा पर ही व्यय करना चाहिए। साथ ही उसने देशी भाषाओं का दमन करने के विचार से यह आज्ञा दे दी कि अब से देशी नरेशों के साथ कम्पनी का सारा पत्र-व्यवहार, जो पहले फ़ारसी भाषा में हुआ करता था, अङ्गरेज़ी भाषा में होगा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काग़ज़ों, उसके कर्मचारियों की रिपोर्टों और प्रमुख अङ्गरेज़ लेखकों की पुस्तकों से उपरोक्त अंशों को उद्धृत करने के बाद, कम्पनी की भारतीय शिक्षा-सम्बन्धी नीति की आलोचना करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। उक्त उद्धरण इतने स्पष्ट हैं कि जिस व्यक्ति को भारतीय इतिहास का कुछ भी ज्ञान नहीं, वह भी इन्हें एक बार पढ़ कर अनायास समझ सकता है कि भारतवासियों की शिक्षा और उन्नति के सम्बन्ध में कम्पनी के कर्मचारियों तथा अधिकारियों के विचार कितने भयङ्कर और अनुचित थे! पर तो भी वर्तमान अङ्गरेज़ी शिक्षा के उद्देश्यों और इस शिक्षा से होने वाली भारतीय राष्ट्र की अपरिमित हानि को स्पष्ट कर देने के लिए हम एक और अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ के विचारों का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं।

अङ्गरेज़ी शिक्षा के उद्देश्य

अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रबल और उत्साही समर्थक लॉर्ड मेकॉले के बहनोई सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सन् १८५३ ई० में पार्लमेण्टरी कमिटी के सामने भारतवासियों की

* Macaulay's Minute of 1835.

शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचारों का प्रतिपादन करते हुए एक पत्र पेश किया था। यह पत्र इतना महत्वपूर्ण है कि इसे पढ़ने से वर्तमान शिक्षा के सभी रहस्य भौतिक आकार धारण कर आँखों के सामने खड़े हो जाते हैं और वे स्पष्ट रूप से बता देते हैं कि किन-किन अमानुषिक और हृदयहीन उपायों से भारतवासियों के हृदय से स्वतन्त्रता की सारी आकांक्षाओं को नष्ट करके, उन्हें गुलामी की शिक्षा दी जा रही है। सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखता है कि भारतवासियों को संस्कृत, फ़ारसी और देशी भाषाओं की शिक्षा देने तथा भारत के राष्ट्रीय साहित्य को जीवित रहने देने का परिणाम यह होगा कि:—

" . . . would be perpetually reminding the Mohammedans that we are infidel usurpers of some of the fairest realms of the faithful, and the Hindoos, that we are unclean beasts, with whom it is a sin and shame to have any friendly intercourse. Our bitterest enemies could not desire more than that we should propagate systems of learning which excite the strongest feelings of human nature against ourselves.

"The 'spirit' of English Literature, on the other hand, cannot but be favourable to the English connection. Familiarly acquainted with us by means of our literature, the Indian youth almost cease to regard us as foreigners. They speak of our great men with the same enthusiasm as we do. Educated in the same way, interested in the same objects, engaged in the same pursuits with ourselves, they become more English than Hindoos, . . . and from violent opponents, or sullen conformists, they are converted into zealous and intelligent co-operators with us, . . . they cease to think of violent remedies, . . .

". . . As long as the natives are left to brood over their former independance, their sole specific for improving their condition is, the immediate and total expulsion of the English. A native patriot of the old school has no notion of anything beyond this; . . . It is only by the infusion of European ideas, that a new direction can be given to the national views. The young-men brought up at our seminaries, turn with contempt from the barbarous despotism under which their ancestors groaned, to the prospect of improving their national institutions on the English model. . . . So far from having the idea of driving the English into the sea uppermost in their minds, they have no notion of any improvement but such as rivets their connection with the English, and makes them dependent on English protection and instruction.

'The only means at our disposal . . . is, to set the natives on a process of European improvement, to which they are already sufficiently inclined. They will then cease to desire and aim at independence on the old Indian footing. A sudden change will then be impossible; and a long continuance of our present connection with India will even be assured to us. . . . The natives will not rise against us. . . . The national activity will be fully and harmlessly employed in acquiring and diffusing European knowledge, and naturalising European institutions. The educated class. . . . will naturally cling to us. . . . There is no else of our subjects to whom we are so thoroughly necessary as those whose opinions have been cast in the English mold; they are spoiled for a purely native regime; they have everything to fear from the premature establishment of a native Government; . . .

" In following this course we should be trying no new experiment. The Romans atonce civilized the nations of Europe and attached them to their rule by Romanising them, or, in other words, by educating them in the Roman literature and arts and teaching them to emulate their conquerors instead of opposing them. Acquisition made by superiority in war were consolidated by superiority in the arts of peace, and the remembrance of the original violence was lost in that of the benefits which resulted from it. The provin-

cials of Italy, Spain, Africa and Gaul, having no ambition except to imitate the Romans, and share their privileges with them, remained to the last faithful subjects of the Empire, and the union was at last dissolved, not by internal revolt, but by the shock of external violence, which involved conquerors and conquered in one common overthrow. The Indians will, I hope, soon stand in the same position towards us in which we once stood towards the Romans. Tacitus informs us, that it was the policy of Julis Agricola to instruct the sons of the leading men among the Britons in the literature and science of Rome and to give them a taste for the refinements of Roman civilization. We all know how well this plan answered. From being obstinate enemies, the Britons soon became attached and confiding friends ; and they made more strenuous efforts to retain the Romans, than their ancestors had done to resist their invasion. It will be a shame to us if, with our greatly superior advantages, we also do not make our premature departure be dreaded as a calamity . . .

"These views were not worked out by reflection, but were forced on me by actual observation and experience. I passed some years in parts of India, where owing to the comparative novelty of our rule and to the absence of any attempt to alter the current of native feeling, the national habits of thinking remained unchanged. There high and low, rich and poor, had only one idea of improving their political condition. The upper classes lived upon the prospect of regaining their former pre-eminence ; and the lower, upon that of having the evenues to wealth and distinction re-opened to them by the re-establishment of a native government. Even sensible and comparatively well-effected natives had no notion that there was any remedy for the existing depressed state of their nation except the sudden and absolute expulsion of the English. After that, I resided for some years in Bengal, and there I found quite another set of ideas prevalent among the educated natives. Instead of thinking of cutting the throats of the English, they were aspiring to sit with them on the grand jury or on the bench of magistrates. . . .*"

अर्थात्—"मुसलमानों को सदा यह बात याद आती रहेगी कि हम काफ़िर ईसाइयों ने उनके अनेक सुन्दर से सुन्दर प्रदेश उनसे ज़बर्दस्ती छीन कर अपने क़ब्ज़े में कर लिए हैं, और हिन्दुओं को सदा यह याद आता रहेगा कि अङ्गरेज़ ऐसे मलेच्छ और घृणित पशु हैं, जिनके साथ किसी भी प्रकार की मित्रता का नाता रखना लज्जास्पद और पाप है। हमारे बड़े से बड़े शत्रु भी इससे बढ़ कर हमारे अमङ्गल की और कोई इच्छा नहीं कर सकते कि हम स्वयं अपनी प्रजा में ऐसी विद्या का प्रचार करें, जिससे मानव-स्वभाव के उग्र से उग्र भाव हमारे विरुद्ध भड़क उठें।

"इसके विपरीत अङ्गरेज़ी साहित्य का प्रभाव अङ्गरेज़ी राज्य के लिए हितकर हुए बिना नहीं रह सकता। जो भारतीय नवयुवक हमारे साहित्य के द्वारा हमसे भली-भाँति परिचित हो जाते हैं, वे हमें विदेशी समझना प्रायः बन्द कर देते हैं। वे हमारे महापुरुषों की चर्चा उसी उत्साह से करते हैं, जिस उत्साह से हम करते हैं। हमारी ही जैसी शिक्षा पाने, हमारी ही जैसी मनोवृत्ति प्राप्त करने, हमारे ही जैसे उद्योगों में प्रवृत्त होने के कारण वे हिन्दू कम रह जाते हैं, अङ्गरेज़ अधिक बन जाते हैं। × × × इसका परिणाम यह होता है कि बजाय इसके कि वे हमारा तीव्र विरोध करें, अथवा हमारे अनुयायी होते हुए भी हमारे विरुद्ध खार खाए बैठे रहें, वे हमारे उत्साही और चतुर सहायक बन जाते हैं। × × × इसके बाद वे हमारे विरुद्ध उग्र उपायों का अवलम्बन करने की बात सोचना भी बन्द कर देते हैं, × × ×।

"× × × जब तक भारतवासियों को अपनी पहली स्वतन्त्रता याद रहेगी, और उन्हें उसके सम्बन्ध में

* A paper on the political tendency of the different systems of education in use in India, by Sir Charles E. Trevelyan, submitted to the Parlimentary Committee of 1853.

सोचने-विचारने का अवसर मिलता रहेगा, तब तक वे अपनी दशा सुधारने का एक मात्र उपाय यही सोचेंगे कि वे अपने देश से अङ्गरेज़ों को शीघ्र और पूर्णतः निकाल बाहर करें। प्राचीन विचार वाले भारतीय देशभक्तों के मन में इसके अतिरिक्त और कोई भाव नहीं है; × × × उनके राष्ट्रीय विचारों को दूसरी ओर मोड़ने का केवल यही उपाय है कि उनमें पाश्चात्य विचारों का प्रचार किया जाय। जो युवक हमारे विद्यालयों में पढ़ते हैं वे उस जङ्गली और निरङ्कुश शासन को, जिसके अधीन उनके पूर्वज पीड़ित होकर आर्तनाद किया करते थे, घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं और यह आशा करते हैं कि वे अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं का निर्माण अङ्गरेज़ी ढाँचे पर करेंगे। × × × इसके बदले कि उनके हृदय में अङ्गरेज़ों को अपने देश से निकाल कर समुद्र में फेंक देने की भावना सर्वोपरि हो, वे अपनी उन्नति की कोई ऐसी कल्पना भी नहीं करते हैं, जिसके द्वारा उनके ऊपर अङ्गरेज़ी राज्य लोहे की कीलों से जड़ कर और अधिक मज़बूत न हो जाय, और जिसके द्वारा अङ्गरेज़ी शिक्षा और रक्षा पर सर्वथा निर्भर न हो जायँ। × × × हमारे सामने एकमात्र उपाय यही है कि हम भारतवासियों को यूरोपियन प्रणाली से उन्नति करने के मार्ग पर अग्रसर कर दें, इससे न तो उनमें प्राचीन आदर्श पर अपने को स्वतन्त्र करने की इच्छा रह जायगी और न उनका यह उद्देश्य ही रह जायगा। देश में अकस्मात् क्रान्ति का होना फिर असम्भव हो जायगा और बहुत दिनों तक भारत पर हमारा प्रभुत्व बना रहना भी निश्चित हो जायगा; × × × भारतवासी फिर हमारे विरुद्ध कभी विद्रोह न करेंगे, × × × उनके राष्ट्रीय आन्दोलनों की सारी शक्ति यूरोपियन शिक्षा के ग्रहण और प्रचार तथा भारतवर्ष में यूरोपियन संस्थाओं का निर्माण करने में व्यतीत रहेगी और उनसे हमें किसी भी प्रकार की हानि की आशङ्का नहीं रह जायगी। शिक्षित भारतवासी × × × स्वभावतः हमारा सामीप्य प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे। × × × हमारी प्रजा की किसी भी श्रेणी के मनुष्यों के लिए हमारा अस्तित्व इतना अधिक आवश्यक नहीं है, जितना उन लोगों के लिए, जिनके विचार अङ्गरेज़ी साँचे में ढल गए हैं; इनका चरित्र शुद्ध भारतीय राज्य की दृष्टि से सर्वथा भ्रष्ट हो जाता है; इन्हें बिना उपयुक्त समय के उपस्थित हुए भारतीय राज्य के प्रतिष्ठित हो जाने में हर प्रकार का भय रहता है × × ×।

"× × × इस मार्ग का अवलम्बन करने में हम कोई नया प्रयोग नहीं करेंगे। रोमन लोगों ने एक साथ ही यूरोपियन देशों को सभ्य बनाया और उनमें अपनी संस्कृति का प्रचार करके, अथवा, दूसरे शब्दों में, उन्हें रोमन साहित्य और कला की शिक्षा देकर, और अपने विजेताओं के साथ विरोध करने के बदले प्रतिद्वन्द्विता करना सिखा कर, उन्हें अपने साथ आबद्ध कर लिया। विजेताओं ने युद्ध की कला में श्रेष्ठता दिखाकर जो विजय प्राप्त की थी, उसे उन्होंने शान्ति की कलाओं में भी अपने को विजित जातियों की अपेक्षा श्रेष्ठतर प्रमाणित करके स्थायी बनाया; और विजित जातियों ने अपनी अपमान-जनक पराजय की स्मृति को उससे प्राप्त होने वाली सुविधाओं के प्रलोभन में भुला दिया। इटली, स्पेन, अफ़्रिका और गॉल प्रान्त के निवासियों के हृदय में रोमन लोगों का अनुकरण करने और उनके साथ-साथ उन्हीं के समान विशेषाधिकारों का उपभोग करने के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार की महत्वाकांक्षा के न रह जाने के कारण, वे अन्तकाल तक साम्राज्य की विश्वासपात्र प्रजा बने रहे; और अन्त में साम्राज्य से उनके विच्छेद के कारण आन्तरिक विद्रोह नहीं, बल्कि बाहरी आक्रमण था, जिसने विजेता और विजित दोनों को एक साथ ही उखाड़ कर फेंक दिया। मुझे आशा है कि थोड़े ही दिनों में भारतवासियों का सम्बन्ध हमारे साथ ठीक वैसा ही हो जायगा, जैसा कभी हम लोगों का सम्बन्ध रोमन लोगों के साथ था। टैसीटस हमें बताता है कि जुलियस ऐग्रीकोला की यह नीति थी कि बड़े-बड़े अङ्गरेज़ों के लड़कों को रोमन साहित्य और रोमन विज्ञान की शिक्षा दी जाय और उनमें रोमन सभ्यता की विलासिता के प्रति अभिरुचि उत्पन्न कर दी जाय। हम सभी जानते हैं कि यह नीति कहाँ तक सफल हो सकी थी। इसी नीति का यह फल था कि जो अङ्गरेज़ पहले रोमन लोगों के हठी शत्रु थे, वे शीघ्र ही उनके भक्त और हार्दिक मित्र बन गए, और उनके पूर्वजों ने रोमन आक्रमणों को रोकने के लिए जितना प्रयत्न किया था, उससे कहीं अधिक प्रचण्ड चेष्टा उन्होंने रोमन शासकों

को अपने देश में रोक रखने के लिए की। हमारे पास रोमन लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ साधन हैं, इसलिए हमारे लिए यह शर्म की बात होगी ; यदि हम भारतवासियों की मनोवृत्ति को इस प्रकार की न बना दें, जिससे वे समझने लगें कि अचानक उनका देश छोड़ कर हमारा चला जाना उनके लिए एक भयङ्कर विपत्ति है।×××

"मेरे ये विचार किसी मानसिक चिन्ता के फल नहीं हैं, बल्कि वास्तविक निरीक्षणों और अनुभवों से विवश होकर मुझे इन परिणामों पर पहुँचना पड़ा है। मैंने कई वर्ष भारतवर्ष के ऐसे भागों में व्यतीत किए हैं, जहाँ हमारा शासन अभी हाल ही में स्थापित हुआ था और जहाँ लोगों के भावों को दूसरी दिशा में मोड़ने की चेष्टा नहीं होने के कारण, उनके राष्ट्रीय विचारों में अभी तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उन प्रान्तों में छोटे और बड़े, धनी और दरिद्र, सब लोगों के सामने केवल एक ही समस्या थी—उनकी राजनीतिक दशा का सुधार! ऊँची श्रेणियों के आदमी इस आशा पर जी रहे थे कि हम अपना खोया हुआ प्रभुत्व पुनः प्राप्त कर लेंगे; और निम्न श्रेणियों के आदमी इस आशा में थे कि देशी राज्य की पुनः स्थापना होने के बाद वैभव और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के मार्ग हमारे लिए पुनः खुल जायँगे। जिन बुद्धिमान् भारतवासियों पर अपेक्षाकृत हम लोगों का अधिक प्रभाव पड़ा था, उन्हें भी अपने देश की पतित अवस्था को सुधारने का इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग न दीखता था कि अङ्गरेज़ों को शीघ्र और पूर्णरूपेण बाहर निकाल दिया जाय। इसके बाद मैंने कुछ वर्ष बङ्गाल में बिताए, जहाँ हमने शिक्षित भारतवासियों में एक दूसरे ही प्रकार के विचार प्रचलित पाए। वे लोग अङ्गरेज़ों के गले काटने का विचार करने के बदले, उनके साथ जूरी के प्रतिष्ठित पद या मैजिस्ट्रेट के सम्मानित आसन पर बैठने की आकांक्षाएँ कर रहे थे।×××"

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के उपरोक्त लम्बे और स्पष्ट पत्र को उद्धृत करने के बाद वर्तमान अङ्गरेज़ी शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालने के लिए अन्य किसी रिपोर्ट या बयान का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, तथापि वर्तमान शिक्षा-नीति के नग्न-स्वरूप को खोल कर पाठकों को दिखा देने के अभिप्राय से हम सन् १८५४ ई० के 'एजुकेशन डिस्पैच' से एक वाक्य और उद्धृत कर देना चाहते हैं। सन् १८५३ ई० की जाँच के बाद कम्पनी के डाइरेक्टरों ने १७ जुलाई, सन् १८५४ को भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लॉर्ड डलहौज़ी के नाम एक पत्र भेजा था, जिसे सन् १८५४ ई० का 'एजुकेशन डिस्पैच' या 'वुड्स डिस्पैच' भी कहते हैं, क्योंकि सर चार्ल्स वुड उस समय कम्पनी के 'बोर्ड ऑफ़ कन्ट्रोल' का प्रेज़िडेण्ट था। बोर्ड ऑफ़ कन्ट्रोल के प्रेज़िडेण्ट का पद आजकल के भारतमन्त्री के पद के समान समझा जाता था। उस पत्र में एक स्थान पर गवर्नर-जनरल को सम्बोधन करके कहा गया है कि शिक्षा की इस नवीन योजना का उद्देश्य "आपको शासन के प्रत्येक विभाग के लिए बुद्धिमान् और विश्वस्त नौकर दिलवाना है" (. . . enabling you to obtain the services of intelligent and trustworthy persons in every Department of Government) तथा इस बात को "पक्का कर लेना है कि इङ्गलैण्ड के उद्योग-धन्धों के लिए जिन अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है, और जिनकी इङ्गलैण्ड के सब श्रेणी के लोगों में ख़ूब खपत होती है, वे सब पदार्थ अधिक परिमाण और अधिक निश्चयपूर्वक सदा इङ्गलैण्ड पहुँचते रहें, और इसके साथ ही साथ इङ्गलैण्ड के बने हुए माल के लिए भारत में लगभग अनन्त माँग बनी रहे" (. . . secure to us a larger and more certain supply of many articles necessary for our manufactures and extensively consumed by all classes of our population as well as an almost inexhaustible demand for the produce of British labour). जिस समय यह पत्र जारी किया गया था, उस समय तक कम्पनी के अधिकारियों को मेकॉले और ट्रेवेलियन के बताए हुए प्रयोग को करने का साहस नहीं हो सका था। किन्तु केवल तीन ही वर्षों के बाद अर्थात् सन् १८५७ ई० में भारतीय स्वतन्त्रता के उस विख्यात युद्ध ने, जिसने भारत में कम्पनी के अमानुषिक अत्याचारों का अन्त करने में लगभग पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली थी, जब मेकॉले और ट्रेवेलियन की नीतिज्ञता और दूरदर्शिता को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिया, तब कम्पनी के अधिकारियों ने ठीक विद्रोह के वर्ष अर्थात् सन् १८५७ ई० में

कलकत्ते, बम्बई और मद्रास में सरकारी विद्यालय खोलने का प्रस्ताव पास किया और सन् १८५४ ई० में उपरोक्त 'एजुकेशन डिसपैच' को पुनः दुहरा कर पक्का किया गया। यह प्रसिद्ध डिसपैच ही अङ्गरेज़ शासकों की शिक्षा-नीति और वर्तमान अङ्गरेज़ी शिक्षा-प्रणाली का जन्मदाता है।

हमें आशा है, देशवासी उपरोक्त पंक्तियों के प्रकाश में अपनी वास्तविक परिस्थिति को पहचानने में समर्थ होंगे। शासकों की कूट-नीति के लिए उन्हें गालियाँ देना अथवा उनकी निन्दा करना न्याय का गला घोटना होगा। हमें इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ बतलाता है कि विजित जातियों पर अपना प्रभुत्व एवं शासन को सुदृढ़ करने के लिए प्रत्येक विजेता जाति ने इसी नीति का अवलम्बन किया है, इसलिए हमारे वर्तमान शासकों ने कोई अनोखी बात नहीं की है। दोषी वे हैं जिनके नेतृत्व में रह कर अभागे भारत की आज यह शोचनीय दुर्गति हो रही है! "पूर्ण स्वतन्त्रता" (Complete Independence) का फ़तवा देने वाले अपनी स्वार्थपूर्ण आकांक्षाओं में आकण्ठ विलीन अधिकांश नेताओं और स्वराज्य की भिक्षा माँगने वाली ग़ुलाम जनता को सबसे पहले अपने ग़ुलामी के कारणों पर विचार करना चाहिए! इन कारणों को ढूँढ़ कर उनमें सुधार होते ही मूर्तिमान स्वराज्य उनके चरणों में लोटने लगेगा!

प्रतीक्षा की समाधि

[रचयिता—पं० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

(१)

उपेक्षा की लज्जा से आज,
निराशा की मदिरा कर पान,
क्रान्ति की मञ्जूषा में मौन,
निभाते हो तुम कैसी शान,
तड़प कर इस सूने में हाय!
बता दो! क्यों करते विश्राम?

(२)

सुनाते क्या सन्देश शृगाल,
कहानी किसकी कहते काग,
व्याल दिखलाते क्रीड़ा कौन,
उलूकों का, क्या भाया राग?
आज गाते हो इनके सङ्ग—
बता दो! बेसुध! कौन विहाग?

(३)

हुआ क्या तुमसे भी खिलवाड़,
लगी क्या कोई ठेस कठोर,
लुटे क्या असमय तुम भी मीत,
प्रणय की टूट चुकी क्या डोर?
किया क्या, तुमको तज चुपचाप,
किसी परदेशी ने प्रस्थान?

(४)

निशा-नीरव देती अब शान्ति,
किया करती ऊषा शृङ्गार,
तुम्हें बहलाता मन्द समीर,
कभी पावस जतलाता प्यार?
किन्तु क्या, इस निर्जन में, हाय!
कभी वे भी आते इस ओर?

अविवाहिता

[ले० श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', बी० ए०]
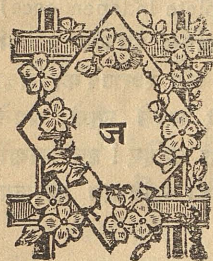
जयदेव इस बात पर अड़ा हुआ था कि जब तक उसका विद्यार्थी-जीवन समाप्त न हो जाय, वह ब्याह न करेगा। अभी उसे एम० ए० पास करने में दो साल की देरी थी और उसके बूढ़े माँ-बाप अधीर हो उठे थे। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे मरने के पहले वे बहू का मुँह न देख सकेंगे। उनके विश्वास की इस दुर्बलता का कारण भी था। बात असल यह थी कि उनके घर और कोई था नहीं, और जयदेव अपने स्कूल-जीवन से ही ब्याह की अवधि बढ़ाता चला आ रहा था। इन्ट्रेन्स से एफ़० ए०, एफ़० ए० से बी० ए०, और अब बी० ए० से एम० ए० की सीमा तक पहुँचते-पहुँचते वह अपनी तीव्र अस्वीकृति से कई बार उनकी कोमल अभिलाषा को घायल कर चुका था। अब उस घाव की टीस बहुत बढ़ गई थी, उनका अरमान तड़प रहा था। उन्होंने कातर स्वर में कहा—बेटा जय! क्या हम लोग मर जायँगे तब ब्याह करोगे?

माँ-बाप की इस मिली हुई कातरता ने उसे अस्थिर बना दिया। उसकी आँखें भर आईं और वह माँ की ओर देखता हुआ बोला "नहीं, ऐसा क्यों होगा माँ?" फिर पिता की ओर देखकर बोला—दो ही वर्ष की तो बात है बाबू जी, थोड़ा और नहीं ठहर सकते क्या?

बूढ़े शिवदयाल मिश्र ने आँखों में आँसू भर कर जवाब दिया—ठहरना तो बहुत दिनों तक चाहता हूँ बेटा, पर ठहर सकूँगा या नहीं, कौन जानता है? पका आम बन रहा हूँ, न जाने कब टपक पड़ूँ! अपनी माँ की ओर देखो बेटा, बहू बिना उसे कितना कष्ट हो रहा है!

जयदेव कुछ जवाब न देकर सिर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा! उसकी गम्भीर नीरवता के कारण एक दारुण हलचल मची हुई थी!

उसकी चुप्पी को स्वीकृति का आभास समझ कर शिवदयाल बोले—तो क्या कहते हो बेटा, उन्हें वचन दे दूँ? बेचारे दो दिनों से दरवाज़े पर हाथ जोड़े बैठे हैं! उनकी विनती, उनका आग्रह और उनकी अवस्था देख-कर मैं लाज से मरा जा रहा हूँ।

"ये लोग हैं कौन?"—जयदेव ने उसी तरह सिर झुकाए हुए पूछा।

"ये लोग बँसवाड़ी गाँव के कुलीन ब्राह्मण हैं। जिनकी कन्या की ओर से बातचीत करने आए हैं, उनका नाम बलराम पाठक है! घराना अच्छा है, सुनता हूँ, लड़की भी बड़ी अच्छी है!"—शिवदयाल ने आशा की थोड़ी-सी ज्योति पाकर बड़े उत्साह के साथ जवाब दिया।

जय कुछ देर तक चुप रहा। फिर सिर उठाकर, बिना किसी प्रकार का सङ्कोच दिखाए, बोला—जब आप लोग किसी तरह नहीं मानते तो मैं भी अब अपने हठ से आप लोगों का दिल नहीं दुखाना चाहता। पर इसके साथ ही मैं आप लोगों के आगे दो शर्तें रखना चाहता हूँ। वे शर्तें, चाहे जैसे हो, मञ्ज़ूर करनी होंगी।

"तुम जो-जो चाहोगे वही होगा बेटा!"—प्रसन्नता से उछल कर जयदेव की माँ बोल उठीं।

"होगा क्यों नहीं?" उसके पिता जी भी बोल उठे—"बताओ तुम्हारी दोनों शर्तें क्या हैं?"

"पहली तो यह" जयदेव ने गला साफ़ करते हुए कहा—"कि आप लोग कन्या के पिता से दहेज़ की प्रतिज्ञा न करावें, उनसे जितना देते बनेगा विवाह हो जाने पर उपहार-स्वरूप स्वयं दे देंगे। दूसरी शर्त यह है कि विवाह के पहले मैं स्वयं अपनी आँखों से कन्या को देख लूँगा। अगर ये दोनों शर्तें मञ्ज़ूर हों तो मुझे आप लोगों का प्रस्ताव स्वीकृत है।"

शिवदयाल ने कुछ उदास होकर कहा—रुपए-पैसे की तो मैं बात ही नहीं करता बेटा! न मुझे इसकी कमी है, न चाह। दहेज़ की प्रथा से मुझे ख़ुद भी घृणा है। पर कन्या देखने की बात लोक-लाज से सम्बन्ध रखती है। लोग इसे अच्छा न समझेंगे और न शायद कन्या-पक्ष वाले ही इस पर राज़ी होंगे।

"तो ऐसा हुए बिना मैं भी ब्याह नहीं कर सकता!" जयदेव ने बड़ी दृढ़ता से जवाब दिया—"ऐसी लोक-लाज को मैं पहले तोड़ूँगा जो वैवाहिक जीवन और सुख के बीच दीवार बन कर खड़ी रहती है।"

पिता किसी गम्भीर चिन्ता में पड़ गए और माता ने दुलार से कहा—लड़की को अच्छी तरह देखे बिना तो ब्याह हो ही नहीं सकता बेटा! मगर उसे देखने के लिए तुम्हारे जाने की क्या ज़रूरत है? यह बात ठीक नहीं होगी! हाँ, कन्या-निरीक्षण के लिए तुम अपने विश्वासी मित्रों में से, जिनको-जिनको चाहो, भेज दो। तुम ख़ुद जाओगे तो लोग क्या कहेंगे? इससे हँसी न होती है बेटा?

"मैं इस हँसी की परवा नहीं करता माँ!" जयदेव ने उसी दृढ़ता से जवाब दिया—"मेरे मित्रों को तो ब्याह करना नहीं है, उस कन्या से ब्याह तो मैं करूँगा। जो चीज़ उन्हें पसन्द आती है वही मुझे भी आ जाय, यह तो ज़रूरी नहीं है। लड़की को मैं स्वयं देखूँगा।"

इसके आगे माँ-बाप में से कोई कुछ न बोल सका। पं० शिवदयाल जी उठकर बाहर चले गए। थोड़ी देर बाद वहाँ से लौटे तो उनका चेहरा खिला हुआ था। कन्या-पक्ष के लोगों ने जयदेव की शर्त स्वीकार कर ली थी।

उसके दूसरे ही दिन जयदेव अपने दो-तीन चुने हुए मित्रों को लेकर कन्या-निरीक्षण करने गए। देखकर मोहित हो गए। वह देव-कन्या की तरह सुन्दरी थी। उसकी एक तस्वीर उतार ली और उछलते हुए हृदय से घर लौटे। रास्ते भर मित्र उन्हें बधाइयाँ देते आए—रास्ते भर उनका हृदय आनन्द और एक नई बेचैनी से उछलता रहा। घर आए तो लोग इनकी ओर देख-देख कर कलियुग को कोसने लगे। किसी ने अपने कपार में चोट दी, कोई पृथ्वी ध्वस्त हो जाने की भविष्य-वाणी उगलने लगा। स्वयं अपनी आँखों से भावी बहू का मुँह देख आना, उसकी तस्वीर उतार लाना, परम्परागत लोक-लज्जा की छाती पर खड़ा होकर समाज की मूढ़ता का अपमान करना था। चारों ओर इसकी ख़ूब आलोचना हुई। पर जयदेव के माँ-बाप कुछ न बोले। वे प्रसन्न थे।

आँगन में पैर रखते ही जयदेव की माँ ने पूछा—कहो बेटा, मेरी बहू कैसी है?

जयदेव ने उनके चरणों पर वही तस्वीर रख दी और लज्जा कर हँसते हुए कहा—अब तुम बड़ी ख़ुशी से विवाह का दिन निश्चित कर सकती हो माँ, मैं वचन दे आया हूँ।

२

विवाह की तैयारी इतनी धूमधाम से हुई कि देखने वाले दङ्ग रह गए। किसनपुर गाँव से आज तक ऐसी बारात निकली ही नहीं थी! जयदेव इस धूमधाम के विरोधी थे, पर माँ के आगे इस बात पर उन्हें हार खानी पड़ी। एकलौते, तिस पर इतने पढ़े-लिखे, बेटे का ब्याह था, घर में खाने-पीने की कमी थी नहीं, मिश्र जी ने अपने उल्लास की धारा को वेगवती बनाने के लिए रुपए-पैसे को पानी बना दिया! प्रायः देखा जाता है कि बेटे के ब्याह में लोग बेटी के बाप का गला मरोड़ा करते हैं, उनसे दहेज़ में लम्बी-लम्बी रक़में लेकर व्यर्थ की धूमधाम में रुपयों का श्राद्ध किया करते हैं। शिवदयाल मिश्र ने रुपए तो बहुत बरबाद किए, लेकिन बेटी के बाप का ख़ून चूस कर नहीं, अपनी निजी तहवील ख़ाली करके। बारात जब बँसवाड़ी गाँव में घुसी तो वहाँ के लोग विस्मय-विमुग्ध हो गए। सारे गाँव में वैभव की ज्योति जग उठी, ऐश्वर्य की आभा फैल गई! चारों ओर चहल-पहल, गाना-बजाना, धूम-धड़ाका, हास-परिहास आदि के मारे एक नई ही दुनिया नज़र आ रही थी। सब के सब उल्लास की धारा में बहे जा रहे थे। अगर कोई स्थिर था तो जयदेव, जिसके हृदय में एक ऐसी हलचल मच रही थी जिसे वह स्वयं नहीं पहचान सकता था, जिसके आनन्द-सागर में ज्वार भी था और भाटा भी, जिसे गाने की भी इच्छा हो रही थी और रोने की भी! उत्सव और उल्लास की वह पराकाष्ठा देख कर मानों उसके मन में उनकी वास्तविकता और चिरन्तनता के प्रति अविश्वास की आँधी उठ रही थी! वह बड़ी बेचैनी के साथ विवाह-घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था।

प्रतीक्षा का अन्त हुआ, जयदेव विवाह-मण्डप में बुलाए गए। धड़कते हुए हुलास के साथ उन्होंने मण्डप में प्रवेश किया। विवाह की वेदी पर कन्या चुपचाप सिर गाड़े बैठी थी। वे भी उसी के समीप बैठा दिए गए। स्त्रियों की चञ्चलता नाच रही थी, उनका परिहास किल-

किला रहा था, उनकी सङ्गीत-धारा उमड़ रही थी! समस्त वातावरण सङ्गीतमय, सुखमय, मङ्गलमय हो रहा था। सहसा जयदेव की दृष्टि सामने ही खड़ी एक बालिका पर जा पड़ी। उसके मुखड़े पर विषाद की छाया भड़क रही थी। जयदेव का हृदय बड़े ज़ोर से धड़कने लगा! अरे, यह तो वही लड़की है जिसे मैं उस दिन देख गया हूँ! हाँ, ठीक वही है, उसको छोड़ और कोई हो नहीं सकती! या मैं ही भूल रहा हूँ? नहीं, यह कैसे हो सकता है? यह सूरत तो मेरी आँखों में समाई हुई है, रास्ते भर तो इसी को देखता आया हूँ! पल भर के लिए भी तो यह छवि नहीं भूली! तब फिर मैं इसे अपने से दूर इस तरह खड़ी क्यों देख रहा हूँ? कहीं यह उसकी बहिन तो नहीं है? सम्भव है, दोनों का रूप-रङ्ग एक ही सा हो। ऐसा होना तो कोई असम्भव नहीं है; पर नहीं, यह वही लड़की है जिसे मैं देख गया हूँ! × × × सोचते-सोचते जयदेव पसीने से तर हो गया। उसी क्षण उसने अपने पास बैठी हुई कन्या की ओर दृष्टि घुमा दी। थोड़ी देर तक उसने तीक्ष्ण दृष्टि से उसे देखा और जान लिया कि विवाह की वेदी पर उसके जीवन-सुख का बलिदान होने वाला है! वह घबड़ा कर खड़ा हो गया और व्याकुल स्वर में बोला—मेरी तबीयत न जाने कैसी हो रही है, मैं ज़रा बाहर जाऊँगा।

कई स्त्री-पुरुष एक ही साथ कह उठे—ब्याह किए बिना कैसे बाहर जाइएगा?

"मैं ज़रूर जाऊँगा" कह कर जयदेव तेज़ी के साथ चल पड़े। चारों ओर खलबली मच गई। लोगों ने उन्हें ज़बर्दस्ती पकड़ रक्खा। इसी समय एक हाथ में डण्डा लिए पं० बलराम पाठक भी आ पहुँचे। उनके साथ दो-तीन और लाठी वाले थे। उन्होंने कहा—भागे कहाँ जाते हो? चलो सीधे से लड़की के माथे में सिन्दूर दे दो।

जयदेव ने घबड़ा कर कहा—मेरी तबीयत बहुत ख़राब हो रही है, शौच जाना चाहता हूँ।

"अच्छी बात है, चलो"—कह कर बलराम पाठक पकड़ कर उसे पास की एक गली में बैठा आए। ख़ुद लाठी लेकर सिर पर खड़े रहे और चारों ओर से आठ-दस लाठी वालों को घेर कर खड़े रहने की आज्ञा दी। बेचारा जयदेव आध घण्टा तक उसी तरह बैठा रहा। आख़िर बलराम पाठक से रहा नहीं गया। क्रोध से उसका हाथ पकड़ कर खींचते हुए वे बोले—विवाह की घड़ी टल जायगी तब उठेगा क्या? जल्दी चल, नहीं तो यहीं ढेर कर दूँगा।

जयदेव डर के मारे थर-थर काँप रहे थे। वे कुछ कर न सके। लोग उन्हें पकड़ कर विवाह-मण्डप में ले गए और उसी तरह लाठी तान कर बोले—चुपचाप लड़की के माथे में सिन्दूर दे दो, नहीं तो लौट कर नहीं जाने पाओगे!

जयदेव अचेत होकर गिर पड़े। उसी हालत में उनके हाथ से सावित्री के माथे पर सिन्दूर छिड़कवा दिया गया!

३

सावित्री के चेहरे की बनावट बुरी नहीं थी, पर उसका रङ्ग इस लायक़ नहीं था कि वह सुन्दरी कही जा सके। यह दूसरी बात है कि सौन्दर्य के आध्यात्मिक तत्व को प्यार करने वाले लोग उसे भी सुन्दरी कह दें। पर सभी लोग ऐसा न कहेंगे। कम से कम हम तो उसे सुन्दरी मानने को तैयार नहीं हैं। हमीं क्यों, बँसवाड़ी गाँव के सब लोग यही कहते थे कि वहाँ अगर कोई कुरूप लड़की थी तो सावित्री ही। उसी सावित्री के साथ जयदेव के ब्याह की बात चली। और जब उसने कन्या देखने पर बड़ा ज़ोर दिया तो बलराम पाठक एक चाल चल गए—सावित्री को न दिखा कर उन्होंने निरोजा नाम की एक दूसरी लड़की को जयदेव के सामने कर दिया।

निरोजा का उसी गाँव में ननिहाल था। उस दिन सावित्री से भेंट करने उसके घर चली गई थी। वहीं बलराम और उनकी स्त्री के भुलावे में पड़कर उसे सावित्री का प्रतिनिधित्व स्वीकार करना पड़ा। पीछे जब असली रहस्य मालूम हो गया तो उसे बड़ी पीड़ा होने लगी। उसके माँ-बाप भी इस पर बहुत नाराज़ हुए।

सावित्री के विवाह की वह अमानुषिक लीला समाप्त हो जाने पर जब जयदेव ने बलराम पाठक पर मुक़दमा चलाया तो वही लड़की गवाह बनी। बँसवाड़ी गाँव के बहुत से लोग बलराम के विरुद्ध हो गए। निरोजा के बाप ने जयदेव की ओर से मुक़दमे की पैरवी की। जयदेव का पक्ष बहुत ही बलवान् था। सत्य जिसके पक्ष

में था न्याय भी उसी के पास आया। बलराम को जेल की सज़ा मिली। उसकी जायदाद बिकवा कर सरकार ने जयदेव को हरजाने की रक़म दिलवाई। सावित्री अविवाहिता क़रार कर दी गई!

निरोजा के बाप पं० काशीराम जी पटने के नामी वकील थे। घर के ज़मींदार थे। जयदेव को वे बहुत पहले ही से जानते थे। कई बार उसके श्रोज-भरे भाषण सुन चुके थे, कई पत्र-पत्रिकाओं में उसकी कविताएँ और कहानियाँ पढ़ चुके थे। मन ही मन वे उस पर रीझे रहते थे, उसे किसी तरह अपना बनाना चाहते थे। इस मुक़दमे ने उन्हें उसे अच्छी तरह अपनाने का अवसर दिया।

मुक़दमा समाप्त हो जाने पर जब जयदेव पं० काशीराम जी को धन्यवाद देने गए, तब बात ही बात में वकील साहब उनसे पूछ बैठे—कहिए जयदेव बाबू, विवाह के लिए अब क्या तय किया?

जयदेव ने उदास होकर जवाब दिया—अभी कुछ नहीं।

"क्यों?"—वकील साहब ने व्यग्र भाव से पूछा।

"अभी इतनी जल्दी कैसे क्या तय करूँ? अब तो सोचता हूँ, ब्याह करूँ ही नहीं। शायद भगवान् भी यही चाहते हैं।"—जयदेव अपनी विदग्ध वाणी में बोले।

"नहीं भाई, ऐसा क्यों कहते हो?" वकील साहब कहने लगे—"जो कुछ हो गया उसे भूल जाओ। कम से कम अपने बूढ़े माँ-बाप के ख़ातिर ब्याह तो करना ही होगा, करना ही चाहिए।"

जयदेव ने नम्रता से कहा—जी हाँ, यह तो ठीक है।

परिस्थिति को अनुकूल आते देख वकील साहब चटपट बोल उठे—जयदेव बाबू, सच्ची बात तो यह है कि मैं अपनी निरोजा आपको देना चाहता हूँ। अगर आप कृपा कर मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें तो मैं आपका बड़ा उपकार मानूँ। मेरी बेटी आप ही के योग्य है।

जयदेव को यह आशा नहीं थी। आनन्द से उसका हृदय उत्फुल्ल हो उठा। सिर झुका कर उसने कहा—ज़रा बाबू जी से पूछ लिया जाय?

उसके एक ही सप्ताह बाद निरोजा जयदेव की जीवन-सङ्गिनी हो गई। जो अभी तक उसकी आँखों में ही बसी हुई थी वही अब उसके हृदय की रानी भी बन गई!

४

सावित्री अदालत से तो अविवाहिता क़रार कर दी गई, पर समाज की हृदय-हीनता भी उसे वही समझे तब तो? बात चारों ओर फैल गई थी और सब लोग यही कह रहे थे कि चाहे जिस तरह हो, उसकी माँग में सिन्दूर तो पड़ गया! विवाह और कहते किसको हैं? इस तरह समाज की दृष्टि में वह बेचारी 'अविवाहिता' नहीं 'परित्यक्ता' थी। उसके साथ अब किसी का ब्याह नहीं हो सकता। जन्म भर उसे इसी तरह रहना पड़ेगा। क़ानून चाहे जो कहे, समाज का 'सनातन-धर्म' यह कभी नहीं कह सकता कि सावित्री का वह ब्याह, ब्याह नहीं—ब्याह का अपमान था! जो ऐसा कहेगा तो उसे फिर रहने की जगह कहाँ मिलेगी? सत्य, न्याय और सहृदयता के साथ अगर उसने इस तरह सहानुभूति दिखानी शुरू की तो फिर उसे पूछेगा कौन? मानवता की इन व्यापक भावनाओं के साथ अगर वह सहयोग करने लगे तो समाज की अन्धी और अमानुषिक रूढ़ियों का पालन-पोषण कौन करेगा? वही इतना उदार हो जायगा तो बात-बात पर धर्मशास्त्र की दुहाई देने वाले पाप के व्यवसायी, पृथ्वी पर 'पुण्य' का प्रसार कैसे करेंगे? कैसे वे स्वयं बचेंगे और कैसे बचावेंगे दूसरे लोगों को कलियुग के भीषण प्रहार से? ये सारी बातें ऐसी हैं, जिन पर विचार करने के बाद कोई भी भला आदमी उस समाज को बुरा न कहेगा, जिसमें सावित्री जैसी अभागिनी को जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है! सब लोगों ने एक स्वर से 'शास्त्रीय वचन' दे दिया कि उसके भाग्य में जो होना था हो चुका, अब इसके बाद कुछ नहीं हो सकता। जो कोई उसके साथ ब्याह करेगा वह धर्म-च्युत समझा जायगा।

यह विपत्ति तो थी ही, एक और सुनिए। सावित्री की अपनी माँ उसी समय मर चुकी थी जब वह लगभग पाँच साल की रही होगी। उसके सिर पर थी एक सौतेली माँ, जिसने आज तक उसे 'सवित्रा' छोड़ कर 'सावो' नहीं कहा। पहले ही से बहुत बुरा हाल था, अब तो

क्या कहना है ! बलराम पाठक की जेल-यात्रा के दिन से तो गङ्गादेवी दिन-रात उमड़ती ही रहती हैं ! सविया से भूल कर भी कभी कोई ऐसी बात नहीं कहतीं जिसमें एक अच्छी-सी गाली न मिली हो, कोई भी ऐसा काम नहीं करवातीं जिसके लिए बीच-बीच में उन्हें कृपा-पूर्वक उसकी पीठ पर झाड़ू या लात पटकने का कष्ट न स्वीकार करना पड़ता हो ! गृहस्थी का सारा काम-काज वही करती थी, फिर भी उसे पेट भर भोजन और शरीर भर वस्त्र नहीं मिलता—स्नेह और सहानुभूति तो भला वह कहाँ से पावेगी !

एक दिन दोपहर के समय काम-काज से छुट्टी पाकर वह 'रामायण' पढ़ रही थी। पढ़ते-पढ़ते जब उस जगह पर पहुँची, जहाँ जानकी के वियोग में रामचन्द्र जी विह्वल होकर जङ्गल में चारों ओर इधर-उधर भटक रहे हैं, तब लाख चेष्टा करने पर भी वह अबला अपने दिल को क़ाबू में न रख सकी। रह-रह कर उसका हृदय फटने लगा, रह-रह कर उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। हाय ! इस पृथ्वी पर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जो उसके वियोग में अपने को पल भर के लिए भी विह्वल बना सके; कोई ऐसा हृदय नहीं जिसे इसकी वेदना द्रवीभूत कर सके; कोई ऐसा कलेजा नहीं जिसमें इसकी यातना एक टीस भी उठा सके ! सोने की लङ्का में तड़पने वाली सीता के राम थे, मगर मिट्टी पर पड़ी-पड़ी बिलखने वाली सावित्री के कोई सत्यवान नहीं ! ये बातें रह-रह कर उसके कलेजे को मसोस रही थीं। वह चाहती थी कि जी भर कर एक बार ख़ूब अच्छी तरह रो ले। मगर अपनी स्नेहमयी माँ (!) के भय से बेचारी रो भी नहीं सकती थी। रुदन भी उसके लिए उतना ही मँहगा था जितना सुख। डर था कि कहीं माँ ने देख लिया तो अनर्थ हो जायगा। इसी डर से न वह सिसकती थी, न बुक फाड़कर रोती थी। आँचर से आँसू पोंछती जाती थी और रामायण पढ़ती जाती थी।

इसी समय उसी घर में कुछ गिरने की आवाज़ हुई, जिसमें गङ्गादेवी सो रही थीं। आवाज़ के साथ ही देवी जी चिल्लाती हुई घर से बाहर निकलीं—कहाँ गई री सविया ! मर गई क्या ? इसी तरह चीज़ रक्खी जाती है—अभी तो बच गई, नहीं मेरा माथा ही चूर-चूर हो जाता !

सावित्री चटपट किताब बन्द कर उठ ही रही थी कि इतने में वे धड़धड़ाती हुई पास आ पहुँचीं। देखते ही छाती पर हाथ पटक कर दो क़दम पीछे हटती हुई बोलीं—बाप रे बाप ! तू क्या करने पर तुली हुई है सविया ? तुझे पचीसों बार मना किया कि इस तरह पोथी-पत्रा मत पढ़ा कर, मेहरारू का लिखना-पढ़ना अच्छा नहीं होता। पर अब भी तू नहीं मानती ? तेरे ही लिखने-पढ़ने से तो हमारी यह हालत हुई—अब भी क्या तेरा मन नहीं भरा है ? कैसी कुलच्छनी है तू ?

सावित्री ने डरते-डरते कहा—जी बहलाने के लिए पढ़ लिया करती हूँ माँ, इससे नुक़सान ही क्या है ?

गङ्गादेवी ने झपट कर उसके हाथ से पोथी छीन कर फेंक दी और उसका झोंटा पकड़ कर खींचते हुए कहा—नुक़सान क्या है, यह अब भी नहीं मालूम हुआ तुझे ? तू इधर बैठ कर पोथी न बाँचती होती तो कम से कम अभी दो सेर दही तो बरबाद होने से बच जाता ! उसी जगह बैठकर ज़रा बिल्ली पर नज़र रखती तो दही का बर्तन तो चूर होने से बच जाता ! जी बहलाना है तो इस तरह पोथी लेकर क्या बैठ जाती है ? कोई उपाय क्यों नहीं करती, जिससे ख़ूब अच्छी तरह जी बहले ?

कितना निर्दय आघात था ! कैसी अमानुषिक यातना थी ! कितना कठोर उत्पीड़न !! सावित्री क्या जवाब देती ? उसके पास कुछ बोलने की शक्ति कहाँ थी ? बेचारी विनय-भरी आँखों से गङ्गादेवी की ओर देखती हुई डर के मारे काँपने लगी। हाय ! उसके उस देखने में कितनी दीनता थी ! उस काँपने में कितनी असमर्थता !!

इसी तरह एक-एक बात पर सावित्री को मार और गालियाँ मिला करती थीं। इन्हीं नारकीय यातनाओं के बीच धीरे-धीरे उसके दो वर्ष बीत गए। इन दो वर्षों के भीतर आई हुई भिन्न-भिन्न परिस्थितियों ने उसे बिल्कुल पीस डाला था। वह सावित्री नहीं थी, उसकी सत्ता का उपहास करने वाली एक वैभवहीन काया थी। इसी समय एक दिन जेल से ख़बर आई कि बलराम पाठक मर गए ! यह सावित्री के बाप की मृत्यु नहीं हुई, उसकी एक बची-खुची आशा की मृत्यु हुई। बाप के लौट आने पर उसे कुछ अवलम्ब पाने की आशा

थी, क्योंकि बलराम पाठक में और चाहे जितने अवगुण रहे हों, पर वह अपनी इस अभागिनी बेटी को प्यार बहुत करता था। इसके लिए उसके हृदय में बड़ी ममता थी। अब सावित्री सब तरह से अनाथिनी हो गई।

दिन के साढ़े आठ बज चुके थे। गङ्गादेवी अभी-अभी सोकर उठी थीं। घर से बाहर निकलते ही उन्होंने देखा, सावित्री भयभीत-सी होकर बरामदे में खड़ी थी। वह कुछ कहने के लिए उन्हीं के पास आई थी, सोई देखकर कमरे के बाहर ही खड़ी रही। देखते ही उन्होंने कहा—रसोई में कितनी देरी है?

"अभी तो आग भी नहीं सुलगाई गई"—सावित्री ने त्रस्त-भाव से कहा।

"अभी आग भी नहीं सुलगाई गई?" गङ्गादेवी ने आश्चर्य और क्रोध से स्वर को ऊँचा करके कहा—"तो अभी तक तू सवेरे से कर क्या रही थी? जानती नहीं थी कि मेरे बच्चे ने रात भी कुछ नहीं खाया है? अभी सोकर उठेगा तो खायगा क्या तेरा सिर?"

गङ्गादेवी का बच्चा रामकिसुन अभी सिर्फ़ चौदह वर्ष का था। अपनी माँ के प्रायः सभी गुण उसमें आगए थे—जो नहीं आए थे वे आ रहे थे। गाँव भर की शैतानी का ठेकेदार वह अबोध बच्चा (!) आठ-नौ बजे से पहले सोकर नहीं उठता था। पढ़ने-लिखने से तो उसे कोई मतलब था नहीं, न उसकी माँ इसे पसन्द ही करती थी। सोकर उठते ही वह पहले नियमपूर्वक भोजन माँगता था। थोड़ी सी भी देरी हो जाने पर माँ के सात पुरखों का उद्धार करने लगता और अगर आवश्यक समझता था तो सविया को भी एक-आध दर्जन अपनी अनमोल वाणी सुनाकर ज़ोर-ज़ोर से हाथ-पैर पटकने लगता और घर के बर्तनों की मरम्मत में जुट जाता। सोकर उठते ही उसे ताज़ा खाना मिलना चाहिए—रात की बची हुई कोई चीज़ वह छूता भी नहीं था। थोड़ा-सा चना-चबेना लेकर भी सन्तुष्ट हो जाय, यह बात भी नहीं। इसलिए बेचारी सावित्री को प्रायः प्रति दिन आठ-साढ़े आठ बजे सवेरे तक रसोई अवश्य तैयार कर रखनी पड़ती थी। जिस दिन इसमें थोड़ी सी भी गड़बड़ी हो जाती, उसके प्राण सङ्कट में पड़ जाते थे। आज भी वही हुआ।

गङ्गादेवी का वह गर्जन सुनकर काँपती हुई वह बोली—लकड़ी एक भी नहीं है माँ! कैसे क्या करती?

"कैसे क्या करती?" दाँत पीस कर गङ्गादेवी ने कहा—"लकड़ी नहीं थी तो तेरा सिर तो था? बैठी-बैठी करती क्या रहती है? थोड़ी सी लकड़ी बग़ीचे से ले क्यों नहीं आती? इज़्ज़त उतर जायगी क्या? इतने पैसे कहाँ हैं कि तेरे लिए मैं रोज़ लकड़ी ख़रीद सकूँ? जा, अभी जा, थोड़ी-सी लकड़ी बटोर ला और घण्टे भर के भीतर रसोई तैयार कर दे।

सावित्री के लिए कोई दूसरा उपाय नहीं था। वह चुपचाप लकड़ी चुनने चली गई। इसी समय रामकिसुन गालियाँ बकता हुआ बाहर निकला कि उसे लोग खाना क्यों नहीं दे रहे हैं!

सब कुछ होता था, पर अभी तक जङ्गल जाकर लकड़ी चुनने की नौबत नहीं आई थी। सावित्री गाँव के बाहर वाले बग़ीचे में (बग़ीचा क्यों, वह एक छोटा सा जङ्गल ही था) पहुँची तो एकान्त पाकर फूट-फूट कर रोने लगी। उस अरण्य रोदन से उसकी वेदना बहुत-कुछ कम हो गई। बहुत देर तक बिलख-बिलख कर रोने के बाद उसने धीरे-धीरे लकड़ी चुनना आरम्भ किया। कई जगह उसके पैर में काँटे चुभ गए, हाथ का चमड़ा खुरच गया। बड़े कष्ट के साथ उसने थोड़ी-सी लकड़ी बटोर ली। अभी वह और बटोर ही रही थी कि बड़े ज़ोर से वृष्टि होने लगी। उसी तरह भीगती-काँपती, गिरती-पड़ती, वह सिर पर लकड़ियों का गट्ठर रक्खे घर पहुँची! वहाँ माँ-बेटे में संग्राम छिड़ा हुआ था। आँगन में टूटे-फूटे बर्तन बिखरे पड़े थे। माँ बेटे की मरम्मत कर रही थी, बेटा माँ की पूजा कर रहा था!

सावित्री को देखते ही गङ्गादेवी भूखी शेरनी की तरह टूट पड़ीं! उसकी पीठ पर दो-तीन लात जमाती हुई, दाँत पीस कर बोलीं—तू ही मेरे घर की चुड़ैल है, तेरे ही कारण मेरी यह हालत हो रही है! इतनी देर से वहाँ क्या कर रही थी? यही एक मुट्ठी लकड़ी चुनने में तुझे तीन घण्टे लग गए? और इन्हें भी पानी में भिगो कर ले आई है?

यह आघात असह्य था। सावित्री चिग्घाड़ मार कर वहीं गिर पड़ी। गङ्गादेवी ने उसे घसीट कर उठाते हुए

कहा—मरना है तो मेरे आँगन से बाहर जाकर मर। जा, भाग जा मेरे सामने से।

सावित्री रोती हुई बाहर निकल गई।

५

जयदेव एम० ए० पास करके पटना-कॉलेज में प्रोफ़ेसर हो गए हैं। उनके माँ-बाप भी उन्हीं के साथ वहीं रहते हैं। योंही कभी हुआ तो हवा-पानी बदलने के लिए किसनपुर भी चले जाते हैं, नहीं तो अब असली घर पटने ही में हो गया है।

निरोजा में और सब गुण तो हैं, पर वह गृहस्थी का एक भी काम नहीं सँभाल सकती। मिज़ाज में अमीरी है और शरीर में सुकुमारता। रसोई बनाने से तो वह कोसों दूर भागती है। इसमें उसकी सास का भी दोष है, क्योंकि वह उसे ज़रूरत से ज़्यादा प्यार करती हैं। जब से वह गृहिणी बन कर आई है, उसके सास-ससुर ने उसे एक तिनका तक नहीं उठाने दिया है। जयदेव मन ही मन उससे बहुत खिन्न रहा करते हैं। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता कि उनकी गृहिणी बैठ कर किताबें पढ़ा करे और उनकी माँ चूल्हे की आग फूँका करे। माँ से भी उन्होंने कई बार कहा कि वे क्यों इस तरह उसे काम-काज से दूर किए रहती हैं। पर उन्हें स्नेह-सिञ्चित मुस्कान के साथ बराबर यही उत्तर मिलता—जय, तू भी किसी की माँ और सास होता तो जानता कि मुझे इसमें कितना सुख मिलता है।

जयदेव यह उत्तर पाकर चुप हो जाते, पर उनके हृदय को शान्ति नहीं मिलती थी। वे समझते थे, और उनका समझना सच था कि निरोजा अपने सास-ससुर के प्यार का दुरुपयोग कर रही है। जितना वे लोग उससे काम नहीं करवाना चाहते, उससे कहीं अधिक वह स्वयं काम करने से भागती है।

एक दिन उनसे न रहा गया। उन्होंने निरोजा से कहा—तुम्हें कुछ सङ्कोच भी नहीं मालूम होता है क्या? और कुछ नहीं तो कम से कम भोजन भर बना लिया करो।

"बना कैसे लिया करूँ?" निरोजा ने तमक कर जवाब दिया—"माँ तो मुझे किसी तरह चौके में घुसने नहीं देतीं और तुम रह-रह कर मेरे ही ऊपर बिगड़ते रहते हो!"

"घुसने नहीं देतीं—क्या कह रही हो?" जयदेव ने भी ज़रा आँखें तरेर कर जवाब दिया—"यह क्यों नहीं कहतीं कि उपन्यास पढ़ने से छुट्टी नहीं मिलती?"

"हाँ, नहीं मिलती है तब?"—निरोजा ने क्रुद्ध स्वर में कहा।

"नहीं मिलती है तो उस काम से छुट्टी लेनी होगी" जयदेव ने दृढ़तापूर्वक कहा—"तुम्हें गृहस्थी का भी थोड़ा-बहुत काम सँभालना पड़ेगा। तुम केवल मेरे ही सुख की चीज़ नहीं हो, जिनकी गोद में पल कर मैं तुम्हारा हो सका हूँ उनका भी तुम्हारे ऊपर कुछ ऋण है। उसे चाहे जैसे हो, थोड़ा-थोड़ा करके चुकाना होगा।"

इसके आगे निरोजा कुछ न बोल सकी। वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। रोने की आवाज़ सुनते ही जयदेव की माँ दौड़ पड़ीं। वहाँ पहुँच कर अपनी दुलारी बहू को रोती देख उन्होंने अपने बेटे से डाँट कर पूछा—तू इस तरह इसे डाँटा-डपटा क्यों करता है जय?

जयदेव ने अपने तमतमाते चेहरे पर थोड़ी सी विषाद की छाया नचाते हुए जवाब दिया—मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता माँ, या तो इन्हें चौके में जाने दो या मुझे ही कहो, मैं होस्टल में जाकर रहूँगा।

बेटे की होस्टल में जाकर रहने की बात बूढ़ी शारदादेवी के दिल में घाव कर गई। उन्होंने और कुछ बोलना अच्छा नहीं समझा। वे ख़ूब जानती थीं कि बहू के रहते माँ को काम-धन्धा करते देख उनका जय बहुत ही क्षुब्ध रहा करता है। आज किसी कारण से उसका यह क्षोभ असीम हो उठा है। इसी से वह इतना नाराज़ है। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—बेटा, मेरी बहू से तो यह सब काम होगा नहीं। तू किसी ब्राह्मण या ब्राह्मणी को ला दे। मैं चौके का भार उसी के ज़िम्मे सौंप दूँगी।

"यह फिर देखा जायगा माँ!" जयदेव ने कहा—"तब तक इन्हीं से काम लो। मैं उस आदमी को पसन्द नहीं करता जो काम से जी चुरावे। इन्हें भी कुछ सीख लेना चाहिए।"

जयदेव की यह दृढ़ता सास और पतोहू दोनों के हृदय पर असर कर गई। शारदादेवी गद्गद हो उठीं। निरोजा की दृष्टि में उसके पति बहुत ही ऊँचे उठ गए। वह समझती थी, उसके स्वामी उसे विवेक की आँखें

बन्द करके प्यार करते हैं, उसके सौन्दर्य पर मरते रहते हैं, उसी के इशारों पर चलते हैं। उसका ऐसा समझना ठीक नहीं था, यह बात नहीं है। जयदेव सचमुच निरोजा को अपने प्राणों की तरह प्यार करते थे। किन्तु उनका प्यार उनके कर्त्तव्य को कुचल नहीं सकता था, उन्हें पथ-भ्रष्ट नहीं कर सकता था। यौवन के अधीर उन्माद और वासना के प्रमत्त झोंकों में पड़ कर वे दाम्पत्य जीवन को अपावन बनाना नहीं जानते, अपने प्रेम और अधिकार के द्वारा पत्नी के हृदय में कर्त्तव्य-भावना की सृष्टि करना जानते हैं। उनके प्रेम में केवल तरलता ही नहीं, पुरुषोचित दृढ़ता भी है।

निरोजा गौरव और ग्लानि से झुक कर पति के पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—मुझसे भूल हो गई, मैं माफ़ी माँगती हूँ। रसोइए की ज़रूरत नहीं, मैं ख़ुद भोजन बनाया करूँगी।

६

निरोजा की जीवनचर्या ही बदल गई है। नियमपूर्वक गृहस्थी का सारा काम करती है, सास-ससुर की सेवा भी करती है और समय पाकर लिखती-पढ़ती भी है। तीन ही दिनों के भीतर उसमें यह परिवर्त्तन आ गया है। इस परिवर्त्तन से सबके मन में ख़ुशी भर आई है, स्वयं वह भी बहुत अधिक प्रसन्न दीखती है। कर्त्तव्य और श्रम का सबसे बड़ा पुरस्कार है आत्म-सन्तोष, और यही आत्म-सन्तोष सारी प्रसन्नता का मूल है। चार दिनों तक बड़े आनन्द से वह काम-धन्धा करती रही। मगर इस सहसा परिवर्तन और श्रम का परिणाम यह हुआ कि निरोजा के सिर में चक्कर आने लगा, उसकी आँखें जलने लगीं! आग के पास बैठने और गृहस्थी के काम-धन्धों के करने का अभ्यास तो उसे था नहीं, दूसरे ही दिन से उसका सिर चकराने लगा। पर उसने किसी से इसकी शिकायत न की। समझा, अभ्यास पड़ जाने पर एक-दो दिनों में आप ही सब ठीक हो जायगा। ऐसा हुआ नहीं। पाँचवें ही दिन वह चूल्हे के पास बेहोश होकर गिर पड़ी!

शारदादेवी ने डाँट कर कहा—देखो जय, फिर कभी बहू को चूल्हे के पास भेजने कहोगे तो अच्छा न होगा।

जयदेव ने कहा—नहीं माँ! अब ऐसी ग़लती न होगी। किसी रसोइए को रखना पड़ेगा।

निरोजा ने सास की ओर मुँह करके कहा—ज़रा गर्मी अधिक थी माँ, इसी से ग़श आ गया! मुझे कोई तकलीफ़ नहीं है। रसोइए की ज़रूरत नहीं—अब कभी ऐसा न होगा।

ख़ुशी के मारे सास की छाती फूल उठी। उसने कहा—अच्छा बेटी! जब तेरी इच्छा हो, तू भी शाक-भाजी बना लिया करना। मगर एक रसोइए को ज़रूर रखना होगा।

इतना कह कर बेटे-पतोहू को छोड़ शारदादेवी वहाँ से चली गईं।

अभी वे दोनों जने आपस में कुछ बातचीत कर ही रहे थे कि इतने में वे फिर लौट आईं और बोलीं—बहू, देखो तो बाहर कोई लड़की तुम्हें बुला रही है। मैंने कितना कहा कि भीतर चलो, पर वह आ ही नहीं रही है। पता नहीं कौन है, कहाँ से आई है। बहुत मुरझाई सी दीखती है।

निरोजा घबड़ाई हुई बाहर निकली और जाकर देखा कि ड्योढ़ी के पास एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की लड़की सिर झुकाए चुपचाप उसकी राह देख रही थी। उसका मुँह मुरझाया हुआ था, शरीर के वस्त्र फटे हुए और अत्यन्त मैले थे। देखते ही निरोजा ने पहचान लिया और व्याकुल होकर कहा—तुम यहाँ कैसे सावो? तुम्हारी हालत ऐसी क्यों हो रही है?

सावित्री इसके जवाब में धड़ाम से उसके पैरों पर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी। बड़ी मुश्किल से निरोजा उसे उठाकर अपने कमरे में ले आई।

जयदेव ने पूछा—यह कौन हैं?

"मेरे ननिहाल की"—कह कर निरोजा ने उन्हें कमरे से बाहर चले जाने का इशारा किया।

जयदेव की छाती धड़कने लगी। एक ऐसी स्मृति सजग हो आई कि देखते ही देखते बेचैन हो उठे। खूँटी से टोपी उतारी, हाथ में छड़ी ली और बाहर निकल गए।

एकान्त पाकर निरोजा ने कहा—सावो, कहो क्या बात है?

सावित्री ने अपनी सारी कहानी सुनाकर बड़ी कातरता से कहा—अब मेरे लिए कहीं जगह नहीं है नीरो, तुम्हीं अपने चरणों के पास रख लो। इसीलिए सारी लोक-लाज त्याग कर सीधे तुम्हारे ही पास आई हूँ।

उसकी बातें सुन कर, उसकी अवस्था देखकर, उसके सारे जीवन पर एक हल्की-सी दृष्टि दौड़ा कर, निरोजा का हृदय करुणा से ओत-प्रोत हो उठा। उसका ऐसा मन कर रहा था कि अपना सारा सुख, सम्पूर्ण सौभाग्य वह उस अभागिनी लड़की को समर्पित कर दे। पर यह हो कैसे सकता था? सावो की एक-एक बात नीरो के कलेजे को बुरी तरह घायल कर रही थी, उसे ऐसा मालूम हो रहा था जैसे वही उसके सारे दुखों का कारण है। वह विह्वल होकर बोली—बहिन, तुम्हें कैसे बतलाऊँ कि इस समय मेरे ऊपर क्या बीत रही है! यों तो बड़े सहृदय हैं, पर तुम्हें यहाँ रखना वे उचित समझेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है। मैं अपनी शक्ति भर उन्हें मनाने की चेष्टा करूँगी। अच्छा हो, अगर तुम भी स्वयं उनसे मिलो।

कुछ-कुछ अँधेरा हो चुका था जब जयदेव ने अपने पढ़ने के कमरे में प्रवेश किया। उनका चेहरा उतरा हुआ था। एक किताब लेकर वे आराम-कुर्सी पर लेट गए। उसी समय निरोजा आई और काँपते हुए कण्ठ से बोली—जानते हो वह कौन है?

"अनुमान कर सकता हूँ"—बड़ी उदासी से जयदेव ने जवाब दिया।

"वह यहाँ आश्रय चाहती है" निरोजा ने डरते-डरते कहना शुरू किया—"उसे रख लेना चाहिए, सब तरह से अनाथिनी हो गई है!"

"उसे कुछ रुपए देकर विदा कर दो" जयदेव ने लम्बी साँस खींच कर कहा—"मैं बला नहीं पालूँगा।"

"वह बला नहीं, अबला है मेरे स्वामी!" निरोजा ने गिड़गिड़ा कर निवेदन किया—"वह हम लोगों की समस्त दया, सारी सहानुभूति की अधिकारिणी है। हमीं लोगों के कारण उसका सारा जीवन नष्ट हो गया। हमें इस रूप में भी तो उस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

"ये सब बातें मुझे भी मालूम हैं नीरो" जयदेव ने वेदना-विद्ध वाणी में जवाब दिया—"पर तुम यह नहीं समझ रही हो कि उसे यहाँ रखने का क्या अर्थ होता है। मैं हरगिज़ ऐसा न करूँगा। उसे कहीं रहने की जगह नहीं है तो कह दो अनाथालय चली जाय, मैं महीने में कुछ रुपए दे दिया करूँगा।"

इसी समय सावित्री भी वहाँ पहुँच गई और जयदेव के पैरों पर गिर पड़ी! निरोजा चुपचाप कमरे से निकल गई।

जयदेव हड़बड़ा कर खड़े हो गए और घबड़ा कर बोले—यह क्या किया?

सावित्री की आँखों में आँसू नहीं थे। उसने कहा—कुछ नहीं, दुनिया के आगे लोक-लाज खोने के पहले उसे एक बार आपके चरणों पर चढ़ा दिया। मैं आपके आगे भिखारिन बन कर खड़ी हूँ। और कुछ नहीं माँगती, सिर्फ़ यही चाहती हूँ कि आप मुझे नीरो की दासी बन कर रहने की आज्ञा दें। उसी के जूठन से पेट की आग बुझा लूँगी, उसी के फटे-पुराने वस्त्रों से अङ्ग की लाज ढक लूँगी। क्या इस अभागिनी के लिए आप इतनी भी कृपा न कर सकेंगे?

इस याचना में न लज्जा थी न बेचैनी, किन्तु यह इतनी नुकीली थी कि जयदेव का कलेजा छिद गया। आँखें उठाकर वे उसकी ओर देख नहीं सकते थे। उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा—आप कृपा कर यहाँ से चली जायँ। मुझे आपके लिए बहुत दुख हो रहा है, पर मैं सब तरह से लाचार हूँ।

इस पर सावित्री एक शब्द न बोली। तेज़ी के साथ कमरे से निकल गई।

जब वह चली गई, उसके थोड़ी देर बाद निरोजा ने आकर कहा—भोजन न करोगे?

"नहीं; तबीयत ठीक नहीं है। वह चली गई क्या?"

"जब यहाँ नहीं है तो गई ही होगी और क्या?"

"मैंने समझा तुम्हारे पास है।"

"रहने तो आई थी, पर तुमने रहने कहाँ दिया।"

"अच्छी बात है, मैं उसे ला देता हूँ।"—कह कर जयदेव पागलों की तरह दौड़ कर बाहर निकल गए। निरोजा भौंचक्की होकर खड़ी-खड़ी ताकती रही।

थोड़ी ही देर में जयदेव लौट आए और घबड़ाए हुए स्वर में बोले—वह तो इसी जगह ड्योढ़ी के बाहर ज़मीन पर अचेत पड़ी है। मालूम होता है उसके सिर से ख़ून भी बह रहा है। यह देखो मेरा हाथ लाल हो गया। चलो, जल्दी करो।

होश आने पर सहसा सावित्री के मुँह से निकल पड़ा—हाय! इस दुनिया में तो मेरा कोई है ही नहीं,

मिस बी० आनन्दबाई, बी० ए०; बी० एल०

आप मद्रास हाईकोर्ट की द्वितीय महिला-एडवोकेट तथा स्त्री-शिक्षा की पक्षपातिनी महिला-रत्न हैं।

श्रीमती एन० कवेरी बाई, बी० ए०; एल टी०

आप मासुलीपटम् के लेडी एम्पथिल गवर्नमेण्ट ट्रेनिङ्ग स्कूल की हेडमिस्ट्रेस हैं और हाल ही में डिस्ट्रिक्ट सैकिण्डरी एजूकेशन बोर्ड की सदस्या निर्वाचित की गई हैं।

श्रीमती स्नेहलता पगार, बी० एस० ए० एम०

(कोलम्बिया)

आप बड़ोदा के महिला ट्रेनिङ्ग कॉलेज की प्रिन्सिपल हैं और हाल ही में बड़ोदा म्युनिस्पैलिटी की सदस्या नियत की गई हैं।

फिर मैं इस समय कहाँ हूँ ? और यह पङ्खा कौन झल रहा है ? तुम......नहीं......आप......? उफ़ !!

जयदेव के हाथ से पङ्खा नीचे गिर पड़ा। वे व्याकुल होकर वहाँ से हट गए।

निरोजा ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—यह मैं हूँ बहिन, तुम अपने ही घर में अपनी नीरो के पास हो !

७

सिर्फ़ पन्द्रह दिनों के भीतर ही सावित्री उस घर में पराई से अपनी हो गई। उसके शील-स्वभाव, चाल-ढाल, बातचीत, काम-धन्धों पर सभी लोग मोहित हो गए। स्वयं जयदेव के हृदय में भी उसके प्रति स्नेह और ममता की एक तीव्र धारा बहने लगी। पर वे बड़ी सतर्कता से अपनी भावनाओं को छिपाए रखते थे, उन्हें मालूम होता था जैसे वे अपने हृदय में इन भावनाओं को पालने के अधिकारी नहीं हैं। जैसे-जैसे वे उसके ऊपर मुग्ध होते जाते थे, वैसे ही वैसे उनकी वेदना बढ़ती जाती थी।

सावित्री ने गृहस्थी का सारा काम सँभाल रक्खा है। किसी काम में किसी और को हाथ नहीं लगाने देती—सब स्वयं कर लेती है। पर रसोई बनाने के काम में निरोजा उसे मदद पहुँचाए बिना नहीं रहती। ज़बर्दस्ती चौके में घुस आती है और दोनों मिल कर भोजन तैयार करती हैं।

जिस दिन से वह आई है, जयदेव का कमरा कुछ दूसरा ही हो गया है। किताबों पर नाम मात्र को भी धूल नहीं रहती; टेबुल सदैव साफ़ रहता है; सब चीज़ें अपनी-अपनी जगह पर सजाई रहती हैं; जूतों का पॉलिश कभी फीका नहीं पड़ने पाता; कपड़े अच्छी तरह तह किए हुए रहते हैं; फूलों का गुच्छा कभी सूखने नहीं पाता, इत्यादि। यही नहीं, उनके नहलाने-धुलाने और कपड़े कचारने का काम इसी ने अपना लिया है। यहाँ तक कि सवेरे उनके उठने के पहले ही वह रोज़ शौचालय देख आती है कि वह ख़ूब साफ़-सुथरा है या नहीं। नहीं होता है तो उसमें स्वयं एकाध बालटी पानी छोड़ देती है और उनके लोटे में पानी भर वहाँ रख आती है। यह सब तो करती है, पर उनका सामना बहुत बचाती है, बोलती तो उनसे प्रायः है ही नहीं।

उसकी यह कार्यपटुता, एकाग्रनिष्ठा और गम्भीर अनुरक्ति देखकर जयदेव बाबू भीतर ही भीतर घुले जा रहे थे। त्याग, साधना, संयम और सेवा का यह सम्मिलित सौन्दर्य उन्हें पागल बना रहा था। वे उसके सामने सिर ऊँचा करके चल नहीं सकते थे, सामने खड़े नहीं रह सकते थे। यहाँ तक कि उन्होंने हवेली के भीतर जाना भी बहुत कम कर दिया। एक नए प्रकार का वैराग्य उन्हें अपने पास बुला रहा था, एक नए ढङ्ग की उदासीनता उनके जीवन की सङ्गिनी बन रही थी ! वे रात-दिन यही सोचा करते कि आख़िर किस अपराध के कारण सावित्री इतना कष्ट भोग रही है !

इसी तरह क़रीब दो महीने बीत गए। एक दिन रात के डेढ़ बजे का वक़्त था। जयदेव पेशाब करने बाहर निकले तो देखते हैं, बरामदे में बैठ कर कोई उनके कमरे वाले पङ्खे की डोरी खींच रही है। पहले उन्होंने समझा कि पङ्खा खींचने वाली मज़दूरिन है, पर जब नज़दीक जाकर देखा तो चकित रह गए। कुछ बोले नहीं, पेशाब करके लौटे और चुपचाप कमरे में चले गए। निरोजा को जगा कर कहा—ज़रा बरामदे पर से हो आओ, देखो वहाँ क्या हो रहा है।

निरोजा ने बाहर निकल कर देखा तो दङ्ग रह गई। पास जाकर पङ्खे की डोरी से उसका हाथ छुड़ाती हुई बोली—तू यह क्या कर रही है सावो ? छिः ! तुमको इतना कष्ट पहुँचा कर हम लोग किस नरक में जगह पावेंगे ? जाओ, सोओ जाकर। इतनी गरमी नहीं पड़ रही है कि हम लोगों के प्राण निकल जायँ। आज मज़दूरिन कहाँ चली गई ?

"वह सोई हुई है"—सावित्री ने धीरे से जवाब दिया।

"सोई है ?" निरोजा ने चकित होकर पूछा—"वह सो रही है और तुम हमें पङ्खा झल रही हो ?"

"देखो बहिन !" सावित्री ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"वह बेचारी बूढ़ी हो चली है। उसमें बल नहीं है, इसी से थक कर सो जाती है। ऐसी हालत में अगर मैं थोड़ी देर के लिए उसका काम कर देती हूँ तो बुरा क्या है ? मुझे तो बड़ा आनन्द मिलता है।"

"तुम्हें तो आनन्द मिलता है"—निरोजा ने उदास होकर कहा—"और हमें तो क्लेश ही पहुँचता है न ?

मालूम होता है, तुम रोज़ इसी तरह पङ्खा झला करती हो, क्यों ?"

सावित्री कुछ न बोली। निरोजा ने उसे ज़बर्दस्ती हटाते हुए कहा—जाओ, सो रहो।

जब निरोजा कमरे में लौट आई तो जयदेव ने बहुत ही आर्द्रवाणी में कहा—इस तपस्विनी को देख कर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है, नीरो !

निरोजा ने भी उसी तरह विगलित स्वर में जवाब दिया—मेरे कष्ट की भी सीमा नहीं है ; पर तुम चाहो तो बात की बात में यह दूर हो जाय।

"वह किस तरह ?"—जयदेव ने उत्सुकता से पूछा।

"तुम उसे धर्मपत्नी के रूप में ग्रहण कर लो!"—निरोजा ने सचाई के साथ उत्तर दिया।

"यह क्या कह रही हो नीरो ?"—जयदेव आश्चर्य से बोले।

"वही कह रही हूँ जो तुम्हें करना चाहिए"—निरोजा ने कहा—"जहाँ लोग केवल अपने वंश-गोत्र की श्रेष्ठता सिद्ध करने, अपनी पाशविक कामुकता की गन्दी प्यास बुझाने, और न जाने क्या-क्या करने के लिए तीस-तीस, छत्तीस-छत्तीस स्त्रियों के साथ ब्याह करते हैं, वहाँ एक अनाथिनी का उद्धार करने के लिए, उसकी घोर यन्त्रणाओं का अन्त करने के लिए, अपने और मेरे हृदय की व्यथा शान्त करने के लिए तुम इतना भी नहीं कर सकते ?"

जयदेव ने उदास होकर कहा—आज तुम इतना निर्दय परिहास क्यों कर रही हो, देवि ?

"नहीं मेरे देवता !"—निरोजा ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"तुम्हारे पैर छूकर कहती हूँ, मैं परिहास नहीं करती ! अपने हृदय की सच्ची आकांक्षा प्रकट कर रही हूँ। तुम सावो को पत्नी के रूप में ग्रहण कर लो तो मेरे उल्लास की सीमा न रहे। हमीं दोनों के द्वारा उसका सत्यानाश हुआ है, हमीं दोनों के हाथों उसका पुनरुद्धार भी हो जाय तो बड़ा अच्छा। हमारे पापों का इससे बढ़ कर सस्ता, सुलभ और शुद्ध प्रायश्चित्त और क्या हो सकता है ? एक बार उस लड़की के जीवन पर दृष्टि डालो और देखो वह कितना कारुणिक है ! हम-तुम आनन्द से यहाँ सोते रहते हैं और वह चुपचाप बाहर बैठ कर हमें रात भर पङ्खा झला करती है ? उसका सौभाग्य-सिंहासन छीन कर मैं आज रानी बनी हुई हूँ और वह भिखारिन बन कर मेरे जूठे टुकड़ों पर जी रही है ! यह सब मुझसे सहा नहीं जाता। मैं उसे अपने साथ ही सिंहासन पर बैठाना चाहती हूँ।"

जयदेव चुपचाप अपनी आँखों से आँसू बहा रहे थे। निरोजा ने थोड़ी देर रुक कर फिर कहा—तुम्हें यह सुन कर आश्चर्य हो रहा होगा कि मैं जान-बूझ कर अपने सिर पर सौत क्यों बैठाना चाहती हूँ। मगर तुम्हें जान लेना चाहिए कि मैं उसे स्वप्न में भी सौत की दृष्टि से नहीं देखूँगी। उसे मैं सदैव अपना स्नेह दूँगी, विद्वेष नहीं—प्यार करूँगी, अङ्गार से जलाऊँगी नहीं। चाहे जिस तरह हो, मैं उसके जीवन का यह दारुण अभाव दूर करना चाहती हूँ, तुम मेरे सहायक बनो।

इस बार जयदेव अपने स्वर को सँभालते हुए बोले—सुनो नीरो ! इस जीवन में ऐसा तो अब मैं कर नहीं सकता। जो वस्तु मैं तुम्हें अर्पित कर चुका हूँ उसे किसी और को दे नहीं सकता—नहीं, उसका टुकड़ा भी नहीं, कण भी नहीं। हाँ, सावो का ब्याह मैं करवा सकता हूँ।

"मगर उसके साथ अब ब्याह करेगा कौन ?" निरोजा ने व्यग्र होकर पूछा—"ऐसा हो सकता तो अब तक हो न गया होता ?"

"ब्याह करने के लिए मेरे एक मित्र तैयार हैं"—जयदेव ने कहा—"सावित्री को तुम राज़ी करो, मैं सब ठीक किए देता हूँ।"

"राज़ी क्या करना है ?" निरोजा ने कहा—"हम लोग जो कहेंगे वही सिर झुका कर मान लेगी। लेकिन यह तो बताओ कि तुम्हारे मित्र साहब कैसे हैं ?"

"अगर उनके साथ ब्याह हो गया"—जयदेव ने हँस कर जवाब दिया—"तो तुम्हारी सावो तुम्हें भी भूल जाएगी।"

"इसे मैं सह लूँगी"—निरोजा ने कहा—"भगवान् उसे वह सुख तो दें, जिसमें रह कर वह सब कुछ भूल जाय !"

८

दूसरे दिन निरोजा ने हँस कर कहा—मैं अब तुम्हें यहाँ से बहुत जल्दी भगाऊँगी सावो !

"रुलाई न आएगी बहिन ?"—उसने हँस कर पूछा।

"आएगी क्यों नहीं? मगर उस रुलाई में भी एक सुख रहेगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि उस समय तुम्हें गले से लगा कर ससुराल के लिए विदा करूँगी।"

"आज यह कैसी दिल्लगी कर रही हो, बहिन?"—कह कर सावित्री उदास होकर टुकुर-टुकुर उसके मुँह की ओर ताकने लगी।

निरोजा ने कहा—इसे हँसी मत समझना, सावो! उन्होंने निश्चय कर लिया है। एक ही दो दिनों के भीतर उनके एक मित्र के साथ तुम्हारा ब्याह हो जायगा।

अभी तक सावित्री हँसी समझ रही थी। अब उसे कुछ-कुछ वास्तविकता का आभास मिला। देखते ही देखते उसके चेहरे पर सफ़ेदी छा गई! व्यग्र होकर उसने पूछा—सच कहती हो, नीरो?

"हाँ, सच कहती हूँ"—निरोजा ने कहा—"मगर यह क्या? तुम्हारे चेहरे का रङ्ग कहाँ उड़ गया सावो—तुम्हारी तबीयत तो अच्छी है?"

"सब ठीक है बहिन! तो क्यों, उन्होंने निश्चय कर लिया है? नहीं, तुम मज़ाक़ कर रही हो।"—कह कर उसने निरोजा का हाथ पकड़ लिया।

निरोजा सिर से पैर तक काँप उठी—बाप रे बाप! तुम्हारा हाथ तो तवे की तरह जल रहा है सावो! अरे......तुम्हें तो ज्वर चढ़ आया! चेहरे की क्या हालत हो गई। उठो-उठो, चलो, खाट पर चल कर लेटो। देखते ही देखते अभी तुम्हें हो क्या गया?

तेरह दिनों से सावित्री खाट पर तड़प रही है। पल भर के लिए भी ज्वर उसका साथ नहीं छोड़ता। रह-रह कर उसके मुँह से ख़ून गिरा करता है। इधर दो दिनों से वह अधिकतर अचेत ही रहती है। वाय की झोंक में कभी गाती, कभी रोती, कभी हँसती, कभी चिल्लाती, कभी बड़बड़ाती और कभी उठ कर खड़ी हो जाती है। रात ही से उसकी हालत बहुत ख़राब हो गई है। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया, लोग सब तरह से निराश हो गए।

इस समय थोड़ी देर के लिए वह होश में आई थी। पास ही निरोजा को देख कर उसने पूछा—क्यों बहिन, वे कहाँ हैं? मेरे ब्याह की बातचीत ठीक करने गए हैं क्या?"

"ऐसा जानती तो इसकी चर्चा ही न चलाती बहिन।" निरोजा ने आँसू पोंछते हुए कहा—"उन्हें बुला दूँ?"

"वे आ सकेंगे?"—रोगिणी ने कातर स्वर में पूछा।

इसी समय जयदेव वहाँ आ पहुँचे। उनकी आँखें छलछला रही थीं। वे समीप जाकर बैठ गए और रुँधे हुए कण्ठ से बोले—मुझे क्षमा करती जाओ देवी! मैं ही तुम्हें इस समय मार रहा हूँ। मैं भूल पर भूल करता गया और तुम उसे चुपचाप सहती गईं। मुझे क्षमा करती जाओ।

सावित्री ने उनका हाथ पकड़ लिया और उसे धीरे-धीरे अपने मस्तक पर रखती हुई बोली—"आशीर्वाद दो मेरे देवता! जो साध लेकर जा रही हूँ वह कभी पूरी हो सके। कभी तुम्हारी दा...सी ब...न...!" इसके बाद उसकी वाणी रुक गई! साथ ही वाय का आवेग भी आगया। वह ज़ोर से चिल्ला उठी—"जल्दी करो, ब्याह की तैयारी करो, अब समय नहीं है। अरे, सुनो तो, अभी अपने मित्र से पक्का वादा मत करना...! वाह, इस तरह कैसे चली जाऊँगी, अपने चरणों की धूल तक भी न लेने दोगे?" कहती हुई वह बड़े वेग से उठ कर खड़ी हो गई! गिरने ही वाली थी कि जयदेव ने पकड़ कर उसे सुला दिया। वे उसके मुँह में थोड़ा जल डाल रहे थे कि वह फिर चिल्ला उठी—"ख़बरदार! मुझे छूना मत, मैं अविवाहिता हूँ।"

जयदेव यह सुनते ही पछाड़ खाकर गिर पड़े। जब तक लोग होश में ला सके, तब तक सावित्री सदा के लिए बेहोश हो चुकी थी!
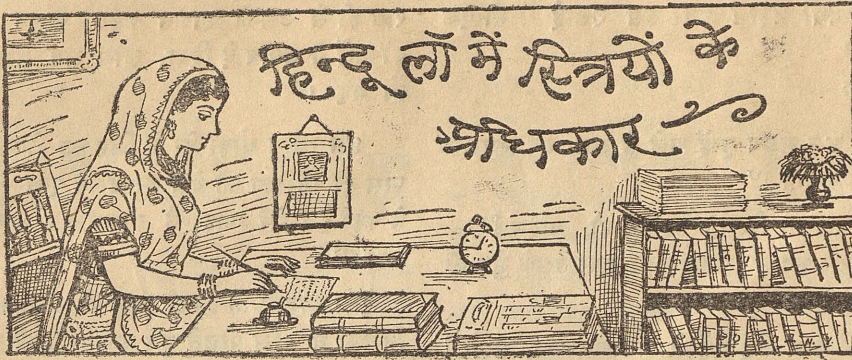
[ले० श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(गताङ्क से आगे)

विवाह के वर्त्तमान भेद

मन्वादि स्मृतियों में विवाह के आठ भेद जो गिनाए गए हैं, वे अब वर्त्तमान नहीं हैं। वर्त्तमान हिन्दू-लॉ में अब उनमें से केवल ब्राह्म और आसुर विवाह ही रह गए हैं। शेष सभी प्रकार के विवाह उठ गए या उठा दिए गए। वैदिक कर्मकाण्डों का लोप होने से दैव और आर्ष विवाहों का लोप हो गया। स्त्रियों की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ने से गान्धर्व और प्राजापत्य विवाह रुक गए। तथा भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) के पास होने से राक्षस और पैशाच विवाह अवैध एवं दण्डनीय (Illegal and Punishable) हो गए। स्मार्त-काल में भी साधारणतया ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य—ये ही चार विवाह प्रशस्त थे, शेष चार अप्रशस्त थे। किन्तु उन दिनों भिन्न-भिन्न वर्णों के लिए भिन्न-भिन्न विवाहों की प्रशस्ति थी। उदाहरण के लिए राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिए एवम् आसुर विवाह शूद्रों के लिए वैध था। किन्तु पैशाच और राक्षस को उन दिनों भी बहुत निन्दनीय समझा जाता था। इन विवाहों में विवाह की वैदिक रीतियाँ भी नहीं मनाई जाती थीं। इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्रों और टीकाओं के समय तक प्रशस्त और अप्रशस्त विवाहों के परिणाम में बड़ा अन्तर था। जो स्त्रियाँ प्रशस्त रीति से ब्याही जाती थीं, वे ही पत्नी होती थीं तथा उन्हीं को पत्नीत्व के अधिकार प्राप्त थे। वे ही पति के साथ यज्ञ में बैठ सकती थीं तथा सपिण्डा होकर उसकी उत्तराधिकारिणी हो सकती थीं।

वर्त्तमान हिन्दू-लॉ ने प्रशस्त और अप्रशस्त के भेदों को मिटा दिया है। अब चाहे किसी रीति से विवाह सम्पन्न हुआ हो, स्त्री को पत्नीत्व के सारे अधिकार प्राप्त होते हैं। अब यह भेद भी नहीं रहा कि ब्राह्म विवाह केवल ब्राह्मण करे तथा आसुर विवाह शूद्र ही करे। ब्राह्मण भी आसुर विवाह कर सकता है, एवम् शूद्र भी ब्राह्म विवाह कर सकता है।* अब प्रशस्त विवाहों में केवल ब्राह्म विवाह ही शेष है, इसलिए साधारणतया यही माना जाता है कि प्रत्येक विवाह ब्राह्म विधि से ही हुआ है। यदि न्यायालय के समक्ष यह विवाद रहेगा कि अमुक विवाह ब्राह्म रीति से सम्पन्न हुआ था या आसुर विधि से, तो उस समय तक यह अनायास ब्राह्म विवाह ही माना जायगा, जब तक कि वह अप्रमाणित नहीं कर दिया जाय, चाहे वर-कन्या शूद्र ही क्यों न हों।† अभिप्राय यह कि बचे हुए दो भेदों में भी ब्राह्म विवाह की ही प्रधानता है। अब यथार्थ पूछिए तो वेदाध्ययन का अभाव होने से ब्राह्म विवाह भी शास्त्रीय दृष्टि से उठ गया है, तथापि नाम के लिए रह गया है।

---

* 53 Bom. 433; 32 Mad. 512; 37 Bom. 295; 43 Bom. 173-177.

† 33 Bom. 433-437; 34 Bom. 553; 32 Mad. 512.

इसमें और आसुर विवाह में अन्तर यही है कि पहले में कन्या-पक्ष वर-पक्ष से बिना कुछ लिए हुए कन्यादान करता है और दूसरे में कन्या-पक्ष वर-पक्ष से कुछ शुल्क या दाम लेकर अपनी कन्या देता है। किन्तु कन्या अथवा उसकी माता के लिए कुछ उपहार देना शुल्क नहीं कहला सकता और न इस कारण वह विवाह आसुर माना जायगा। आसुर विवाह एक प्रकार का कन्या-विक्रय है, इसलिए उसके मूल्य की भाँति जो रुपए लिए जाते हैं वही शुल्क कहा जाता है। आज-कल भारतीय दण्ड-विधान की धाराओं से कन्या-विक्रय की क्या बात, दासों की बिक्री भी अवैध और दण्डनीय हो गई है। तथापि विवाह का विषय ऐसा सामाजिक है कि इसके लेन-देन को क़ानून के द्वारा सर्वथा रोकना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। कन्या का संरक्षक किसी सम्पत्ति की भाँति उसका विक्रय नहीं कर सकता, तथापि वह वर-पक्ष से पूर्ण रुपए लेकर अपनी कन्या का आसुर विवाह कर सकता है, इसमें हिन्दू-लॉ की ओर से कोई बाधा नहीं है। इतना अवश्य है कि निश्चित शुल्क के लिए कन्या-पक्ष को वर-पक्ष पर नालिश करने का अधिकार नहीं है।* तथापि शुल्क लेकर जो विवाह सम्पन्न होता है वह अवैध नहीं है† और शुल्क की रक़म भी ऐसा अवैध द्रव्य नहीं है कि वह मुक़दमा चला कर कन्या-पक्ष से वापस लिया जा सके।‡

हिन्दू-लॉ में ऐसी कोई धारा नहीं है जिसका अभिप्राय यह हो कि अन्यान्य विवाह अग्राह्य या अवैध हैं। यथार्थ पूछिए तो वे स्वयं उठ गए हैं या उठा दिए गए हैं। इसलिए पैशाच या राक्षस विधियों से भी जो विवाह सम्पन्न होते हैं, वे हिन्दू-लॉ के अनुसार एकान्त अवैध नहीं हैं। जिस पक्ष के ऊपर बल या छल का प्रयोग किया गया हो, वह यदि चाहे तो उसको अवैध बना दे सकता है। मान लीजिए किसी दुष्ट ने कन्या का अपहरण करके विवाह कर लिया है, उसको भारतीय दण्ड-विधान के अनुसार दण्ड भी मिल चुका है। किन्तु

* 15 C. W. N. 447, 453; 22 Bom. 658, 663; 32 Mad. 185.

† 43 Bom. 173, See Shambhu V. Nand 53 I. C. = 230 Cal. 284.

‡ Sambhu V. Nand 53 I. C. = 230 Cal. 284; 32 Mad. 185 (F. B.)

तो भी वह विवाह तब तक नहीं टूट सकता जब तक कि कन्या-पक्ष उसको अवैध कर देने का अभियोग उस दुष्ट के ऊपर नहीं लाता है। उस विवाह के तोड़ने में न्यायालय को यह देखना होगा कि क्षतिग्रस्त पक्ष को उस बल या छल से कोई विशेष हानि तो नहीं हुई है अथवा कोई विशेष विधि तो सम्पन्न होने के लिए नहीं छूट गई है। किसी छोटी त्रुटि के लिए ये विवाह भी नहीं टूटते।

यहाँ हम कतिपय उन निर्णयों को लिख देना आवश्यक समझते हैं, जिनसे इन अवैध विवाहों की विशेष जानकारी प्राप्त हो जावे। हमने पहले कहा है कि अवयस्क व्यक्तियों को अपने संरक्षक की स्वीकृति बिना कोई काम करने का क़ानूनी अधिकार नहीं है। यह बात और भी आवश्यक हो जाती है जब कि अदालत से कोई व्यक्ति किसी अवयस्क का संरक्षक नियुक्त होता है। अब यदि कोई व्यक्ति उस क़ानूनी संरक्षक की आज्ञा के बिना किसी कन्या से विवाह कर लेता है एवं वह विवाह और सब प्रकार से योग्य है तो केवल इस छोटी सी त्रुटि के कारण वह विवाह अवैध नहीं माना जा सकता।* किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि अवयस्क व्यक्ति की असम्मति या अनिच्छा से भी जो विवाह सम्पन्न हुआ है वह योग्य होने पर भी न तोड़ा जायगा—क्योंकि इसमें भारी त्रुटि यह है कि विवाहित होने वाले अवयस्क की सम्मति का पूर्ण अभाव है। इसलिए जहाँ पर किसी अवयस्क बालिका का विवाह, जो अपनी बहिन से भेंट करने गई थी, उसके बहनोई ने बलपूर्वक कर दिया था, वह अवैध निश्चित होकर तोड़ दिया गया।† उसी प्रकार जहाँ एक स्त्री अपने संरक्षक की सम्मति बिना विवाह करने पर विवश की गई और न्यायालय की दृष्टि में वह विवाह अयोग्य एवं अनावश्यक प्रतीत हुआ, वहाँ भी विवाह तोड़ दिया गया।‡ फिर इसी प्रकार के दूसरे मामले में जहाँ एक अवयस्क विधवा का पुनर्विवाह "चद्दर अन्दाज़ी" प्रथा के अनुसार, उसके माता-पिता या अन्य अभिभावकों की सम्मति बिना कर दिया गया एवं कन्या की स्वीकृति बलपूर्वक ली

* 22 Bom. 812; 14 Mad. 316; 12 Cal. 140; 11 Bom. 247; 22 Bom. 509.

† 22 Bom. 509;

‡ Lalchand V. Thakur Devi (1903) P. R. 49.

गई—वह भी न्यायालय ने तोड़ दिया।* क्योंकि वैध सम्मति का अभाव था। ऐसे मामलों में न्यायालय को इस बात पर विशेष ध्यान देना पड़ता है कि विवाह के टूटने से कन्या की विशेष हानि तो नहीं होगी और यदि कन्या कुछ समझ-बूझ रखती है तो उसकी सम्मति भी देखी जायगी। परन्तु यदि सहवास का आरम्भ हो चुका हो तो यह विषय बहुत विचारणीय होगा। कन्या की वास्तविक सम्मति ही इसका एकमात्र उपाय होगा। संक्षेप में राक्षस और पैशाच विवाहों की यही वर्तमान स्थिति है।

दैव, आर्ष, प्राजापत्य और गान्धर्व विवाह अब नहीं होते, किन्तु यदि इन प्रथाओं के अनुसार विवाह हो जायँ तो हिन्दू-लॉ को कोई आपत्ति नहीं होगी। कम से कम गान्धर्व विवाह पूर्णरूप से नहीं उठा है।† किन्तु वर्तमान हिन्दू-लॉ में इसको वैसा ही गर्हित माना जाता है जैसा कि किसी स्त्री को रखेली की भाँति रख कर व्यभिचार करना।‡ यथार्थ पूछिए तो किसी स्त्री-पुरुष का बिना विवाह-विधि के ही संयुक्त हो जाना—गान्धर्व विवाह नहीं कहा जा सकता। गान्धर्व रीति से जो विवाह प्राचीन काल में सम्पन्न होते थे, वे किसी प्रकार स्वेच्छाचारिता की श्रेणी में नहीं रक्खे जा सकते हैं। वे वैसे ही दृढ़ एवं वैध होते थे, जैसे कि ब्राह्म आदि। परन्तु कालान्तर में जैसे-जैसे इसमें स्वेच्छाचारिता बढ़ती गई, वैसे ही वैसे यह अप्रशस्त माना जाने लगा। प्राचीन काल में राजकन्याओं का जो स्वयम्बर होता था, वह गान्धर्व विवाह का ही नामान्तर था। इसलिए अब भी यदि वर-कन्या अपनी इच्छा और स्वीकृति से एक दूसरे को पसन्द कर लें एवं वैवाहिक जीवन बिताने का दृढ़ सङ्कल्प कर लें तो कोई आपत्ति नहीं है। इतनी बात आवश्यक है कि पारस्परिक स्वीकृति के पश्चात् विधिवत् विवाह सम्पन्न किया जावे और तब उनमें दाम्पत्य संयोग हो।§ शिक्षा-प्रचार में वृद्धि होने से गान्धर्व विवाह को आजकल वस्तुतः अवसर प्राप्त हुआ है और अनेक वर-कन्याएँ अपना विवाह गान्धर्व रीति से स्थिर कर लेती हैं; और इसमें सन्देह नहीं कि अब ऐसे विवाहों की संख्या शिक्षित समाज में बढ़ती ही जायगी। स्मृतियों में लिखा है कि ऋतुमती होने पर्यन्त जो संरक्षक अपनी कन्या का विवाह नहीं करता, वह अपने अधिकारों से हाथ धो बैठता है, एवम् कन्या को स्वयं अधिकार है कि वह अपना विवाह स्वयं कर ले।

अन्यान्य प्रकार के विवाह जो आजकल हिन्दू-समाज में प्रचलित हो गए हैं, और जिनकी चर्चा हमारे धर्म-ग्रन्थों में नहीं है, उनका वर्णन विवाह की विधियों में किया जायगा। तब तक एक विशेष भेद को लिख देना आवश्यक है। प्राचीन काल में यदि कुछ दिया जाता था तो कन्या-पक्ष को ही दिया जाता था और उसकी भी भरपूर निन्दा शास्त्रों में की गई है। परन्तु आजकल तिलक या दहेज़ की उल्टी गङ्गा समाज के अधिकांश भाग में बह रही है। अब एक-एक वर का मूल्य दश-दश हज़ार रुपए तक पहुँच गया है। ऐसी स्थिति में यह कुप्रथा यहाँ तक भयानक हो चली है कि कितनी ही प्रतिष्ठित, किन्तु दरिद्र घर की कन्याओं का विवाह होना असम्भव हो गया है और अनेक कन्याओं ने आत्म-हत्या कर ली है। यद्यपि सभा-समितियों में इसको रोकने के प्रस्ताव पास किए जाते हैं, बड़े-बड़े व्याख्यान दिए जाते हैं, और प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं, तथापि यह रोग दूर होता नहीं देख पड़ता। अब यदि सरकार इस ओर ध्यान न देगी, तो हिन्दू-कन्याओं की आह समाज को रसातल पहुँचा देगी। शास्त्रों में वर-पक्ष को कन्या-पक्ष से विवाह के पूर्व कुछ लेने की कहीं आज्ञा नहीं है, किन्तु तो भी हिन्दू-जनता इस कुप्रथा का शिकार हो रही है। दुर्भाग्यवश ऐसा विवाह हिन्दू-लॉ में अवैध नहीं माना जाता—अवैध को कौन पूछे, इसको परिमित रखने की भी कोई व्यवस्था नहीं है। इसको हम आसुर का भाई दैत्य विवाह कह सकते हैं।

वाग्दान और कन्यादान

विवाह के दो मुख्य अङ्ग हैं, वाग्दान यानी विवाह का ठहराव और कन्यादान यानी प्रकृत विवाह। वैदिक काल से लेकर महाभारत के समय पर्यन्त समाज की अवस्था ऐसी उन्नत और सात्विक थी कि अयोग्य बालकों को कौन पूछे, अयोग्य कन्याओं का भी विवाह नहीं होता था। सूत्र-काल से यद्यपि कन्याओं का विवाह अल्प

---

* Anjona V. Prahlad 6, B. L. R. 243.

† 12 Mad. 72 ; see also 24 C. W. N. 958.

‡ 3 All. 738.

§ 12 Mad. 72 ; 13 M. I. A. 506,

अवस्था में होना आरम्भ हुआ, तथापि मुसलमानी शासन के पूर्व तक योग्य कन्याओं का विवाह होना ही साधारण नियम था। अनेक स्थलों पर वर और कन्याएँ स्वयम् अपने विवाह का निश्चय करती थीं। कम से कम कन्या का पिता वर से ही अपनी कन्या के पाणिग्रहण का ठहराव करता था। अभिप्राय यह कि स्मार्त्तकाल से पहले जहाँ विवाह का ठहराव स्वयं कन्या और वर के बीच होता था, वहाँ उसके पश्चात् यह ठहराव कन्या के अभिभावकों और वर के बीच में होने लगा। किन्तु आजकल अवस्था यहाँ तक गिर गई है कि वर भी अधिकांश दशाओं में विवाह के अयोग्य ही रहता है, वह अपने विवाह का ठहराव स्वयं नहीं कर सकता। इसलिए दोनों पक्ष के अभिभावक ही विवाह का ठहराव कर लेते हैं। सुतराम् इस व्यवहार (Contract) के प्रतिपक्षी (Party) वर-कन्या स्वयम् नहीं होते, वरन् उनके अभिभावक ही हुआ करते हैं।

यह व्यवहार यहाँ तक बढ़ गया है कि योग्य कन्या और योग्य वरों के भी विवाह का निश्चय उनके संरक्षकों के द्वारा ही होता है। इस प्रकार जब दोनों पक्षों के संरक्षकों में किसी वर-कन्या के विवाह का निश्चय हो जाता है तो इसको प्रान्त-भेद से सगाई, मँगनी, तिलक या सिद्धान्त कहते हैं और भिन्न-भिन्न रीति से इनको मनाया जाता है। इससे यह निश्चय होता है कि अब अमुक वर-कन्या का विवाह अन्यत्र नहीं होगा। परस्पर दोनों पक्ष के संरक्षक वचन-बद्ध होते हैं। कन्या का पिता प्रतिज्ञा करता है कि मैं अपनी कन्या का विवाह आपके लड़के से करूँगा और दूसरा भी प्रतिज्ञा करता है कि मैं अपने लड़के का विवाह आपकी लड़की से करूँगा। इसीलिए इस प्रथा को वाग्दान (Contract to marry) कहते हैं। पश्चिम के ईसाई समाजों में वर-कन्या स्वयं इस व्यवहार के प्रतिपक्षी होते हैं और वे स्वयं विवाह-बन्धन में आबद्ध होते हैं, किन्तु उनका विवाह हमारे गान्धर्व विवाह से कोसों दूर है। आज विवाह किया और कल तोड़ दिया। मुसलमानी समाज में वर-कन्याओं को स्वयं अपने विवाह के ठहराव करने का अधिकार है, परन्तु हमारे ही समान उनमें भी अधिकतर विवाहों का निश्चय संरक्षकों में ही होता है। इतना अवश्य है कि यदि किसी अवयस्क का विवाह पिता या पितामह ने नहीं कराया है, तो उसके वयस्क होने पर (अर्थात् १५ वें वर्ष के पश्चात् चाहे स्त्री हो या पुरुष) पुनर्वार उसकी सम्मति ली जाती है और यदि वह अस्वीकार करती या करता है तो वह विवाह तोड़ दिया जाता है, अन्यथा पक्का निर्णय हो जाता है।

हमें यहाँ इस ठहराव के क़ानूनी महत्व पर विचार करना है। सामाजिक दृष्टि से यह व्यवहार (Contract) कितना ही मूल्य क्यों न रखता हो, इसकी विवशता दोनों पक्षों को कितनी ही क्यों न हो—क़ानूनी दृष्टि से इसका मूल्य कुछ नहीं है। जब तक विवाह की केवल बातचीत होती रहती है, तब तक कोई ठेकेदारी या व्यवहार उत्पन्न नहीं होता, परन्तु जिस समय बात पक्की होकर मँगनी या सगाई आदि हो गई, उसी समय वह भारतीय-व्यवहार-नीति (Indian Contract Act) के अनुसार एक व्यवहार का रूप धारण कर लेता है एवं दोनों पक्ष उससे बद्ध समझे जाते हैं। फिर भी यह अन्यान्य व्यवहारों की तरह किसी पक्ष को उसके पालन करने के लिए विवश नहीं कर सकता।* विवाह के व्यवहारों (Matrimonial Contracts) को क़ानून साधारण दृष्टि से नहीं देखता। यह विषय इतना सामाजिक और महत्वपूर्ण है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति को पूरी स्वतन्त्रता न रहे तो समाज की भारी हानि होगी, इसलिए बात पक्की हो जाने पर भी—मँगनी या सगाई आदि की विधि सम्पन्न हो जाने पर भी—विवाह करने या न करने की क़ानूनी स्वतन्त्रता उभय पक्ष को है। कोई पक्ष किसी पक्ष को विवाह करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।

वाग्दान से लेकर कन्यादान तक जो समय बीतता है, उसके विषय में डॉक्टर गौड़ साहब का कहना है कि शास्त्रों में इसका कोई वचन नहीं है। † इसलिए इस समय में किस पक्ष को कितनी विवशता रहती है, इसका निर्णय शास्त्रों से नहीं हो सकता, वरन् वर्तमान व्यवहार

---

* Section 21 (6) Specific Relief Act, last illustration 7 B. H. C. R (O. C.) 122 (132) ; 5 N. W. P. H. C. R. (102) (105) ; 1 Cal. 74 (Ind. Re.)

† "Even this period is no where covered by taxtual authority. Consequently it is held subject to the ordinary civil law of contracts." Gour's Hindu Code poge 229 (1919 Edition).

नीति (Contract Act) से ही करना पड़ता है। परन्तु यथार्थ पूछिए तो मन्वादि स्मृतियों में वाग्दत्ता कन्या के विषय में कितने ही ऐसे वचन हैं जिनसे उभय पक्ष के अधिकारों और कर्त्तव्यों का निश्चय किया जा सकता है। मनु कहते हैं:—

अन्यां चेद्दर्शयित्वान्यां वोढुः कन्या प्रदीयते।
उभे ते एक शुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः॥

—मनु० ८, २०४

अर्थात्—"यदि कन्या का पिता किसी कन्या को दिखा कर उसके विवाह करने का निश्चय करे और पीछे वह कन्या न देकर दूसरी कन्या को विवाह के लिए उपस्थित करे, तो वर को अधिकार है कि उसी शुल्क में दोनों कन्याओं को ब्याह ले।"

फिर यह भी लिखते हैं कि :—

यस्या म्रियते कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥

अर्थात्—"वचन से कन्यादान अर्थात् वाग्दान कर चुकने पर यदि वर की मृत्यु हो जाय तो उसका छोटा भाई उसी विधि से उसका पाणिग्रहण करे।" वाग्दान की दृढ़ता के विषय में मनु यह लिखते हैं कि :—

न दत्वा कस्यचित् कन्यां पुनर्दद्यात् विचक्षणः।
दत्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम्॥

अर्थात्—"वचन से एक बार कन्यादान कर चुकने पर फिर दूसरे को वह कन्या नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसमें झूठा होने का दोष लगता है।" स्पष्ट विदित है कि उन दिनों भी वाग्दान के पश्चात् यदि कोई व्यक्ति कन्यादान नहीं करता था तो वह पाप का भागी होता था, न कि किसी क़ानूनी दण्ड का भागी होता था। याज्ञवल्क्य ने इस शङ्का को स्पष्ट रीति से खण्डित कर दिया है :—

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तांश्चौरदण्डभाक्।
दत्तामपि हरेत्पूर्वात् श्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत्॥

अर्थात्—"कन्या एक ही बार दी जाती है, देकर वापस लेने वाले को चोरी का दण्ड मिलना चाहिए। परन्तु यदि उससे श्रेष्ठ वर आ जाय तो दी हुई कन्या को भी लौटा लेना चाहिए।" इससे स्पष्ट है कि अकारण सगाई या मँगनी को तोड़ना यद्यपि चोरी के समान दण्डनीय है, तथापि उत्तम वर के मिलने पर स्वतन्त्रता-पूर्वक पहले के वाग्दान को तोड़ा जा सकता है।

वर्तमान हिन्दू-लॉ में ऐसी कोई बात नहीं है कि कन्याओं को इस व्यवहार के अधिकार से वञ्चित किया जा सके। हाँ, जब तक वे वयस्क नहीं हो जातीं यानी १६ वें वर्ष को समाप्त नहीं कर लेतीं, तब तक स्वयं ऐसा करने में विवश हैं। हमने यह पहले ही देखा है कि इस प्रकार का व्यवहार किसी पक्ष के लिए क़ानूनी विवशता उपस्थित नहीं करता। इसलिए यदि कोई पक्ष, चाहे वह वर-कन्या स्वयं हों अथवा उनके अभिभावक हों, मँगनी या सगाई के अनुसार विवाह करने पर उद्यत नहीं हैं तो दूसरे पक्ष के लिए एकमात्र यही उपाय है कि वह प्रतिपक्षी पर क्षति-पूर्ति का अभियोग लावे। न्यायालय उसकी क्षति उस पक्ष से पूर्ण करा देगा।* अर्थात् तिलक या सगाई के उपलक्ष में जो कुछ रुपया इत्यादि दिया गया था, वह लौटा दिया जायगा। परन्तु ऐसे रुपए, ज़ेवर, कपड़े या जवाहरात जो बिना किसी माँग या प्रतिज्ञा के, केवल प्रीति-निदर्शन के लिए दिए गए थे, नहीं लौटाए जा सकते।† इस प्रकार की भेटें जो वर या कन्या के लिए नहीं, प्रत्युत उनके अभिभावकों की राय को अपने पक्ष में लाने के लिए दी जाती हैं, उनके विक्रय को बढ़ाने वाली समझी जाती हैं।‡ इसलिए ऐसा निर्णय हुआ है कि ऐसी भेंटें लौटाई न जायँ। किन्तु कुछ निर्णय इनके विरुद्ध भी हुए हैं।§ यद्यपि इन भेंटों के पाने वाले वर या कन्या के अभिभावक नहीं थे, दूसरे ही व्यक्ति थे।¶ इसके अतिरिक्त जब कि वैवाहिक व्यवहारों को क़ानून ठेकेदारी से ही विचार करना है, तो निश्चय है कि जैसे अन्य

---

* 11 Bom. 412 ; 16 Bom. 673 ; 33 Mad. 417.

† Per Mark by J. in Asagar V. Mahabhat 13 B. L. R. App. 34 (36) followed in Ganapat, Cal. 74 (76).

‡ 15 C. W. N. 417 ; 9 I. C. 652 ; 37 Mad. 393 ; 32 Mad. 185 (F. B.), 10 All. L. J. 159 ; 23 All. 495 ; 16 Bom. 126.

§ 5 B. L. R. 395 ; 16 Bom. 673 (675).

¶ 7 B. H. C. R. (O. C.) 122 ; 11 Bom. 412 ; 16 Bom. 673.

प्रकार के व्यवहार बल या छल के प्रयोग से उच्छेद्य होते हैं वैसे ही यह भी टूटने योग्य होता है। बल या छल के अभाव में भी वैवाहिक व्यवहारों को वह शक्ति नहीं है जो अन्य व्यवहारों को है। एक सगाई तोड़ कर यदि कोई व्यक्ति अपनी या अपने "रक्षित" (Ward) की शादी दूसरी जगह करता है, तो वह किसी प्रकार उससे रोका नहीं जा सकता।* और न केवल सगाई आदि तोड़ने के लिए वह किसी क्षति का पूर्ण करने वाला हो सकता है। क्योंकि हरेक हिन्दू-कन्या और उसके संरक्षक को यह अधिकार है कि यदि अधिक योग्य वर मिल रहा है तो वह पहले ठहराव को किनारे कर, उसी से विवाह करे या करावे।† ऐसा करने का अधिकार अर्थात् पूर्व के निश्चय को तोड़ने का अधिकार कन्या या उसके संरक्षकों को उस समय तक है, जब तक कि सप्तपदी गमन विधि के द्वारा विवाह पूर्णतया सम्पन्न नहीं हुआ है। सप्तपदी हुई और हिन्दू-विवाह सदा के लिए अजर-अमर हो गया।

कन्यादान

वाग्दान केवल कन्यादान का ठहराव मात्र है, किन्तु विधिपूर्वक कन्यादान करना ही यथार्थ विवाह है। इसलिए यह विषय और भी महत्वपूर्ण है। सुतराम् हमारे शास्त्रों में यद्यपि इसका निर्णय नहीं है कि वाग्दान कौन करे, तथापि कन्यादान के विषय में पूर्ण विधान है। वाग्दान चाहे कोई व्यक्ति (जो वर या कन्या के संरक्षक होने की योग्यता से आता है) कर सकता है, किन्तु पिछले काम में सबको अधिकार नहीं है। याज्ञवल्क्य लिखते हैं :—

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा।
कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः॥

अर्थात्—"पिता, पितामह, भाई, दायाद और माता को क्रमशः इसका अधिकार है।" दायादों के पश्चात् माता का अधिकार आता है, यह आपत्तिजनक है। इसके विषय में हिन्दू-लॉ के प्रकाण्ड लेखक श्रीयुत गुलाबचन्द्र शास्त्री लिखते हैं :—

It is worthy of notice that the mother, who is the nearest natural guardian, holds the last place in the above order, although she may, after the death of the husband, give away her son in adoption, which affects the interests of the boy given, to the same extent, as marriage does those of a girl. (Shastri's Hindu Law p. 139. 5th Ed.)

"यह ध्यान देने योग्य विषय है कि कन्यादान के अधिकारियों में माता का स्थान सबके पश्चात् रक्खा गया है। माता ही निकटतम स्वाभाविक संरक्षिका है, उसी को पिता के अभाव में दत्तक के लिए पुत्रदान का अधिकार है और इससे दत्तक पुत्र के स्वत्व में वही परिवर्तन उपस्थित होता है जो कन्यादान से कन्या के स्वत्व में होता है। तो भी माता के कन्यादान का अधिकार सबके अन्त में रक्खा गया है।" वस्तुतः दत्तक में पुत्रदान एवं विवाह में कन्यादान, समान क़ानूनी परिवर्तनों को उपस्थित करते हैं। किन्तु जहाँ पुत्रदान में माता का अधिकार पिता के पश्चात् ही रक्खा गया है, वहाँ कन्यादान में सब के पीछे रक्खा गया है। यह आश्चर्य की बात है।

किन्तु सौभाग्य की बात है कि वर्त्तमान हिन्दू-लॉ में उपरोक्त क्रम को केवल अर्थवाद माना गया है। बम्बई-हाईकोर्ट के जस्टिस चन्दावरकर महाशय ने इस क्रम को केवल वेदी पर कन्यादान की विधि-मात्र पालन करने के लिए उपयुक्त समझा है। उनके मत में विवाह का निश्चय ही मुख्य वस्तु है और कन्यादान एक विधि-मात्र है। इसलिए यदि माता का अधिकार इतना दूर रक्खा गया है तो कोई क्षति नहीं, क्योंकि विवाह का निश्चय हो चुकने पर कन्यादान चाहे कोई करे—परिणाम वही होगा। हम बहुत नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि सप्तपदी गमन समाप्त होने पर्यन्त कन्या या उसके संरक्षक को "नाहीं" करने का अधिकार है, परन्तु समाप्त होने पर वह विवाह अटल हो जाता है। कन्या के चचा, एवं दूर-दूर के दायाद बहुधा उसके बदले बूढ़े और अयोग्य वरों से रुपए लेकर अपना उल्लू सीधा

---

* 21 Bom. 23 (34) dissenting in Khushal V. Bhagwan 1 Borr. 155.

† 7 B. H. C. R. 122 ; 21 Bom. 23 (30, 31) ; 39 Bom. 682 (714).

इसके अतिरिक्त नारद, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, और कात्यायन आदि के वचन हैं।

करना चाहते हैं, यह बात छिपी हुई नहीं है। कितने स्थलों में पिता भी ऐसी स्वार्थपरता से बचा हुआ नहीं देखा जाता है, किन्तु कुल सम्बन्धियों में एक माता ही ऐसी होती है, जो कन्या की भलाई निःस्वार्थ होकर चाहती है। ऐसी स्थिति में मान लीजिए विधवा माता ने किसी जगह अपनी कन्या के विवाह का निश्चय किया है, दूसरी ओर कन्या के दूरस्थ दायादों ने स्वार्थवश अन्यत्र निश्चय करके अयोग्य विवाह करा दिया। अब माता के निश्चय की दशा क्या होगी? यदि कन्यादान का अधिकार माता को रहता, एवं बिना उसके कन्यादान ऐसी स्थिति में अवैध होता तो दायादों का निश्चय विवाह में परिणत नहीं हो सकता और यदि होता भी तो वह टूट जाता। किन्तु हिन्दू-लॉ में ऐसी कोई विधि नहीं है कि माता का कन्यादान करना ऐसा अनिवार्य हो। कम से कम पिता, भ्राता और पितामह के अभाव में सर्व-प्रथम माता का ही अधिकार अनिवार्य होना उचित है। एवम् पिता, भ्राता और पितामह भी माता की सम्मति से ही कन्यादान करें।

हर्ष का विषय है कि वर्त्तमान हिन्दू-लॉ इस क्रम को अर्थवाद समझता हुआ माता को पिता के अभाव में कन्यादान की अधिकारिणी मानता है—ऐसी अधिकारिणी नहीं कि यदि उसके रहते हुए किसी दायाद ने कन्यादान किया तो वह अवैध हो जाय, प्रत्युत ऐसी अधिकारिणी कि यदि माता उन लोगों की इच्छा के विरुद्ध भी कन्यादान कर देती है, तो वह अवैध नहीं हो सकता। पिता और माता के विरोध में पिता का ही अधिकार प्रबल है। बम्बई-हाईकोर्ट के एक विवाद में इस विषय की कुछ कड़ी आलोचना हुई। वहाँ किसी व्यक्ति ने चोरी के अपराध में दण्डित होकर दो वर्षों तक जेल की सज़ा भुगती थी। इसके पश्चात् उसने अपनी स्त्री को त्याग कर दूसरा विवाह कर लिया। तीन वर्ष बाद उसकी पहली स्त्री ने अपनी कन्या के विवाह का निश्चय अपने किसी सम्बन्धी से किया। किन्तु उस व्यक्ति ने अदालत में यह दावा किया कि वह स्त्री कन्यादान की अधिकारिणी नहीं है तथा हमने एक अच्छी जगह में कन्यादान का निश्चय किया है। हाईकोर्ट ने यह निर्णय किया कि पिता का अधिकार प्रबल है, इसलिए माता ने जहाँ निश्चय किया है वहाँ विवाह होना रोका जावे, एवम् पिता के निश्चित स्थान में ही विवाह कराया जावे।* किन्तु माता यदि पिता की सम्मति के विरुद्ध भी विवाह करा चुकी होती तो वह विवाह अवैध नहीं होता और न टूट सकता।† मद्रास-हाईकोर्ट ने यह भी निश्चय किया है कि पिता के अभाव में यदि किसी कन्या की संरक्षिका उसकी माता है अर्थात् यदि वह माता के ही साथ रहती है, तो माता को—पितामह के विरुद्ध भी—कन्यादान करने का पूर्ण अधिकार है।‡ पञ्जाब-हाईकोर्ट ने भी ऐसा ही निर्णय किया है।§ जस्टिस नौरिस और घोष महाशयों ने एक विवाद में—जिसमें कन्या के चचा ने माता के किए हुए कन्यादान को अवैध बतला कर विवाह को तोड़ देने की प्रार्थना की थी—यह निर्णय किया कि वह विवाह कभी अवैध नहीं था।|| उन्होंने अपने निर्णय में लिखा है:—

"There can be no doubt that the uncle of the girl had a right in preference to the mother, under the Hindu Law, to give the girl away in marriage, but the mother, the natural guardian, having given away, and the marriage having not been procured by force or fraud, the doctrine of *Factum Valet* would apply, provided of course, that the marriage was performed with all the necessary ceremonies.

अर्थात्—"इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू-लॉ के अनुसार माता की अपेक्षा चचा को कन्यादान का अधिकार अधिक प्रबल है। किन्तु स्वाभाविक संरक्षिका माता ने यदि कन्यादान कर दिया है और उसमें बल या छल का प्रयोग नहीं हुआ है, तो वह 'वचनशतेनाऽपि' न्याय

---

* 12 Bom. 110 (120-121); 7 W. R. 321; 3 W. R. 193; 37 Bom. 18; 35 Mad. 728; 4 M. H. C. R. 339.

† 11 Bom. 247; 19 All 515.

‡ 35 Mad. 728=11 I. C. 570=20 Mad. L. J. 600=10 Mad. L. T. 57.

§ 3 Lah. 29; 53 I. C. 783.

|| 12 Cal. 140. In this connection see also 14 Mad 316; 22 Bom. 509; 22 Bom. 812; 35 All. 265=18 I. C. 297.

से* वैध ही है। हाँ, इतना आवश्यक है कि विवाह की कोई विधि छूटने न पाई हो।" इसलिए यह निश्चित हुआ कि यदि कन्यादान माता कर चुकती है एवं उसमें अन्यान्य कोई त्रुटि नहीं है, तो वह कुल दायाद, चचा, पितामह, यहाँ तक कि पिता के विरुद्ध भी वैध ही रहेगा, किसी प्रकार टूट नहीं सकता।

इस सम्बन्ध में इतना कह देना आवश्यक है कि ऊपर माता के जो कुछ अधिकार कहे गए हैं, उससे विमाता को कोई सम्बन्ध नहीं है।* किन्तु देश की सरकार सभी की संरक्षिका है, इसलिए इस योग्यता से न्यायालय किसी कन्या की भलाई के लिए उचित हस्तक्षेप कर सकता है और ऐसा करने में वह यह भी देखेगा कि यदि कन्या बालिग़ (वयस्क) है तो उसकी अपनी अनुमति है वा नहीं।†

* "वचन शतेनाऽपि वस्तुनोऽन्यथा करणाशक्तेः" अर्थात् "सैकड़ों वचन से किसी वस्तु की वास्तविक स्थिति को हम बदल नहीं सकते।" यह सिद्धान्त जीमूतवाहन ने दायभाग में ग्रहण किया है। इसी को अङ्गरेज़ी में *factum valet* कहते हैं, अर्थात् जो वास्तव में हो गया वह ठीक है, उसको शास्त्रों के वचन से नहीं टाला जा सकता।

* 7 W. R. 32.
† 12 Bom. 480.

मुक्ताओं का मोल

[रचयित्री—श्री० कुमारी गङ्गादेवी जी भार्गव, 'छलना' एल० एम० पी०]

(१)

नयन के मुक्ताओं का मोल—
कहाँ है? बता गाँठ को खोल।
'नहीं'; तब क्या लेकर अनजान—
चला है करने को व्यापार?
वेदनाओं का क्रीड़ागार—
बनाने मेरा मधुमय प्यार?

(२)

कहा क्या? 'हैं बूँदें दो-चार,
भला इनका भी मोल अपार?'
अरे! इनमें अतीत की याद—
उमड़ती है बन पारावार।
शरद का वह अतृप्त अभिसार!
मिलन की वे घड़ियाँ सुकुमार!!

(३)

प्राण-धन की वह निर्मम खोट!
कुसुम-शर के फूलों की चोट!
समाए हैं इनमें ही आन—
अमिट पर हो अदृश्य तस्वीर—
कामनाओं के घूँट अधीर!
विरह के मीठे-तीखे तीर!!

(४)

अरे! कुछ समझा इनका दाम?
'यही होगा दो-चार छदाम,
करूँगा क्या, पर, इन्हें ख़रीद?'
बजाता है क्या मुँह का ढोल?
मूढ़! यदि रखे हृदय को खोल,
न होगा तब भी पूरा मोल!!
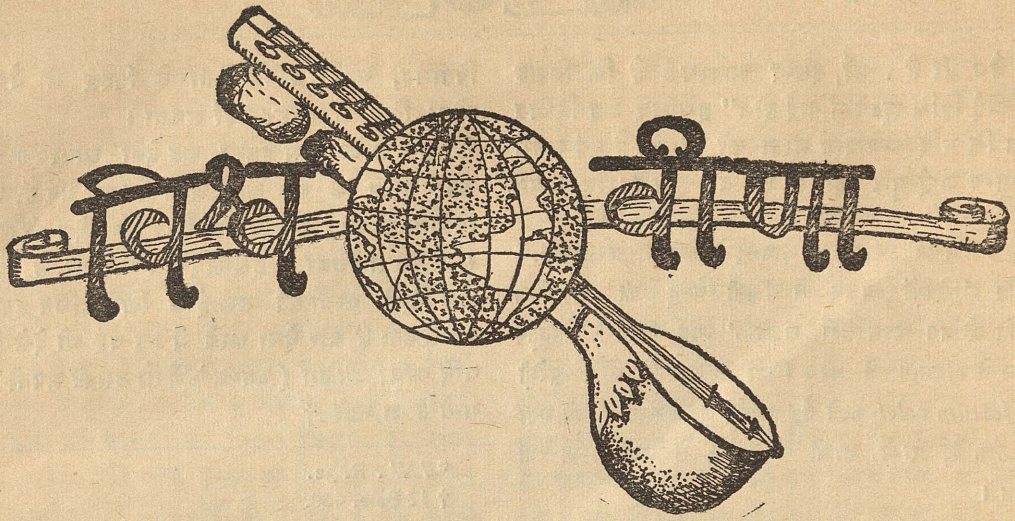
हिन्दू-विधान में स्त्रियाँ

हिन्दुओं के सामाजिक जीवन एवं विधान में स्त्रियों का स्थान इन दिनों कितना गिर गया है, यह बात किसी से छिपी नहीं। पर यह अवस्था पहले न थी। हाल में 'इवनिङ्ग मेल' नामक अङ्गरेज़ी पत्र में मि० के० टी० भाष्यम् अयङ्गर, बी० ए०, बी० एल० का इसी विषय पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। लेख में इन्होंने वैदिक काल से लेकर आज तक का, स्त्रियों को सामाजिक परिस्थिति का क्रमिक इतिहास बड़े ही मनोरञ्जक ढङ्ग से लिखा है। हम यहाँ पाठक-पाठिकाओं के लाभार्थ उस लेख का भावानुवाद नीचे प्रकाशित कर रहे हैं :—

अगर हेनरीमेन के विचारानुसार स्त्रियों के प्रति व्यवहार, उनके अधिकारों और हक़ों की स्वीकृति तथा क़ानून और जीवन में उनकी साधारण स्थिति किसी जाति की उन्नति की द्योतक हैं, तो यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दू-विधान के प्राचीनतम या ऋग्वैदिक काल में हिन्दू-सभ्यता बहुत ऊँचे शिखर पर पहुँच चुकी थी। वैदिक साहित्य का अध्ययन बतलाता है कि उन दिनों पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे; जब तक पत्नी की स्वीकृति न हो जाय तब तक पति का दान जायज़ नहीं समझा जाता था; स्त्रियाँ अपने पतियों को चुन सकती थीं; वे पूरी अवस्था में विवाहित होती थीं; यदि वे चाहतीं तो अविवाहित रह कर अपना सारा जीवन विद्याध्ययन में लगा सकती थीं और विधवाएँ अपने मृत-पतियों की स्मृति में 'अजा पञ्चोदनम्' देकर पुनः विवाह कर सकती थीं। विवाह एक पवित्र बन्धन था। पत्नी भगवान् की कृपा से प्राप्त हुई जीवन की सहचरी समझी जाती थी, जिसकी सहायता बिना आध्यात्मिक उन्नति के कोई कार्य नहीं हो सकते थे। वह एक युग था, जब कि विश्ववरा और इपामुद्रा जैसी स्त्रियाँ वेद-मन्त्र-द्रष्टा होती थीं। जैसा कि विल्सन भी कहता है—किसी भी प्राचीन राष्ट्र में स्त्रियाँ उतनी सम्मान की दृष्टि से नहीं देखी जाती थीं जितनी हिन्दुओं में।

हिन्दू-विधान के वेदोत्तर या सूत्रकाल में स्त्रियों का दर्जा घट गया। यज्ञ में सोम या सुरापान के प्रवेश से स्त्रियों का पतन आरम्भ हुआ। सुरापान न कर सकने के कारण स्वभावतः वे यज्ञ से अलग रहने लगीं, जिससे धीरे-धीरे यज्ञ पर पुरुषों का एकाधिकार हो गया। स्त्रियाँ यज्ञ में भाग लेने से वञ्चित रहीं, फल-स्वरूप वेदाध्ययन की रुचि भी उनसे हट गई। धीरे-धीरे वे केवल गृह-प्रबन्ध में ही रह गईं। शिक्षा और ज्ञान के अभाव से स्त्रियों का आदर और सम्मान जाता रहा और उनके साथ अधीनस्थ दासियों की तरह व्यवहार

होने लगा। यद्यपि यह सामाजिक अवस्था कुछ काल के लिए ही थी, पर बौधायन ने इसे स्थायी वैध रूप दे दिया। तैतरेय ब्राह्मण के एक अंश को, जहाँ पर सोमयज्ञ में भाग लेना स्त्रियों के लिए निषेध लिखा है, ठीक से न समझ कर बौधायन ने स्त्रियों का सम्पत्ति में भाग लेने से अयोग्य होना वैदिक विधान क़रार दे दिया। स्त्रियों के अधिकारोच्छेद के विरोधी बादरायन और जैमिनि जैसे उदार मत वाले ऋषियों के रहते भी बौधायन और ऐथिसायन के सिद्धान्त ने ज़ोर पकड़ा और अन्त में उसने स्त्रियों को गृह-सम्पत्ति के दर्जे में ही ठेल दिया। विवाह का आदर्श जाता रहा और समाज से विक्रय, ठगी और हरण द्वारा किया गया विवाह स्वीकृत होना प्रारम्भ हुआ। गौतम ने अपूर्ण अवस्था में ही स्त्रियों के विवाह किए जाने पर ज़ोर देकर बाल-विवाह और अनिवार्य-विवाह का बीज बोया। स्त्रियों को वेदाध्ययन करने का अधिकार नहीं रहा और वे विवाह के अवसर पर या सम्बन्धियों द्वारा दी हुई केवल तुच्छ वस्तुओं की अधिकारिणी रहीं। सूत्रकाल में स्त्रियों का अधिकार बिलकुल ही घट गया।

यह अवस्था मनु और कात्यायन जैसे प्रारम्भिक स्मृतिकारों के काल तक बनी रही। मनु की रचना प्रकट करती है कि उस समय स्त्रियों के प्रति किए जाने वाले अन्याय की ओर लोगों का ध्यान जाने लगा था। एक स्थान पर तो मनु स्त्रियों को स्वतन्त्र रहने के लायक़ नहीं ठहराता और उन्हें वेदाध्ययन करने के अयोग्य प्रकट करता है और कहता है कि "पुत्र, दास और पत्नी को कोई अधिकार नहीं है और जो कुछ वे सब उपार्जन करते हैं उसका अधिकारी स्वामी ही है।" वह विधवा-विवाह का निषेध करता है और कहता है कि आठ वर्ष की कन्या का विवाह हो जाना चाहिए। परन्तु फिर ख़ुद मनु ही कहता है "कि जिस घर में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता वह घर नाश हो जाता है; सम्पत्ति का प्रबन्ध स्त्री के हाथ में रहना चाहिए; बाल-विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति देनी चाहिए; और स्त्रियों का सम्मान लक्ष्मी की तरह करना चाहिए।" बात यह है कि मनु के समय से स्त्रियाँ फिर धीरे-धीरे अपना स्थान प्राप्त करने लगीं। व्यास का यह वर्णन कि माता, पिता से सौ गुनी मान्या एवं सबसे अधिक पूजनीया है; उशान का यह आदेश कि यदि स्त्रियाँ पास आवें तो अपने स्थान पर खड़ा होकर और बड़ी नम्रता से उनका सत्कार करना चाहिए; मनु का यह विचार कि विधवा, माता और पुत्री को उत्तराधिकारिणी में सम्मिलित करना चाहिए; शङ्ख और लिखित का यह सिद्धान्त कि बहिन को भी वारिस में दाख़िल किया जाना उचित है; एवं कात्यायन का यह कथन कि विधवा, चाहे वह पुत्रोत्पन्न करने की कामना, जैसा कि गौतम का विधान था, रखती हो वा नहीं, अपने पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हो सकती है—कुल बातें प्रकट करती हैं कि स्त्रियाँ धीरे-धीरे अपने खोए हुए अधिकारों को प्राप्त कर रही थीं।

पीछे के स्मृतिकारों के काल में, जिनमें याज्ञवल्क्य और पराशर प्रधान थे, स्त्रियों का स्थान कुछ और अच्छा हो गया। स्त्रियाँ फिर एक बार वेदों को जानने वाली होने लगीं। वे स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन, दर्शन और विधान आदि विषयों पर ऋषियों के साथ वाद-विवाद कर सकती थीं। उस समय विधान में भी उनका स्थान बहुत ऊँचा हो गया। छोटी-मोटी चीज़ों के अतिरिक्त, जो उन्हें पहले मिलती थीं, अब वे सम्पत्ति की स्वयं अधिकारिणी होने लगीं। वे व्यापार कर सकती थीं, कला-कौशल द्वारा धन उपार्जन कर सकती थीं और उन्हें इक़रारनामा करने का भी हक़ था। परिवार की भलाई के लिए वे ऋण ले सकती थीं और दूसरों के लिए ज़मानत हो सकती थीं। विधवा-विवाह फिर एक बार माना जाने लगा। नारद और पराशर ने बताया कि किन-किन परिस्थितियों में विधवा-विवाह हो सकता था। स्त्रियों का अपमान करना बहुत बड़ा गुनाह समझा जाने लगा। इसी युग के एक ऋषि ने कहा था "स्त्रियों को फूलों से भी न मारो, चाहे वे सौ अपराधों की अपराधिनी ही क्यों न हों।" समाज और विधान में स्त्रियों का पद ऐसा ही मान्य था।

टिप्पणीकारों का काल विधान में स्त्रियों का दर्जा और भी बढ़ा हुआ बतलाता है। मिताक्षरा, जिसका समय अनुमानतः ११०० ई० रक्खा जा सकता है, अपने रचयिता के काल में स्त्रियों का अधिकार बहुत बढ़ा हुआ दिखलाती है। नारद के कथन का घोर विरोध करते हुए विज्ञानेश्वर ने कहा है कि स्त्रियाँ जायदाद की मालकिन हो सकती हैं। याज्ञवल्क्य के ग्रन्थों और

उसके "आध्य" शब्द पर टिप्पणी करते हुए विज्ञानेश्वर ने प्रकट किया है कि कुल जायदाद, जिन्हें स्त्रियों ने दान, मीरास, क्रय, हिस्सेदारी, अपहरण या प्राप्ति आदि से हासिल किया हो, उनकी अपनी सम्पत्ति होगी। लेकिन उनका कहना था कि विधवाएँ तभी मीरास की मालकिन हो सकती थीं जब उनके पति ने पहले ही धन बाँट लिया हो, या अलग कर लिया हो। बङ्गाल के जीमूतवाहन ने इस विषय पर बहुत वाद-विवाद कर निश्चय किया कि पति के धन बाँट लेने के पहले मर जाने पर भी विधवाएँ उनका भाग ले सकती हैं। परन्तु उसने यह भी तय किया कि वे ऐसे धन का उपभोग केवल अपने जीवन भर कर सकती हैं। उसने यह रुकावट स्मृतियों में उल्लिखित सभी उत्तराधिकारिणियों के लिए रक्खी। बम्बई के नीलकण्ठ ने इस बात को प्रकट किया कि स्मृतियों में जिन स्त्रियों के नाम नहीं हैं, वे भी उत्तराधिकारिणी बन सकती हैं और विधवाओं को छोड़ कर दूसरी उत्तराधिकारिणी जायदाद को पूरी निजी वस्तु बना सकती हैं। गोद लेने के विषय में भी उसने आगे बढ़ कर कहा है कि विधवाएँ गोद ले सकती हैं, चाहे पति की स्पष्ट आज्ञा न भी हो या सपिण्ड की अनुमति नहीं ली गई हो। विद्यारण्य ने, जो विजयनगर के समुन्नत काल में एक बड़े विद्वान् हो गए हैं, बौधायन की आलोचना की है और दिखलाया है कि लड़कों की तरह स्त्रियाँ भी वेद पढ़ने का हक़ रखती थीं और उन्हें पुरुषों की तरह साम्पत्तिक अधिकार भी प्राप्त थे। वैदिक साहित्य के इन विचारों को डॉ० जोली और प्रो० मैक्समूलर जैसे पूर्वीय विद्याविशारदों ने भी स्वीकार किया है। इस तरह १००० से १७०० ई० के बीच विधान में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा किया हुआ समझा जा सकता है।

इसके पश्चात् और वर्तमान काल में न्यायालयों द्वारा हिन्दू-विधान के व्यवहार से स्त्रियों को बहुत दुःख सहना पड़ा और वे अपनी प्रारम्भिक स्थिति से भी बहुत नीचे गिर गईं। इस बात की घोषणा हुई कि हिन्दुओं का शासन उनके अपने विधान से किया जायगा। तुरत २००० ई० की मनुस्मृति का अनुवाद हुआ और यह व्यवस्था १७०० ई० में उस समाज पर, जो मनु के काल से बहुत दूर चला गया था, लागू कर दी गई। उदाहरण-स्वरूप, मनु का यह सिद्धान्त कि स्त्रियों को सब समय किसी न किसी अभिभावक के अधीन रहना चाहिए, हिन्दू-विधान का आधार माना गया और विज्ञानेश्वर की इसके विरुद्ध स्पष्ट और ज़ोरदार घोषणा के रहते हुए भी प्रीवी काउन्सिल ने निश्चय किया कि स्त्रियाँ मारूसी जायदाद का उपयोग अपने जीवन भर ही कर सकती हैं, उसी तरह यह भी माना गया कि विधवाओं के सम्बन्ध में कात्यायन की रुकावटें अन्य दूसरी उत्तराधिकारिणियों पर भी लागू हों। 'स्त्री-धन' कम कर दिया गया है और दान या दूसरे तरीक़ों से हासिल की हुई जायदाद—जब तक पूरे हक़ की बात साफ़ न प्रकट कर दी गई हो—केवल जीवन भर ही उनकी सम्पत्ति समझी गई। किसी दूसरे को ऐसी जायदाद दे देने का हक़ स्त्रियों को नहीं है। हाँ, क़ानूनी ज़रूरियात की बातें छोड़ दी गई हैं और इसका अर्थ "जायदाद पर दबाव" लगाया गया है। स्त्री-उत्तराधिकारिणियों की सूची मनु और दूसरे पुराने स्मृतिकारों के अनुसार तैयार की गई है। सूची में बहिन का स्थान बहुत पीछे, जब कि बहुत सी उत्तराधिकारिणी समाप्त हो जाती हैं, रक्खा गया है। पोती और नतनी मौरूसी हक़ रखने वालियों के सबसे अन्त में आती हैं। पतोहू, विमाता, विधवा भौजाई और भाञ्जी जैसी निकट सम्बन्धिनी उत्तराधिकार से बिलकुल वञ्चित कर दी गई हैं। विवाह-सम्बन्धी अधिकार का पुनर्दान, जिसे जस्टिस मैकक्लयुड "बर्बर-युग का चिन्ह" बतलाता है, बिना किसी तरह उसके रूप में परिवर्तन किए जारी कर दिया गया, जब कि पाश्चात्य देशों ने भी जहाँ से कि यह लिया गया था, इसके जङ्गलीपन को दूर कर दिया है। १८५० के २१वें एक्ट और १८५६ के १५वें एक्ट ने बड़ी गड़बड़ी पैदा कर दी है, जो साधारणतः समाज के लिए और विशेषतः स्त्रियों के अधिकार के लिए बहुत हानिकारक है। पिछला एक्ट तो अनैतिकता को बढ़ाता है और ख़ुद अपने उद्देश्य को नाश करता है। इस प्रकार स्त्रियों के अधिकार पर गत दो सौ वर्षों से बहुत हमला पहुँचा है। सती-प्रथा के उठ जाने पर और व्यवस्थापक सभाओं से सामाजिक क़ानून बन जाने पर भी, जैसा कि ऊपर कहा गया है, क़ानून में स्त्रियों का स्थान बहुत पीछे हट गया है।

परन्तु ख़ैरियत है कि इस काल में क़ानून जीवन का प्रतिबिम्ब नहीं रह गया है, जैसा कि पहले हिन्दू-विधान के समय था। यह रूप समाज की वर्तमान अवस्था की अपेक्षा शास्त्रों के पुराने अशुद्ध अर्थों के अनुसार गढ़ा गया है। परिणाम-स्वरूप विधान स्त्रियों के प्रति बहुत निष्ठुर हो गया है, उसने उनके हक़ों और अधिकारों को कम कर उनके दर्जे को बहुत नीचा कर दिया है। लेकिन उसने उस समाज पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, जहाँ स्त्रियाँ अब भी बड़े आदर-सम्मान और पूज्य दृष्टि से देखी जाती हैं।

उसी प्रकार क़ानून के इन अन्यायों का आर्थिक परिणाम भी बहुत बुरा हुआ है। स्त्रियाँ पहले की तरह साम्पत्तिक अधिकार नहीं रखतीं और यह उनकी सामाजिक स्वतन्त्रता पर बहुत बड़ा धक्का है। वे समाज में अपना शिर ऊँचा नहीं उठा सकतीं। कारण, शक्ति और उत्तरदायित्व का भाव, जिससे सब गुण उत्पन्न होते हैं, उनमें नहीं रहने दिया गया है। जिस तरह वे क़ानून में नीचा दिखाई गई हैं उसी तरह धीरे-धीरे, पर अदृष्ट रूप से, वे सामाजिक स्थिति में भी बहुत पीछे कर दी गई हैं। पहले की तरह अब वे विदुषी नहीं होतीं, इस कारण उन विचार-धाराओं को नहीं समझ पातीं जो वर्तमान राष्ट्रों के रूप को बनाती रहती हैं। शिक्षा का अभाव उनकी विचार-दृष्टि को सङ्कुचित किए रहता है। अतः अपनी जीवन की समस्या और उन्नति के लिए वे जवाबदेह नहीं हैं। उनके प्रति हमारा सम्मान का भाव हमें उनके साथ उनके पुराने भावों के लिए सहमत करता है। अनजान तार से वे राष्ट्रीय प्रगति की बहुत बड़ी बाधक बनती हैं। संसार के राष्ट्रों की शिक्षा और सभ्यता की वृद्धि के लिए हम लोग कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि देश का आधा भाग हमारे साथ नहीं है।

हमें स्त्रियों को विधान में वे हक़ और अधिकार लौटा देने चाहिए जिन्हें हम लोगों ने उनसे छीन लिया था। क़ानून के नाम पर उन पर जो अन्याय हुए हैं उन्हें दूर कर देना चाहिए। और चूँकि हम उन्हें जीवन में सम्मान करते हैं, इसलिए विधान में भी उन्हें अपने बराबर बना देना चाहिए। तभी विधान वास्तव में जीवन का प्रतिबिम्ब, समाज का सेवक, हमारी उन्नति और प्रगति में सहायक और उस महान् एवं शक्तिशाली हिन्दू-सभ्यता का निर्माणकर्त्ता होगा।

* * *

ईरान में स्त्रियों की स्वाधीनता का श्रीगणेश

एशिया महाद्वीप के मुसलमानी देशों में एक नवीन युग और नवीन मनोवृत्ति का आविर्भाव हो रहा है, और वे सभी अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार सङ्गठन और सुधार के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। टर्की की तो ऐसी कायापलट हुई है कि अगर बारह वर्ष पूर्व मरे हुए आदमियों में से कोई वहाँ किसी प्रकार लौट आवे तो अपने देश को पहचान भी न सके। टर्की आज पूर्व का एक जर्जर, लकीर का फ़क़ीर और ऊँघता हुआ पूर्वीय देश नहीं रह गया है, वरन् यूरोपियन राष्ट्रों के समान एक सभ्य, सुधार-प्रिय, और सङ्गठित राष्ट्र बन गया है, जिसकी नस-नस नव-जीवन के प्रवाह से फड़क रही है। टर्की के बाद ईरान का नम्बर है। दस-बारह वर्ष पूर्व बेचारा ईरान एक तुच्छ और महत्वहीन देश समझा जाता था और रूस तथा इङ्गलैण्ड उसे मनमाने ढङ्ग से नचाया करते थे। पर टर्की की जागृति ने उसकी आँखें खोल दीं, उसे चिर-निद्रा से जगाकर सावधान कर दिया और वह अपने बन्धनों को फेंक कर तेज़ी से उन्नति के मार्ग पर क़दम बढ़ाने लगा। अब तक राजनीतिक और धार्मिक दृष्टि से इसका बहुत-कुछ सुधार हो चुका है, पर सामाजिक मामलों में बहुत कम प्रगति हुई थी। इसका कारण शायद यही हो कि वहाँ के बुद्धिमान् शाह की दृष्टि में सामाजिक सुधार ख़तरनाक और गृह-कलह का उत्पादक हो और उन्होंने सोचा हो कि पहले अपने शासन और शक्ति को ख़ूब दृढ़ करके इसमें हाथ डाला जाय। अफ़ग़ानिस्तान की

दुर्घटना को देखते हुए उनका यह कार्य अनुचित भी नहीं कहा जा सकता। पर अब वहाँ समाज-सुधार का भी श्रीगणेश हो गया है और वहाँ का स्त्रियों को, जो सैकड़ों वर्षों से कठोर पर्दे के भीतर क़ैद रही हैं, क्रमशः स्वाधीनता मिलने लगी है। इस सम्बन्ध में वहाँ जो पहला नियम जारी किया गया है उसके वर्णन में एक छोटा-सा लेख 'ईक्वेल राइट' (Equal Right) नामक अङ्गरेज़ी पत्रिका में प्रकाशित हुआ है, जिसका भावानुवाद हम पाठकों के लाभार्थ यहाँ देते हैं :—

ईरान की स्त्रियों ने अपने स्वाधीनता-संग्राम में पहली विजय प्राप्त की है। वे अब सार्वजनिक स्थानों में अपने पतियों के साथ घूम-फिर सकती हैं; पर एक ही समय में कोई मनुष्य अपनी एक से अधिक बीबी को साथ नहीं ला सकता।

ईरान के चलते-पुर्ज़े और सुधारक बादशाह ने स्त्रियों के उद्धार के इस प्रथम क़ानून को ऐसा स्वरूप दिया है कि वह मुसलमानों में प्रचलित बहु-विवाह की प्रथा की जड़ पर अप्रत्यक्ष रूप से या छिपा कर कुठाराघात करता है। क्योंकि इस क़ानून में केवल यही आज्ञा नहीं दी गई है कि स्त्रियाँ अपने पति के साथ जनता के सम्मुख निकल सकती हैं; वरन् साथ ही उसमें एक और चाल रक्खी गई है। क़ानून के शब्द इस प्रकार हैं:—

"अब से आगे ईरान के राज्य की सीमा के भीतर कोई आदमी अपनी स्त्री को साथ लेकर किसी भी आम रास्ते पर चल सकता है और हर एक सार्वजनिक स्थान, जैसे थियेटर, जलपान-गृह, होटल आदि, में जा सकता है।"

इस आज्ञा में सबसे अधिक ध्यान देने लायक़ बात यह है कि 'अपनी स्त्री' का शब्द लिखा गया है न कि 'अपनी स्त्रियों' का।

तेहरान (ईरान की राजधानी) का प्रधान पुलिस ऑफ़िसर ईरान के इतिहास में सबसे पहला व्यक्ति था, जो इस क्रान्तिकारी क़ानून के पास होते ही, उसी दिन अपनी चार विवाहिता बीबियों में से एक को लेकर राज-मार्ग में होकर निकला। इस तरह उसने इस क़ानून की 'एक स्त्री' सम्बन्धी विशेषता की तरफ़ सब लोगों को ध्यान दिला दिया।

दूसरे तमाम बड़े सरकारी कर्मचारियों और बहुत से नगर-निवासियों ने भी, जो मुल्ला-मौलवियों के दुर्वचनों की परवाह नहीं करते, पुलिस के ऑफ़िसर के उदाहरण का अनुकरण किया। इस प्रकार अब तेहरान में किसी उच्च घराने की महिला का, यद्यपि वह बुर्क़ा से पूरी तरह अपने को छिपाए रहती है, एक पुरुष के साथ राज-मार्ग में फिरना कोई अद्भुत दृश्य नहीं समझा जाता। इस नवीन नियम के फल से ईरान के अन्तःपुरों में अवश्य ही खलबली मचेगी, क्योंकि प्रश्न उठेगा कि कौन स्त्री पहले बाहर निकले, और कौन बाद में। इस प्रकार यह नियम बहु-विवाह की प्रथा की जड़ में कुठाराघात करने वाला सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं।

बुर्क़ा भी ज़्यादा दिनों तक नहीं टिक सकता। क्योंकि जो औरतें पुरुषों के साथ बाहर निकलती हैं, वे यही नहीं चाहतीं कि लोग केवल उनकी आवाज़ सुनें, वरन् उनका दृढ़ निश्चय है कि वे उनको देखें भी।

ईरान धार्मिक दृष्टि से बड़ा अन्धविश्वासी है, और वहाँ के मुल्ला-मौलवियों ने स्त्रियों के इस उद्धार के ख़िलाफ़ बग़ावत का झण्डा उठाया है। पर सर्व-साधारण का विश्वास है, यह दशा अधिक समय तक क़ायम नहीं रह सकती और शाह थोड़े ही दिनों में दस-पाँच सबसे अधिक ज़हरीले मुल्लाओं को फाँसी पर लटका कर इस प्रकार के लोगों का मिज़ाज दुरुस्त कर देंगे।

स्त्रियों के उद्धार के इस नवीन क़ानून की प्रेरणा का कारण अफ़ग़ानिस्तान की भूतपूर्व रानी सौरेया है। जब वह अमीर अमानुल्लाह के साथ तमाम यूरोप का भ्रमण करके तेहरान में आई तो उसे सरकारी (ऑफ़िशियल) स्वागत के समय उसमें शामिल नहीं किया गया। सौरेया को यह बहुत ख़राब लगा और उसने शाह से बातें करते समय यूरोपीय देशों में अपने स्वागत और जलसों का वर्णन करके शाह को ऐसे ताने मारे कि उसने उसी समय इस बात की प्रतिज्ञा कर ली कि वह इस सम्बन्ध में अवश्य कुछ करेगा।

* * *

विस्मृता

गूँथ रही है माला रमणी, यही सोच भूली संसार !
इसके सम ही बन जाऊँ मैं, प्रिय के मञ्जु गले का हार !!

मैं बाल-पति के प्रेम में क्यों फँसी ?

हिन्दुस्तान में अनमेल-विवाह के उदाहरण बहुत देखने को मिलते हैं। साठ-सत्तर वर्ष के बूढ़ों का छोटी-छोटी बच्चियों के पाणिग्रहण करने की बात बहुत सुनी जाती है। पर साठ-सत्तर वर्ष की बूढ़ियों का नवयुवकों के साथ विवाह नहीं पाया जाता ! लेकिन यूरोप में इधर एक ऐसी ही घटना घटी है। कुछ दिन पहले जर्मनी के भूतपूर्व क़ैसर की बहिन राजकुमारी विक्टोरिया ने, जिसकी अवस्था इस समय ६१ वर्ष की है, एक २७ वर्ष के रूसी नवयुवक से शादी की थी। इस समाचार को सुनकर सारा सभ्य-संसार चकित हो गया। सब लोग इस विवाह के रहस्य को समझने के लिए बड़े उत्सुक थे। कुछ दिनों की बात है कि इङ्गलैण्ड के "टिट-बिट" नामक अङ्गरेज़ी पत्र के विशेष प्रतिनिधि के आग्रह करने पर राजकुमारी ने अपना बयान प्रकाशित कराया है। बयान निम्न-लिखित है :—

क्या साठ वर्ष की वृद्धा को बीस वर्ष के युवक के साथ विवाह करना चाहिए ? क्या नब्बे वर्ष के बूढ़े को उन्नीस वर्ष की नवयुवती से विवाह करना उचित है ? क्या इतनी भिन्न उम्र के दो प्राणियों में वास्तविक प्रेम हो सकता है ? क्या ऐसे विवाह अनैतिकता-पूर्ण हैं ? जब से दुनिया को यह मालूम हुआ कि मैं ६१ वर्ष की एक स्त्री अपने से एक बहुत छोटे युवक के साथ विवाह की तैयारी कर रही हूँ, तब से ऐसे बहुत से प्रश्न मेरे पास आने लगे हैं। मेरा बड़ा मज़ाक़ उड़ाया गया है, मख़ौल-बाज़ी हुई है और निन्दा की गई है। समाचार-पत्रों की तो मैं शिकार ही बन गई हूँ। उन सबका कहना है कि वृद्धावस्था विवाह में बाधक है, जब कि उनमें से एक प्रेमी या प्रेमपात्र अपनी बिल्कुल युवावस्था में हो।

पर मेरा विश्वास है कि प्रेम उम्र को नहीं देखता। सच्चे प्रेम की आग अस्सी वर्ष की स्त्री या पुरुष के हृदय में उतनी ही स्पष्टता से और उतनी ही विशुद्धता से जल सकती है, जितनी की अठारह वर्ष की नवयुवती या नवयुवक के दिल में। यदि दो व्यक्ति यह समझें कि वे दोनों आत्मीय सङ्गी हैं और वे एक दूसरे के लिए विशाल वासना का शिकार बने हुए हैं तो उस अवस्था में उन्हें परस्पर विवाह करने का पूरा हक़ है—उम्र इसमें किसी तरह की बाधा नहीं पहुँचा सकती। बस, इतना काफ़ी है कि सर्वव्यापी उमङ्ग और प्रेम का अस्तित्व हो। हाँ, यहाँ एक सन्तान का सवाल छिड़ जाता है, परन्तु इस अवस्था में विवाह केवल इसीलिए अनैतिक नहीं ठहराया जा सकता कि दम्पति सन्तान पैदा नहीं कर सकते और अबाधित आनन्द में जीवन व्यतीत करते हैं।

सन्तान वैवाहिक सुख को बढ़ाने वाली हो सकती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है; और चूँकि दो विवाहित व्यक्ति मनुष्य-गणना बढ़ा नहीं सकते, इसीलिए यह कोई कारण नहीं हो सकता कि वे विवाह ही न करें। विवाह एक व्यक्तिगत वस्तु है। इस बात से मुझे गहरी चोट पहुँची है कि मेरे प्रेम-सङ्गीत में एवं अपने प्रेमी के साथ विवाह की मेरी पूर्ण अभिलाषा में—यद्यपि मेरा प्रेमी मुझसे कहीं छोटा है—इतने लोगों ने व्याधियाँ खड़ी कीं।

जहाँ प्रेम की अग्नि धधक रही हो, वहाँ किसी क़िस्म की बुराई नहीं ठहर सकती। मैं समझती हूँ कि अगर मैं अपने प्रेमी के साथ केवल इस कारण से विवाह न करती कि मैं उससे अधिक उम्र की हूँ तो यह मेरी उस पर दयालुता नहीं होती, वरन् मैं एक तरह से उसकी बुराई करती; क्योंकि मैं जानती हूँ कि मेरे प्रति उसकी प्रेम की भावना ऐसी है कि मेरे बिना उसका जीवन बिल्कुल नीरस और दुःखदायी होता। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ वर्षों में हम लोग अलग हो जायँगे, क्योंकि मैं अपने प्रेमी से बहुत अधिक उम्र की हूँ। परन्तु इन कुछ ही वर्षों में उस व्यक्ति के साथ मैं अकथनीय आनन्द प्राप्त करूँगी, जिसने मेरे दिल पर पूरा-पूरा क़ब्ज़ा कर लिया है। क्या कोई ऐसी स्त्री है जो मेरे विचारों से सहमत नहीं हो ? यदि किसी व्यक्ति के हृदय में प्रेम उत्पन्न हुआ हो तो उस प्रेम से होने वाले आनन्द को प्राप्त करने का उसे पूरा हक़ है। यदि किसी का प्रेम-पात्र भी प्रेम करता हो तो उस हालत में दुनिया को उसके आनन्द में बाधा

डालने का कोई अधिकार नहीं। उम्र का सवाल तो यहाँ आ ही नहीं सकता।

मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि युवा और युवती में ही विवाह होना ठीक है, बल्कि यही श्रेयस्कर है। पर मैं इस बात को क़बूल करने को तैयार नहीं हूँ कि वृद्धावस्था विवाह या सच्चे प्रेम की बाधक है। बहुत भिन्न उम्र के दो प्राणी तभी विवाह करते हैं जब कि उनमें सच्चे प्रेम की आग जला करती है। यह विवाह उस विवाह से कहीं अच्छा है, जिसमें दो नवयौवन प्राप्त व्यक्ति पारस्परिक प्रेम से भिन्न अन्य कारणों से विवाह करते हैं, और जो एक दूसरे को नापसन्द न करते हुए भी एक दूसरे के प्रेम-पाश में नहीं बँधे रहते।

मेरे भाई क़ैसर और राजकुमारी हरमियन की शादी मुहब्बत की शादी थी—प्रेम का विवाह था, पर वे दोनों हमउम्र नहीं थे। हाँ, यह ठीक है, उन दोनों की उम्र में उतना अन्तर नहीं था। पर वे विवाह करने के पूरे हक़दार थे, क्योंकि दोनों प्रेम-रज्जु में बँध चुके थे। मैंने अपने भाई क़ैसर को ठीक यही जवाब दिया था, जब कि उसने मेरे विवाह पर आपत्ति की।

उसने कहा—विक्टोरिया, तुम पागल का सा काम कर रही हो। अगर तुमने इस नौजवान से शादी की तो तुम जर्मनी की एक मज़ाक़ की वस्तु हो जाओगी!

मैंने जवाब दिया—विलहेल्म, तुमने भी तो क़रीब मेरी ही उम्र में शादी की थी तो भी तुम आज सुखी हो। मुझे इसकी परवा नहीं कि मैं इस दुनिया की मज़ाक़ की वस्तु होऊँगी। मैं जिसे ठीक समझती हूँ, उसे करूँगी। शायद तुम इस बात को स्वीकार करोगे कि मैं अब उस उम्र को प्राप्त कर चुकी हूँ जब कि मैं अपना हित-अनहित पहचान सकूँ!

यह सुन कर मेरा भाई चुप हो गया और मेरे साथ इस विषय में और कुछ बात करना बन्द कर दिया। परन्तु विवाह के दिन तक वह मेरे विपक्ष में ही रहा। मैं ६१ वर्ष की नहीं मालूम होती; उस दिन किसी ने मुझसे कहा कि तुम पचीस वर्ष की दिखाई पड़ती हो। पर इसमें कुछ अत्युक्ति भी थी। एक बात मैं कहूँगी और वह यह है कि मैंने इस रूप और लावण्य को कृत्रिम तौर से लेप आदि द्वारा नहीं, किन्तु व्यायाम और स्वस्थ-जीवन द्वारा ही बनाए रक्खा है। मैं अपने को तीस वर्ष की प्रौढ़ा स्त्री के समान समझती हूँ। मेरे पति ने एक बूढ़ी स्त्री से नहीं—हाँ, उम्र की गिनती की बात जाने दीजिए—वरन् ऐसी स्त्री से शादी की है जो उन्हें पचीस वर्ष की नवयौवना की तरह प्रेम करेगी।

कटुवादियों ने हम दोनों के विषय में बहुत सी निष्ठुर बातें कही हैं। यह ठीक है कि मैं एक राजवंश की एवं एक बहुत धनी स्त्री हूँ। इन दो बातों को लोगों ने कारण मान कर मेरे पति को लोभवश जोखिम में पड़ने वाला समझ रक्खा है। यह बड़ी अपमानजनक बात है। पहली बात तो यह कि पहले उन्होंने विवाह की इच्छा नहीं प्रकट की, मैंने ही उनसे विवाह करने की प्रार्थना की। दूसरी बात यह कि कोर्टशिप के आरम्भिक दिनों में उन्हें मेरे धन और मान का कोई ज्ञान नहीं था। वे समझते थे कि मैं एक साधारण अवस्था की स्त्री हूँ। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं 'स्कॉमबर्ग-लीपे' की राजकुमारी हूँ तो उन्हें जो आश्चर्य हुआ वह किसी को नहीं हो सकता। अतएव यह बात स्पष्ट और निश्चित है कि उन्हें मेरे व्यक्तित्व से प्रेम था, धन से नहीं, जिसे कि उन्हें विवाह के दिन देने का मुझे आनन्द प्राप्त हुआ।

मैं समझती हूँ, हम दोनों यूरोप के सबसे सुखी दम्पत्ति होंगे और हम दोनों के प्रेम में कोई अन्तर नहीं रहेगा, बल्कि हमारी उम्र की भिन्नता उस अन्तर पर क़लई कर देगी। केवल एक चीज़ ऐसी है जो मेरे पति के अनिर्वचनीय सुख की बाधक होगी, वह यह कि कुछ वर्षों के बाद ही उनकी मुझसे जुदाई होगी। यही एक बात थी, जो हमारी पति-पत्नी बनने की उत्कण्ठा को रोकती रही। पर प्रेम की कभी कमी नहीं थी। इन बातों पर पूरी विवेचना करने के पश्चात् ही हम दोनों ने निश्चित किया कि इन यत्किञ्चित घड़ियों में जितना आनन्द मिल सके, हमें ले लेना चाहिए। हम लोग उस दुःखद दिन की परवा न करें, जब कि हम दोनों सदा-सर्वदा के लिए एक दूसरे से अलग हो जाने को बाध्य होंगे।

अन्त में मैं उन लोगों को, जो विवाह-बाधक उम्र के कारण सुख-प्राप्ति से वञ्चित हो रहे हैं, सलाह दूँगी कि वे साहस कर विवाह करने को तैयार हो जायँ और लोकमत द्वारा अपने आनन्द को नष्ट होने से बचाएँ। उम्र किसी तरह विवाह में बाधक नहीं हो सकती,

प्रेम में बन्धन को स्थान नहीं, वृद्धावस्था भी इसके मार्ग को नहीं रोक सकती।

कामदेव बड़ा निर्दयी और दुष्ट प्राणी है। जब वह गतवयस्क व्यक्तियों के कोमल हृदयों में अपना तीच्ण बाण बेधता है, तो वह बड़ा ही उत्पीड़क होता है। पर जब ऐसा हो तब तुम अपने दिल से पूछो और अगर वह राज़ी हो जाय तो तुम अपनी मनोवाञ्छा पूरी करो। यदि तुममें सच्चा प्रेम मौजूद है, तो मैं नहीं समझती कि तुम क्यों दर्द सहते रहो।

इस विवाह के सम्बन्ध में राजकुमारी विक्टोरिया का बस यही अपना बयान है। मालूम नहीं एलेक्ज़ेण्डर (राजकुमारी विक्टोरिया के युवक-पति) ने इस सम्बन्ध में अपनी ओर से कुछ प्रकाशित कराया है या नहीं। पर राजकुमारी के एक पुराने घनिष्ट मित्र ने इस विवाह के रहस्य पर बहुत-कुछ प्रकाश डाला है। उसके कथन से विवाह की वास्तविक बातें लोगों को अच्छी तरह मालूम हो जाती हैं। उसने 'टिट-बिट' में ही इस विषय पर एक लेख लिखा है:—

उसका कहना है कि इस विवाह की बात सुन कर उसे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। वास्तव में उसे विश्वास है कि यदि राजकुमारी इस आकर्षक नवयुवक के प्रेम में इतनी पगली न भी हो गई होती, जितनी कि वह कहती है, तो भी यह विवाह अवश्य होता। उस प्रथम-प्रेम की स्मृति को, जिसने उसके हृदय में डेरा कर लिया था, दूर करने के लिए वह अवश्य विवाह करती।

राजकुमारी विक्टोरिया होहेंज़ोलर्न राजवंश की कुमारी होने के कारण उस दाम्पत्य सुख से वञ्चित रही, जिसे प्राप्त करने का प्रत्येक स्त्री को अधिकार है। अब वह राजकुमारी नहीं रही, राजकुमारी का कोई अधिकार उसे नहीं रहा। पर लोग उसे राजकुमारी के नाम से ही पुकारते हैं। यद्यपि ये अधिकार नष्ट हो गए हैं और जर्मनी की क्रान्ति तथा क़ैसर की पदच्युति के कारण अब उसे स्वतन्त्रता मिल गई है। जब राजकुमारीपन बीत गया तो उसमें रमणीत्व जाग्रत हो उठा और उसके साथ ही जाग उठी उन रमणी-सुखों के उपभोग करने की लालसा, जिसे वह राजकुमारी रहते हुए पूरी न कर सकी। राजकुमारी के इस ६१ वर्ष की अवस्था में एक युवक के साथ विवाह कर लेने का यही रहस्य है।

राजकुमारी विक्टोरिया अभी बीस वर्ष की भी न हो पाई थी कि उसके हृदय में प्रेम की अग्नि लहक उठी। देखने वाले देख सकते थे कि उसका विवाह हो जाना अब बहुत आवश्यक हो गया था। बेटनबर्ग के होनहार सुन्दर राजकुमार एलेक्ज़ेण्डर ने उसके हृदय पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस राजकुमार का ब्रिटिश राजवंश के साथ सम्बन्ध था, अतएव यह राजकुमारी के लिए सर्वथा उपयुक्त वर था।

पर विशुद्ध प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अक्सर मुठभेड़ हो जाती है, और केवल विक्टोरिया ही ऐसी अभागिनी राजकुमारी नहीं जिसका हृदय कूट-राजनीति की निहाई पर चूर कर दिया गया हो।

राजकुमारी के दुर्भाग्य का कारण बालकन राज्य हुआ। उस समय बलग़ेरिया में कोई राजा नहीं था। बलग़ेरिया-वासी यूरोप के किसी छोटे राजवंश के ऐसे व्यक्ति की खोज में थे जो उनका राजा हो सके। बलग़ेरिया एक सैनिक राजा चाहता था और एलेक्ज़ेण्डर नामी सिपाही था। बस, फिर क्या था, एलेक्ज़ेण्डर राजा बना लिया गया।

कुछ दिनों तक एलेक्ज़ेण्डर सफलता के साथ राज्य करता रहा। पर बालकनवासी किसी से अधिक दिन तक सन्तुष्ट नहीं रहते। इस कारण अलेक्ज़ेण्डर को भी अपने पद से हटना पड़ा।

किसी राजा का अपने पद से च्युत होना कोई लज्जा की बात नहीं है। केवल इसी कारण से वह राजकुमारी के पाणिग्रहण के अयोग्य नहीं हो सकता। असल में एलेक्ज़ेण्डर का दोष तो यह था कि बालकन में राज्य करते समय वह रूस की अपेक्षा ऑस्ट्रिया से अधिक मित्रता रखता था। उस समय जर्मनी के वास्तविक शासक—उसके प्रधान मन्त्री बिस्मार्क—की रूस के साथ बड़ी मित्रता थी। वह रूस की मित्रता को सबसे बढ़ कर पसन्द करता था। बालकन के कारण और विशेष कर एलेक्ज़ेण्डर के कारण रूस और ऑस्ट्रिया में अनबन थी। रूस एलेक्ज़ेण्डर पर बेहद नाराज़ था। ऐसी हालत में जर्मन-राजपुत्री का विवाह एलेक्ज़ेण्डर के साथ होने दिया जाना सम्भव नहीं था।

अतः उधर एलेक्ज़ेण्डर बेचैन था तो इधर राजकुमारी विक्टोरिया हताश होकर राजमहल में रो-पीट रही थी। उसकी माता, जो पहले ब्रिटेन की राजकुमारी थी, उसके पक्ष में थी। उसकी मातामही महारानी विक्टोरिया ने उसके पक्ष का समर्थन करते हुए बिस्मार्क के पास कई आवश्यक पत्र भेजे। परन्तु फल कुछ नहीं निकला। राजकुमारी का करुण-क्रन्दन बिस्मार्क के पाषाण-हृदय को नहीं पिघला सका। उसके सामने एक बालिका का विदीर्ण होता हुआ कलेजा कुछ मूल्य नहीं रखता था। विक्टोरिया राजकुमारी थी, एक सामान्य स्त्री नहीं। राजकुमारी को हृदय रखने का कोई अधिकार नहीं होता।

इधर राजकुमारी विक्टोरिया का विवाह जर्मनी के स्कॉमबर्गलीपे के राजकुमार एडॉल्फ़ के साथ हो गया और उधर राजकुमार एलेक्ज़ेण्डर ने एक गायिका के साथ विवाह कर किसी तरह सन्तोष कर लिया। पर बिस्मार्क ने जो विक्टोरिया के कलेजे को चूर कर दिया था, उसका घाव कभी आराम नहीं हुआ।

राजकुमारी का नया वैवाहिक जीवन सुखप्रद नहीं हुआ। विक्टोरिया और एडॉल्फ़ की रुचि एक सी नहीं थी। जहाँ विक्टोरिया बाहर रहना अधिक पसन्द करती थी, सब तरह के खेलों, घुड़सवारी और टेनिस आदि से विशेष रुचि रखती थी, वहाँ एडॉल्फ़ घर पर रहना, सुन्दर-सुन्दर पदार्थ खाना और बोतल ढालना बहुत पसन्द करता था।

१६१६ में राजकुमार एडॉल्फ़ मर गया। विक्टोरिया उस समय पचास वर्ष की थी। उसके मैदानी जीवन ने उसके रूप-लावण्य को बनाए रक्खा। विधवा होने के साथ ही वह शरीर और मन से तीस वर्ष की मालूम पड़ने लगी।

अब केवल एक बात की आवश्यकता थी। विक्टोरिया यद्यपि अब विधवा हो गई थी, पर तब भी वह राजकुमारी ही बनी थी। इसके अनन्तर महासमर का अन्त हुआ। जर्मनवासियों ने राजकुमारी के भाई क़ैसर को राज्य-पद छोड़ने को बाध्य किया। होहेन्जोलर्न राज्यवंश अब नहीं रह गया। राजकुमारी स्वतन्त्र हो गई। उसी दिन फिर विक्टोरिया का पददलित हृदय बीस वर्ष की युवती का हृदय हो गया। जिस जीवन-सुख को वह न पा सकी थी, उसे वह अब मिल सकता था। उसने उसे प्राप्त करने की ठान ली।

एक बार उसने अपने उपर्युक्त मित्र को लिखा था—"महासमर ने मेरी कुल सम्पत्ति छीन ली, पर उसने मुझे बदले में बहुत मूल्यवान् वस्तु—स्वतन्त्रता—दिला दी। इसके लिए मैं ईश्वर को सहर्ष धन्यवाद देती हूँ। अब मैं अन्ततः स्त्री बन सकती हूँ—स्त्री-हृदय रख सकती हूँ।"

यही कारण है कि विक्टोरिया ने युवक एलेक्ज़ेण्डर ज़ुवकॉफ़ से विवाह किया। वह वास्तव में कौन है, इसे कोई नहीं जानता। उसके कथनानुसार उसका पिता एक रूस निवासी था। क्रान्ति के बाद वह नाविक का काम करता रहा। फिर सिनेमा में काम करने लगा। इसके पश्चात् उसने एक होटल में तश्तरी धोने का काम किया। फिर जाकर किसी रेलवे वेटिङ्ग रूम में चपरासी रहा।

उसके एक सम्बन्धी ने उसका परिचय राजकुमारी विक्टोरिया से कराया। उसके रूप, उसके गुण, उसके सौन्दर्य एवं उसकी कान्ति को देख कर विक्टोरिया चकित हो गई। उसके हृदय में रमणीत्व तो जग ही रहा था। बस अब क्या देर थी, उसका हृदय उस नवयुवक के लिए ललक उठा। विक्टोरिया भी लावण्यवती थी। दोनों एक दूसरे पर आसक्त हो गए, दोनों ने एक दूसरे पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

*　*　*

पृथ्वी पर स्वर्ग

यूरोप के उत्तर में स्वीडेन के पास एक 'रुनो' नामक छोटा सा टापू है, जिसमें थोड़े से लोग अति प्राचीन काल से बसे हैं। अभी हाल में वहाँ स्वीडेन की तरफ़ से एक सहायकारी दल भेजा गया था, जिसने उस टापू का बड़ा मनोरञ्जक वर्णन प्रकाशित कराया है। इस लेख के पढ़ने से हमको एक ऐसी सामाजिक प्रथा का हाल मालूम होता है, जो बिलकुल सीधी-सादी होने पर भी वर्तमान चमक-दमक वाली सभ्यताओं से मनुष्यों के लिए कहीं अधिक हितकर और

सुखकारी है। हम उसका सारांश १७ मई के 'पायोनियर' से यहाँ देते हैं :—

इस टापू में जो लोग बसते हैं वे साम्यवाद (या कम्यूनिज़्म) के सिद्धान्तों पर पूरी तरह से अमल करते हैं और एक हज़ार वर्ष से ज़्यादा समय से इन्हीं नियमों का व्यवहार करते रहे हैं। इस समय में भी इस टापू वाले, जो वहाँ सम्भवतः ईसवी सन् के आरम्भ से रहते हैं, और जिनके सम्बन्ध में सन् १३४१ का लिखित प्रमाण मिलता है, जायदाद के सम्बन्ध में अपनी पुरानी रिवाज पर ही चल रहे हैं।

यह छोटा टापू जो सिर्फ़ २½ मील लम्बा और २ मील चौड़ा है, राजनैतिक दृष्टि से इस्थोनिया के अधिकार में है। इसके निवासियों की संख्या केवल ३०० है, जो सत्ताईस खेतों में रहते हैं। आमदनी के मुख्य साधन मछली मारना और सील (एक प्रकार की बहुत बड़ी मछली) का शिकार करना है। इस समाज में सब लोग पूर्णतया समान हैं और एक भी नौकर नहीं है। सिवाय कपड़ों, हथियारों और इसी प्रकार की कुछ इस्तेमाली चीज़ों के किसी प्रकार की व्यक्तिगत (निजी) जायदाद किसी के पास नहीं है। कोई आदमी अपने खेत को बेच नहीं सकता। क्योंकि उसे केवल वहाँ पर रहने, खेत को जोतने-बोने और घोड़ों को काम में लाने का अधिकार होता है।

हर एक खेत ज़मीन के प्रायः पचास छोटे-छोटे टुकड़ों से मिल कर बना होता है, जो समस्त टापू में फैले होते हैं। जङ्गल और चरागाह सार्वजनिक चीज़ माने जाते हैं। जब कोई किसान अपना घर बनाना चाहता है, या कोई ऐसा काम करना चाहता है जिसमें दूसरे लोगों की सहायता की आवश्यकता पड़े तो वह अपने पड़ोसियों को बुला सकता है। उनको कुछ मज़दूरी नहीं देनी पड़ती, केवल खाना खिलाना होता है। सील मछली को बेचने और भटके हुए जहाज़ों को मदद देने से जो धन प्राप्त होता है वह सब लोगों में बराबर-बराबर बाँट दिया जाता है। बच्चे, स्त्रियाँ और अपाहिज़ लोगों को भी इसमें से पूरा हिस्सा दिया जाता है। अगर रूनो का कोई मछली वाला संयोगवश अपनी शिकार की हुई सील को ज़्यादा दाम में बेच लेता है तो उसमें से भी सबको बराबर हिस्सा दिया जाता है।

साम्यवाद के ये सब नियम एक पुस्तक में क़ानून के तौर पर लिखे हुए हैं और परम्परा से लोगों को ज़बानी भी याद हैं। प्रेसीडेण्ट, एक सेक्रेटरी और एक जज इस टापू के सबसे बड़े अधिकारी हैं। ये एक नियत समय के लिए सब लोगों के—जिनमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं—वोट द्वारा चुने जाते हैं। इन अधिकारियों को किसी तरह का वेतन नहीं मिलता। महत्वपूर्ण प्रश्नों का निर्णय करने के लिए पार्लामेण्ट की एक बैठक प्रायः गर्मी के महीने में की जाती है। किसी प्रकार के जुर्म देखने-सुनने में नहीं आते।

इस साम्यवादी-समाज की एक विशेषता यह है कि ये लोग बड़े लकीर के फ़क़ीर हैं और किसी नई चीज़ या रिवाज़ को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि जब हमारे पुरखे इन नियमों द्वारा सुखपूर्वक जीवन बिता चुके हैं, तो हम भी इन्हीं के द्वारा अपना काम अच्छी तरह चला सकते हैं।

अभिलाषा

[रचयिता—श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी]

उठने दो हृत्तन्त्री में मीठी-मीठी झनकार।
कँपने दो धीरे-धीरे सुकुमार नसों के तार॥

गाओ गायक गाओ, फिर ममतामय करुण-विहाग।
जगने दो चुपके-चुपके अन्तस्तल का अनुराग॥

बरसाए जाओ पीयूष की धारा मेरे ऊपर।
भिगो-भिगो कर मुझे डुबो दो अपनेपन के भीतर!!

देवरानी-जेठानी

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]
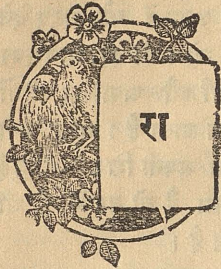
रात के आठ बज चुके हैं। एक साफ़-सुथरे कमरे के एक कोने में एक २५-२६ वर्ष का युवक बैठा हुआ भोजन कर रहा है। उसके पास एक २०-२२ वर्ष की स्त्री, जो साधारणतया सुन्दर है, हाथ में पङ्खा लिए बैठी है और युवक से बातें कर रही है। वह कह रही है—"जैसा जेठानी जी के लिए जेठ जी ने बनवाया है, वैसा ही मुझे भी बनवा दो।"

युवक पानी का घूँट पीकर बोला—क्या यह आवश्यक है कि वैसा ही हो?

"हाँ, वैसा ही हो।"

"जो उससे अच्छा हो तो?"

"तो फिर क्या कहना है। और भी अच्छी बात है।"

युवक हँस कर बोला—तुम स्त्रियों का स्वभाव भी बड़ा विचित्र होता है। जो एक करे उसी की नक़ल सब करती हैं।

"नक़ल काहे को करती हैं।"

"यह नक़ल नहीं तो और क्या है?"

"नक़ल काहे को, चलन की बात है। जो चीज़ अच्छी होती है उसी का चलन चल जाता है, इस वास्ते सबको वैसी ही बनवानी पड़ती है।"

"ख़ूब, मैं तो समझता था कि फ़ैशन का रोग केवल यूरोप-अमेरिका ही में है, परन्तु अब देखता हूँ कि हम लोगों में भी यही रोग है।"

"यह रोग है?"

"रोग नहीं तो क्या है?"

"तुम्हें तो सभी रोग दिखाई पड़ता है। खाना-पहनना भी रोग होने लगा तो बस फिर हो चुका।"

"साधारणतया खाना-पहनना रोग नहीं है। परन्तु किसी विशेष प्रकार के खाने-पहनने की लत हो जाना तो रोग ही है।"

"तो फिर तुम क्यों नित नई तरह की टाइयाँ, कॉलर और कोट बनवाते हो? अभी उस दिन मैंने वह कोट तुम्हारे पहनने के लिए निकाला था—तुमने उसे नहीं पहना, बोले—आजकल इसका फ़ैशन नहीं रहा।"

"हमारी बात दूसरी है। हम कुछ शौक़ से ऐसा नहीं करते। हम लोगों को अङ्गरेज़ों से मिलना-जुलना पड़ता है, इसलिए ऐसा करते हैं।"

"अपने हिन्दुस्तानी कपड़े पहनो तो क्या अङ्गरेज़ मना करते हैं?"

"मना तो कोई नहीं कर सकता; परन्तु फ़ैशन के अनुसार कपड़े पहनने से वे अधिक आदर-सम्मान करते हैं।"

"तो बस ऐसा ही हम औरतों का भी हाल है। जिस चीज़ का चलन है, वैसी चीज़ पहनने-ओढ़ने से स्त्रियाँ कुछ नहीं कहतीं, नहीं तो मुँह बिचकाती हैं, हँसती हैं, तरह-तरह के बोल बोलती हैं।"

पत्नी की इस बात से युवक निरुत्तर होकर बोला—अच्छी बात है, पहनो-ओढ़ो—अब मना कौन करता है?

"तो नेकलेस कब तक बन जायगा?"

"यह तो सुनार ही बता सकता है। मैं क्या बताऊँ।"

"तुम जल्दी करोगे तो जल्दी बन जायगा, ढील डालोगे तो देर लगेगी।"

"भाभी का नेकलेस कितने का है?"

"दस तोले का है और पचास रुपए बनवाई।"

"बनवाई बहुत है!"

"चीज़ भी तो है!"

युवक ने इसका उत्तर कुछ न दिया। भोजन करके उठा और हाथ-मुँह धोकर तौलिए से हाथ पोंछता हुआ कुर्सी पर आ बैठा। पत्नी ने पान लगाकर दिए। पान लेकर युवक बोला—"तो कल नेकलेस बनने दे दूँगा, आठ-दस दिनों में बन जायगा।"

"रामू की वर्ष-गाँठ के आज से पन्द्रह दिन हैं, तब तक बन जाय!"

"हाँ, तब तो बन जाना चाहिए।"

इतना कह कर युवक ने मेज़ पर रक्खी हुई एक पुस्तक उठा ली और पढ़ने लगा। पत्नी दूसरे कमरे में चली गई।

इस युवक का नाम ज्योतिशङ्कर है। ये तीन भाई हैं। ज्योतिशङ्कर के परिवार में इनकी पत्नी तथा एक पञ्चवर्षीय पुत्र है। ज्योतिशङ्कर भाइयों में सबसे छोटे हैं। मँझले भाई के परिवार में भी तीन ही प्राणी हैं—वह, उनकी पत्नी तथा एक सप्तवर्षीया कन्या। सबसे बड़े भाई के परिवार में पति-पत्नी के अतिरिक्त एक अष्टवर्षीय पुत्र तथा एक पञ्चवर्षीया कन्या है। जिस मकान में यह रहते हैं, वह इनकी पैतृक सम्पत्ति है। अतएव इसमें तीनों भाइयों का समान अधिकार है। मकान तीन बराबर भागों में बँटा हुआ है। एक में ज्योतिशङ्कर रहते हैं, दूसरे में उनके मँझले भाई रविशङ्कर। तीसरा भाग उनसे बड़े भाई मणिशङ्कर के अधिकार में है, परन्तु वह जीविकावश परदेश में रहते हैं, अतएव वह बन्द पड़ा रहता है।

ज्योतिशङ्कर अपने मँझले भाई के साझे में कपड़े की अङ्गरेज़ी ढङ्ग की दूकान किए हुए हैं। ज्योतिशङ्कर तथा रविशङ्कर में परस्पर यथेष्ट स्नेह है। परन्तु जितना ही दोनों में स्नेह है, उतना ही दोनों की पत्नियों में वैमनस्य! इसके फल-स्वरूप यदा-कदा दोनों भाइयों में भी दो-दो चोंचें हो जाया करती हैं। यद्यपि दोनों भाई इस बात का प्रयत्न करते रहते हैं कि देवरानी-जेठानी में परस्पर प्रीति-भाव रहे, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती।

पन्द्रह दिन पश्चात् ज्योतिशङ्कर के पुत्र रामशङ्कर की वर्ष-गाँठ हुई। दोपहर में इष्ट-मित्रों के घरों की स्त्रियाँ जमा हुईं, नाच-गाने का समाँ बँधा। देवरानी अर्थात् ज्योतिशङ्कर की पत्नी का नया नेकलेस बन कर आ गया था। अतएव वह उसे पहने हुए थी और इस अभिप्राय से कि नेकलेस पर सबकी दृष्टि पड़े उसे बार-बार सँभालती थी। कई बार यह चेष्टा करने पर भी जब किसी ने नेकलेस के सम्बन्ध में कोई प्रश्न न किया तो एक बार वह नाक-भौं चढ़ाकर अपने ही आप बोली—"दाढ़ीजार सुनार ने न जाने कैसा काँटा बनाया है—गर्दन घायल किए डाल रहा है।"

उसके इतना कहते ही उसके पास बैठी हुई स्त्रियों ने नेकलेस को ध्यानपूर्वक देखा। एक उनमें से बोली—"अरे यह कब बनवाया?" देवरानी प्रसन्नमुख होकर बोली—आज ही बन कर आया है।

अब क्या था, अब तो प्रत्येक स्त्री ने पारी-पारी से नेकलेस का निरीक्षण किया। जो देखती थी वही उसकी प्रशंसा करती थी। थोड़ी दूर पर जेठानी भी बैठी थी। यद्यपि उसने सबसे पहले नेकलेस को ताड़ लिया था; परन्तु वह इस प्रकार बैठी हुई थी मानों उसने देखा ही नहीं। अब भी जब कि अन्य स्त्रियाँ उसे देख रही थीं, जेठानी दूसरी ओर मुँह किए एक स्त्री से वार्त्तालाप कर रही थी।

नेकलेस को सबने पसन्द किया। एक स्त्री ने जेठानी को पुकारा—कलावती की माँ, यह नेकलेस देखा?

जेठानी अनजान बन कर बोली—कैसा नेकलेस?

"यह जो तेरी देवरानी ने बनवाया है। ज़रा देख तो, तेरे से बढ़िया है।"

जेठानी ने एक बार वहीं से बैठे हुए नेकलेस पर दृष्टि डाली और लापरवाही से बोली—डिज़ाइन का फ़रक़ है—और क्या बढ़िया है?

"डिज़ाइन ही तो सारी चीज़ है।"—एक स्त्री ने कहा।

"अपनी-अपनी पसन्द है।"—कह कर जेठानी पुनः बातों में लग गई।

देवरानी का अभिप्राय पूरा हो गया। वह हँस-हँस कर स्त्रियों से बातें करने लगी।

२

उसी दिन रात में जेठानी अपने पति से बोली—जोती (ज्योतिशङ्कर) ने अपनी बहू के लिए कितना सुन्दर नेकलेस बनवाया है—एक तुम बनवा के लाए?

"तो तुम्हारा क्या कुछ बुरा है। जब बन के आया था तब तो तुमने पसन्द किया था।"

"बुरा न हो; पर वैसा नहीं है।"

"तो इसके लिए क्या किया जाय—अनेक प्रकार की डिज़ाइनें चल गई हैं; मेरी निगाह में वह न पड़ी होगी।"

"तुम्हारी निगाह में काहे को पड़ने लगी—कुछ परवा हो तो पड़े। जैसा सुनार ने बना दिया, लेकर

चले आए। आदमी दस जगह देख-सुन कर बनवाता है।"

"ख़ैर, अब तो बन गया, मजबूरी है।"

"मजबूरी-वजबूरी नहीं, मेरे लिए भी वैसा ही बनवाओ, चाहे इसी को तुड़वा कर बनवाओ, चाहे दूसरा बनवाओ। आज औरतों के सामने मुझे ऐसा लज्जित होना पड़ा कि क्या कहूँ?"

"लज्जित होने की कौन सी बात थी?"

"बात क्यों नहीं थी—सब उसी के नेकलेस को देखती रहीं।"

"नई चीज़ थी, इसलिए देखती रहीं। इसमें तुम्हें लज्जित होने की क्या बात थी?"

"बात यह थी कि सब सोचती होंगी कि कलावती के पिता को चीज़ें बनवाने का सहूर भी नहीं है।"

पत्नी की इस बात पर रविशङ्कर बहुत कुढ़े। बोले—स्त्रियाँ चाहे कहती हों या न कहती हों; पर तुम अवश्य कहोगी। चीज़ ख़राब हो तो यह बात कही जा सकती है—जब चीज़ ख़राब नहीं तब कोई कैसे कह सकता है?

"कहने वाले कहते ही हैं—किसी की जीभ नहीं पकड़ी जा सकती।"

रविशङ्कर भृकुटी चढ़ाकर बोले—तो कोई कारण भी तो हो, या ख़ामख़्वाह कहेंगे।

"जोती ने जो बनवाया है वह तुम्हारे से अच्छा है—यही कारण है।"

"इतने ही से मैं बेशऊर हो गया?"

"अच्छा हुए या न हुए—इससे अब क्या मतलब, मुझे वैसा ही बनवा दो।"

"बस तुमने तो कह दिया बनवा दो, बनवाने में कुछ लगता थोड़ा ही है।"

"लगेगा तो कहीं चला जायगा?"

"बनवाई तो सब बट्टे खाते जाती है और सोना भी टाँके लगने से रुपए की जगह बारह आने का रह जाता है—यह सब नुक़सान ही तो है।"

पत्नी चिबुक पर उँगली रख कर बोली—हे भगवान्, जो सब तुम्हारी तरह नुक़सान देखने लगें तो फिर काहे को कोई चीज़ बनवावे। कपड़े काहे को सिलवाते हो? इसमें भी तो सिलाई बेकार जाती है। कपड़ा लाकर वैसे ही लपेट लिया करो।

"कपड़े की और इसकी क्या समता? एक सूट की सिलाई अधिक से अधिक दस रुपए। पर एक नेकलेस की बनवाई में तो पचास-साठ के माथे जाती है।"

"तो गहना धरा भी तो रहता है। अटके-भिटके काम देता है—कपड़ा तो जहाँ फटा बस गया।"

"तुम्हें कौन समझावे"—कह कर रविशङ्कर चुप हो गए।

दूसरे दिन दूकान पर उन्होंने ज्योतिशङ्कर से पूछा—वह तुमने कैसा नेकलेस बनवाया है?

"है तो भाभी के जैसा ही; पर डिज़ाइन में कुछ अन्तर है।"

"तो यह अन्तर काहे को रक्खा—वैसा ही बनवाते।"

"सुनार ने बना दिया, मैं तो कुछ जानता नहीं।"

"बस तुम तो यह कह कर अलग हो गए। यहाँ नाक में दम हो रहा है। कल से तुम्हारी भाभी मेरे पीछे पड़ी है कि मुझे भी वैसा ही बनवा दो।"

"इनका क्या कुछ बुरा थोड़ा ही है।"

"तो यह उसे समझावे कौन?"

ज्योतिशङ्कर मन में बोले—"आप समझावें, और किसी को क्या ग़रज़ है। यदि आप नहीं समझा सकते तो यह आपका दोष है।"

रविशङ्कर बोले—पहले भी मैं कई बार समझा चुका हूँ और आज फिर कहता हूँ कि जो ज़ेवर या कपड़ा बनवाओ वह दोनों का एक तरह का हो। यदि बड़ी का पहले बने तो तुम ठीक वैसा ही बनवाओ और छोटी का पहले बने तो मैं वैसा ही बनवाऊँ।

"अच्छी बात है, ऐसा ही होगा। सुनार ने डिज़ाइन बदल दिया, मैंने तो वैसा ही बनाने को कहा था।"

"सुनार ससुरे का क्या गया और तुम्हारा क्या गया। परन्तु मुझ पर तो ढाई-तीन सौ की चपत पड़ गई। अब जब दूसरा बनेगा तब प्राण बचेंगे।"

उपरोक्त घटना के आठ-दस दिन पश्चात् रविशङ्कर के पिता के एक मित्र आए। दोनों भाइयों के दूकान पर चले जाने के कुछ ही देर पश्चात् वह आए। नौकर ने बाहरी कमरे में उन्हें ठहरा दिया। वह बेचारे स्नान

इत्यादि करके इस प्रतीक्षा में बैठे कि कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध होता होगा। परन्तु यहाँ दोनों देवरानी-जेठानी सोंठ बनी बैठी थीं। नौकर ने जाकर जेठानी से कहा—"वह बाबू आए हैं, उनके लिए कुछ खाने-वाने को...।"

नौकर की बात पूरी होने के पूर्व ही जेठानी बोल उठी—"छोटी से कह जाकर, वही करेगी, मेरा जी अच्छा नहीं है।" नौकर ने छोटी से जाकर कहा। वह बोली—"मैं क्या जानूँ, कौन हैं कौन नहीं। जेठानी जी से कह।"

नौकर बोला—पहले तो उन्हीं से कहा था—वह बोलीं छोटी से कहो।

"हाँ, छोटी ही तो फालतू है। बड़ी वह हैं या मैं। यह काम उन्हीं का है। मैं इस झगड़े में नहीं पड़ती।"

नौकर चुप होकर बैठ रहा। उसने सोचा, मुझे क्या पड़ी है—"मैंने दोनों से कह दिया, अब वे जानें उनका काम।" मेहमान साहब बड़ी देर तक प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु जब भोजन क्या, भोजन की गन्ध तक न आई और पेट बग़ावत करने पर कटिबद्ध हो गया तो उन्होंने नौकर द्वारा बाज़ार से खाना मँगाकर खाया। छोटी बहू ने दो बीड़े पान भेज कर मेहमान साहब की खोपड़ी पर एहसान का टोकरा लाद दिया और निश्चिन्त हो गई। बड़ी बहू एहसान का लेन-देन ज़रा कम अच्छा समझती थीं। इसलिए वह पहले ही से निश्चिन्त बैठी थी।

सन्ध्या-समय जब दोनों भाई घर आए तो मेहमान साहब को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। पिता के मित्र थे, अतएव दोनों को उनके आने की प्रसन्नता हुई। बड़े भाई ने पूछा—कब आए थे?

"सवेरे दस बजे की गाड़ी से आया था।"

"अच्छा! भोजन ठीक तरह से मिल गया था?"

"हाँ, मँगा लिया था?"

"मँगा कहाँ से लिया था?"—रविशङ्कर ने पूछा।

"बाज़ार से मँगा लिया था।"

"बाज़ार से! क्यों, बाज़ार से क्यों मँगाया, क्या घर में नहीं बन सकता था। यह आपने बड़ा बेजा काम किया।"

मेहमान साहब मन में बोले—यह अच्छे मिले। प्रतीक्षा करते-करते भूखों मर गया, किसी ने बात तक न पूछी, उलटे मुझी को डाँट रहे हैं—ख़ूब! परन्तु आदमी भलेमानस थे, बोले—मैंने सोचा कि क्यों दिक़्क़त पहुँचाऊँ।

"वाह, इसमें दिक़्क़त की कौन सी बात थी।"—छोटे साहब अर्थात् ज्योतिशङ्कर बोले।

रविशङ्कर ने पुकारा—लछमन!

लछमन नौकर का नाम था—वह आया।

रविशङ्कर बोले—क्यों जी, तुम बाज़ार से खाना क्यों लाए, घर में क्यों न कहा?

नौकर मौन खड़ा रहा।

रविशङ्कर कड़क कर बोले—जवाब क्यों नहीं देता, बदमाश कहीं का।

अब नौकर को भी तेहा आ गया। उसने कहा—कहा तो था। बड़ी बहू से कहा, वह बोलीं कि छोटी से कहो। छोटी से कहा तो वह बोलीं—बड़ी जानें; मैं इस झगड़े में नहीं पड़ती। तब बताइए मैं क्या करता—आख़िर नौकर ही ठहरा।

इतना सुनते ही दोनों भाई सन्नाटे में आ गए—काटो तो ख़ून नहीं। मेहमान साहब मुँह फेर कर मुस्कराए। उन्हें जो कुछ देर तक भूख की यन्त्रणा सहनी पड़ी थी, उसका उचित प्रतिशोध उन्हें मिल गया। वह लछमन पर बड़े प्रसन्न हुए।

कुछ क्षणों पश्चात् रविशङ्कर हवास ठीक करके बोले—इसमें कोई कारण हो गया होगा, अन्यथा ऐसा तो नहीं हो सकता था।

"कदाचित् तबीयत-वबीयत ख़राब हो गई हो।"—ज्योतिशङ्कर बोले।

मेहमान साहब मन में बोले—क्या दोनों की तबीयतें साथ साथ ख़राब हुआ करती हैं?

"कुछ बेवक़्त भी तो हो गया था। हम लोग तो नौ बजे ही खा-पी लेते हैं। ख़ैर! जो हुआ सो हुआ; परन्तु अकारण ऐसा नहीं हो सकता, कुछ कारण अवश्य होगा। मैं इसकी जाँच करूँगा।"

मेहमान साहब हँसी को रोक कर बोले—जाने भी दो, जाँच क्या करोगे? ऐसा हो ही जाता है।

दोनों भाई भीतर पहुँचे। रविशङ्कर ने जाते ही पत्नी से प्रश्न किया—वह मेहमान जो आए हैं, उन्हें भोजन क्यों नहीं दिया गया?

"मेरा जी ज़रा ख़राब था, इसलिए मैंने छोटी से कहला दिया था।"

"परन्तु उसने तो प्रबन्ध नहीं किया।"

"तो इसे मैं क्या कहूँ?"

"बस तुम तो यह कह कर अलग हो गईं, यहाँ आबरू मिट्टी हो गई। उस हरामज़ादे लछमन ने भी तोते की तरह उन्हीं के सामने सब पढ़ दिया। उसे इतनी भी तमीज़ नहीं कि इनके सामने यह बात नहीं कहनी चाहिए। तुम देवरानी-जेठानी की लाग-डाँट में हमारी मिट्टी पलीद होती है। तुम्हारा जी ख़राब था तो छोटी का कर्तव्य था कि उनकी ख़ातिर करती।"

"यह बात समझता ही कौन है! जो इतना ही समझने लगे तो सारा झगड़ा ही न मिट जाय।"

ज्योतिशङ्कर ने भी जाकर छोटी से पूछा—वह मेहमान जो आए हैं उन्हें खाना तक नहीं मिला—बड़े अफ़सोस की बात है।

छोटी बोली—लछमन ने बड़ी से कहा था, पर उन्होंने कुछ सुना ही नहीं।

"तुमसे भी तो कहा था।"

"बड़ी ने कहलाया था कि छोटी से कहो जाकर। तो मैं किसी की लौंडी-बाँदी तो हूँ नहीं, जो हुकुम बजाऊँ।"

"तो क्या हर्ज था, तुम्हीं प्रबन्ध कर देतीं।"

"हूँ, कर देती। फिर सदा के लिए यही चलन हो जाता। जब कोई मेहमान आता तो वह मुझी पर डाल देतीं। सो मैं ऐसी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हूँ—वह डाल-डाल तो मैं पात-पात।"

ज्योतिशङ्कर कुढ़ कर बोले—वह डाल-डाल तुम पात-पात, हम रहे अधर में, सो हमारी ख़राबी है। आज जड़ से कट गई।

इसी प्रकार दोनों भाई रो-झींक कर बैठ रहे; परन्तु देवरानी-जेठानी के कानों पर जूँ तक न रेंगी। उन्होंने यही समझा कि जो कुछ उन्होंने किया वही उचित था।

३

देवरानी-जेठानी के मारे दोनों भाइयों की नाक में दम था। कोई दिन ऐसा न जाता था जिस दिन दोनों में किसी न किसी बात पर कुछ झगड़ा अथवा कहा-सुनी न होती हो। यद्यपि दोनों की रसोई पृथक्-पृथक् बनती थी, तथापि इसमें भी कभी-कभी कोई न कोई बात ऐसी निकल आती थी कि कहा-सुनी हो ही जाती थी।

एक दिन कलावती बैठी खा रही थी। रामू भी खेलता हुआ वहाँ जा पहुँचा और बोला—"हम भी खाएँगे।" बड़ी बहू ने उसे भी थोड़ा सा दे दिया। रामू खाने लगा। हठात् साग के साथ उसके मुँह में हरी मिर्च का एक टुकड़ा चला गया। उसने एक चीख़ मारी और उठ कर भागा। उसकी माता ने जो उसकी चीत्कार सुनी तो दौड़ी और पूछा—क्या हुआ?

रामू बोला—'ताई ने मिर्चा खिला दिया।" बस उसका इतना कहना था कि छोटी बहू आग हो गई। बोली—वाह भई वाह, लड़के के आगे मिर्चें ही मिर्चें भर कर रख दीं। इतनी बड़ी होगईं, सहूर न आया। कि बच्चों को बिना मिर्चों की चीज़ दी जाती है। इनका बस चले तो जहर खिला दें—देखे जली जाती हैं। और तू वहाँ मरने क्यों जाता है? क्या तेरे घर में खाने को नहीं, जो वहाँ माँगने गया? भिखमङ्गा कहीं का।

जेठानी बोली—भिखमङ्गों के भिखमङ्गे ही होते हैं। हमारी कलावती भी कभी तुम्हारे यहाँ जाती है। हमारे यहाँ जैसा था वैसा दे दिया—तुम उसे जहर कहो चाहे बिस कहो।

इसी बात को लेकर दोनों में कुछ देर कहा-सुनी होती रही।

दोनों ने अपने-अपने पति से इस बात की शिकायत की। बड़ी ने कहा—छोटी बहू मुझे किसी दिन किसी झंझट में फँसा देगी। लड़के के मुँह में मिर्च चली गई, उस पर कहती है कि किसी दिन जहर दे देंगी—यह बात तो देखो। एक ही छत्तीसी है, इसके काटे का मन्त्र नहीं है।

रविशङ्कर बोले—बकने दो, तुम ऐसी बातों पर ध्यान न दिया करो।

"ध्यान कैसे न दूँ। तुम तो दूकान पर रहते हो। उनका लड़का ठहरा लाड़ला। किसी दिन कोई बात हो गई तो तुम भी मुझी को दोष दोगे।"

"बात कैसे हो जायगी—कोई मज़ाक़ है।"

"अभी उस दिन की बात है—कलावती और रामू दोनों खेल रहे थे। रामू ने कलावती के ईंट फेंक मारी, भाग्य की बात वह कलावती के लगी नहीं। कलावती

ने एक थप्पड़ मार दिया। इस पर छोटी ने सैकड़ों बातें कहीं। कोई कहाँ तक सहे—कलेजा पक गया।"

रविशङ्कर ने कहा—बच्चों की लड़ाई में तुम मत बोला करो।

"मैं न बोलूँ; पर वह तो महनामथ मचाने लगती है, तब मेरे से भी चुप नहीं रहा जाता। उनका लड़का बड़ा दुलारा है—हमारी लड़की फालतू है।"

"इसमें ज्योतिशङ्कर का दोष है, यदि वह उसे दाबे रहे तो उसका ऐसा व्यवहार करने का साहस न हो; पर वह तो पूरा जोरू का ग़ुलाम है—चूँ तक नहीं करता।"

इधर इन दोनों में यह वार्त्तालाप हो रहा था, उधर छोटी बहू पति से कह रही थी—जेठानी जी किसी दिन लड़के के प्राण ले लेंगी। कल उसे तमाम मिर्चें ही मिर्चें खिला दीं—लड़का ऐसा बिलबिलाया कि क्या कहूँ।

"तो तुमने उसे जाने क्यों दिया?"

"मैंने देखा कब था। वह नासमझ ठहरा, चला गया। ख़ैर चला गया था तो क्या हुआ। उन्हें ऐसा मुनासिब था?"

"तो उन्होंने जान-बूझ कर मिर्चें थोड़ा ही खिला दी होंगी।"

"जान-बूझ कर नहीं खिलाईं तो वह क्या अपने आप खा गया। खाने को दिया था तो देख लेतीं कि मिर्चें तो नहीं हैं। और एक यही बात थोड़ी है। लड़की से लड़के को पिटवाया करती हैं। उस दिन कलावती ने रामू को धुन के धर दिया। पहले तो चुड़ैल खेलने को बुलाती है फिर मारती है। तो वह क्या मारती है—जेठानी जी उसे सिखाती हैं।"

"तुम भी क्या बातें करती हो, वह ऐसा नहीं कर सकतीं।"

"हाँ, वह तो बड़ी धर्मात्मा हैं। ऐसा नहीं कर सकतीं। कर सकने को तो वह न जाने क्या-क्या कर सकती हैं, पर बस नहीं चलता।"

"बड़े भइया उन पर थोड़ा अङ्कुश रक्खा करें तो वह ठीक रहें; परन्तु वह कुछ बोलते नहीं, इसी से वह और भी मनमानी करती हैं।"

"वह क्या बोलेंगे? वह तो जितना पानी जेठानी जी पिलाती हैं उतना ही पीते हैं। जोरुएँ सबके होती हैं, पर कोई जोरू की इतनी ग़ुलामी नहीं करता जितनी जेठ जी करते हैं।"

"यही तो भइया में थोड़ा ऐब है।"

"यह थोड़ा ऐब है? यह बड़ा भारी ऐब है।"

"ख़ैर, तुम छोटी हो तुम्हें ग़म खाना चाहिए।"

"मैं ग़म न खाऊँ तो रोज़ महाभारत हो; परन्तु कोई कहाँ तक ग़म खावे। हर बात की एक सीमा होती है।"

ज्योतिशङ्कर ने पत्नी को समझा-बुझा कर शान्त किया है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन मणिशङ्कर का पत्र आया कि वह आ रहे हैं—"उनकी बदली हो गई है। उनका मकान साफ़ करा दिया जावे।" मणिशङ्कर की प्रतीक्षा होने लगी। उनके स्वागत के उत्साह में देवरानी-जेठानी में अस्थायी सन्धि हो गई। निश्चित समय पर मणिशङ्कर अपने बाल-बच्चों सहित आ गए और उन्होंने मकान के एक भाग में डेरा जमाया।

४

मणिशङ्कर के आने के कुछ दिनों पश्चात् एक दिन रविशङ्कर तथा ज्योतिशङ्कर की पत्नी में पुनः वाक्-युद्ध हुआ। बड़ी बहू को (मणिशङ्कर की पत्नी को, रविशङ्कर की पत्नी अब मँझली बहू कहलाने लगीं) यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। बड़ी बहू एक तो स्वभाव की सज्जन थीं, दूसरे सुशिक्षित थीं, तीसरे वह सदा अकेली रही थीं, इस कारण किसी से लड़ने-झगड़ने का उनका अभ्यास नहीं था। अतएव उनको आश्चर्य होना स्वाभाविक बात थी। उन्होंने दोनों को समझा-बुझाकर शान्त किया।

रविशङ्कर से उन्होंने कहा—आज दोनों बहुएँ लड़ मरीं—मैं तो देख कर हैरान रह गई। इन्होंने तो भठियारियों को भी मात कर दिया। तुम इन्हें मना नहीं करते?

"मैं तो मँझली को बहुत दाबे रहता हूँ; परन्तु छोटी का स्वभाव ही लड़ाका है—आख़िर मँझली भी आदमी ही है—पत्थर नहीं, उसे भी क्रोध आ जाता है।"

ज्योतिशङ्कर से भी उन्होंने यही बात कही। रविशङ्कर की तरह उन्होंने भी कहा—"क्या कहूँ भाभी, मैं तो छोटी को समझा-बुझा कर क़ाबू में किए रहता हूँ; परन्तु भइया ने मँझली को इतना सिर चढ़ा रक्खा है

कि वह किसी को कुछ समझती ही नहीं—आख़िर छोटी भी आदमी ही है—कहाँ तक सहन करे।" बड़ी बहू ने मणिशङ्कर से सारा वृत्तान्त कहा। वह बोले—लड़ने-कटने दो, तुम्हें क्या करना है। वे जानें उनका काम—तुम इस झगड़े में मत पड़ो।

"एक घर में रह कर मुझसे तो यह नहीं देखा जायगा।"

"तो तुम कर ही क्या सकती हो?"

"मुझसे जो होगा वह तो करूँगी ही।"

"क्या करोगी?"

"इनकी लड़ाई का अन्त करूँगी।"

"कर चुकीं, अपने को अलग रक्खो, यही ग़नीमत है। मुझे तो यह भय है कि कहीं तुम भी उन्हीं जैसी न हो जाओ।"

"कौन मैं?"

"हाँ, तुम।"

"अजी राम भजो!"

* * *

एक दिन जब पुनः छोटी तथा मँझली बहू में झगड़ा हुआ तो बड़ी बहू ने दोनों को बुला कर झगड़े के कारण की जाँच-पड़ताल की। जाँच करने से उन्हें पता लगा कि इसमें दोष मँझली बहू का है। उन्होंने मँझली से कहा—बहू, दोष तुम्हारा है, इसलिए तुम छोटी से क्षमा माँगो।

मँझली तुनक कर बोली—मैं क्यों क्षमा माँगू—मुझे क्या गरज है।"

"तुम्हें क्षमा माँगनी पड़ेगी।"

"मैं कदापि क्षमा नहीं माँगूँगी। और तुम्हें पञ्च बनाया किसने है। मान न मान मैं तेरा मेहमान।"

"तो क्या मुझसे भी लड़ोगी?"

"मैं न किसी से लड़ूँ न भिड़ूँ, पर साथ ही किसी की दबैल भी नहीं हूँ—कोई एक कहेगा तो दस कहूँगी।"

"अच्छी बात है, ख़ूब कहो।"

दूसरे दिन बड़ी बहू ने अड़ोस-पड़ोस तथा नाते-रिश्ते की स्त्रियों को निमन्त्रण भेज कर बुलवाया। सबके जमा हो जाने पर उन्होंने कहना आरम्भ किया—बहिनो, आज मैं तुम्हारे सम्मुख एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न उपस्थित करती हूँ। वह प्रश्न यह है कि हम लोगों में कदाचित् ही कोई घर ऐसा हो जिसमें देवरानियों-जेठानियों तथा सास-बहुओं में वैमनस्य न रहता हो। इस वैमनस्य का परिणाम यह होता है कि घर में फूट हो जाती है और पारिवारिक सुख नष्ट हो जाता है। स्त्रियों के लड़ाई-झगड़ों के कारण भाई से भाई और बाप से बेटा अलग हो जाता है। यह कितने दुख की बात है। इस कार्य के लिए हम स्त्रियों की जाति की जाति बदनाम है। स्त्री-जाति पर से इस कलङ्क को हटाना प्रत्येक स्त्री का कर्त्तव्य है। यदि आप सब सहमत हों तो मैं आपके सम्मुख एक प्रस्ताव रक्खूँ, जिसके अनुसार कार्य करने से हम लोगों का यह रोग दूर हो सकता है। बोलिए, आप सब इसके लिए तैयार हैं?

सब स्त्रियों ने एक स्वर से कहा—हाँ, तैयार हैं।

"अच्छा तो सुनिए—मेरा प्रस्ताव यह है कि हम सब मिल कर एक ऐसा सङ्घ, जिसे गुट्ट कह सकते हैं—बनावें, जो कलहकारिणी स्त्रियों का सुधार करे। वह सुधार इस प्रकार हो सकता है कि अपने जातीय समुदाय, नाते-रिश्तेदार तथा इष्ट-मित्रों में जो कलहकारिणी स्त्री हो उसका बायकाट किया जावे। कोई उसे किसी अवसर पर भी अपने यहाँ निमन्त्रित न करे और न उसका निमन्त्रण स्वीकार करे।"

"परन्तु इसका पता कैसे चलेगा कि अमुक स्त्री कलहकारिणी है?"—एक पढ़ी-लिखी स्त्री ने प्रश्न किया।

"इसका पता घर वालों से चलेगा। जब लोगों को हमारे सङ्घ और उसके उद्देशों का यथेष्ट ज्ञान हो जायगा तो वे स्वयम् सङ्घ को सूचना देंगे। परन्तु सङ्घ का यह कर्त्तव्य होगा कि पहले प्रकट या गुप्त रूप से, जैसा उचित समझा जावे, इस बात की जाँच कर ले कि जिस पर दोषारोपण किया जाता है वह सत्य ही दोषी है या नहीं। केवल घर वालों के कथन पर निर्भर न रहे।"

सब स्त्रियों ने कहा—हाँ यह ठीक है। ऐसा अवश्य होना चाहिए।

"मुझे आप लोगों के सम्मुख यह प्रस्ताव रखने की आवश्यकता क्यों पड़ी—यह भी मैं बताए देती हूँ।"

मँझली बहू चुपचाप यह सब लीला देख रही थी। बड़ी बहू के उपरोक्त वाक्य कहते ही वह समझ गई कि बड़ी बहू मेरी बात कहेगी। अतएव वह शीघ्रतापूर्वक

उठी और बड़ी बहू के पास आकर बोली—ज़रा मेरी एक बात सुन लो।

बड़ी बहू समझ गई कि मँझली बहू के होश ठिकाने आए हैं। वह बोली—ज़रा ठहर जाओ।

"नहीं, मेरी बात सुन लो, फिर कुछ कहना।"

बड़ी बहू तो यह चाहती ही थीं। वह अलग गईं। मँझली बहू ने हाथ जोड़ कर कहा—बहू, मेरा नाम मत लेना, मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़ती हूँ। अब जैसा तुम कहोगी, वैसा ही करूँगी।

"छोटी बहू से क्षमा माँगने को तैयार हो?"

"तुम जिससे कहो उससे क्षमा माँग लूँगी; पर मुझे बदनाम न करो।"

"अच्छी बात है"—यह कह कर बड़ी बहू अपने स्थान पर आकर बोलीं—हाँ, तो मैं यह कह रही थी कि मुझे यह प्रस्ताव रखने की आवश्यकता क्यों पड़ी। मुझे इसलिए आवश्यकता पड़ी कि मैं ऐसे अनेक घरों की दशा जानती हूँ जिनमें कलहकारिणी स्त्रियाँ विद्यमान हैं और उनके कारण उनका घर नरक-तुल्य हो रहा है। आप में से भी अनेक ऐसी स्त्रियों को जानती होंगी।

इस पर अनेक स्त्रियों ने कहा—हाँ हम जानती हैं।

"तो पहले उन्हीं का बायकाट आरम्भ किया जावे।"

"परन्तु सङ्घ का सञ्चालन किस प्रकार होगा?"—एक स्त्री ने प्रश्न किया।

"इसके लिए चार-पाँच पढ़ी-लिखी स्त्रियों की एक कमेटी बना ली जावे। उनमें से एक या दो सङ्घ की मन्त्रिणी बना दी जावें। मन्त्रिणियों के पास जब किसी स्त्री की शिकायत पहुँचे तो वह कमेटी बुला कर उसके सम्मुख उस शिकायत को पेश करें। कमेटी उसकी जाँच करे और भाई-बिरादरी की सब स्त्रियों को जमा करके उस स्त्री के बायकाट का प्रस्ताव पेश करे। यदि कमेटी अपने प्रमाणों से सबको सन्तुष्ट कर दे तो बायकाट कर दिया जावे।" सब स्त्रियों ने कहा ठीक है, हमें स्वीकार है।

* * *

बड़ी बहू के उद्योग से छोटी बहू तथा मँझली बहू का लड़ाई-झगड़ा सदैव के लिए समाप्त हो गया। अब दोनों में परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार होता है। और बड़ी बहू ने जो सङ्घ बनाया है, उसके कारण अनेक घरों की स्त्रियों का सुधार होता जा रहा है।

घूँघट

[रचयिता—श्री० रामचन्द्र जी शुक्ल "सरस"]

(१)

कैधौं काम-कर ने अनूप-रूप-सेज पर,
सुरति विहार हित डारी है मसहरी।
राखन कौ कैधौं रस-सदन-बदन शुचि,
चित-चोर-चींटन तें डारो पट जहरी॥
कैधौं श्यामा-सन्ध्या पै गोधूली राशि गहरी है,
अम्बर अनूप छबि-छाया-छटा छहरी।
सुकवि "सरस" कैधौं शिव-शीश शशिकला,
पै परति पाप-मल-हारी गङ्ग लहरी॥

(२)

कैधौं रूप-रतन पै पतन सौ लहरात,
रस रतनाकर तरङ्ग अटपट है।
कैधौं काम कला कौतुकी के नैन-बाजीगर,
डार्यो जग-जन-दीठि सामने कपट है॥
कैधौं प्रीति प्रकृति प्रिया सौं राग-रजपूर्ण,
लम्पट-पवन रह्यो ललकि लपट है।
सुकवि "सरस" कैधौं आतमा पै छायो भ्रम,
कैधौं ललना की लाज घूँघट कौ पट है॥
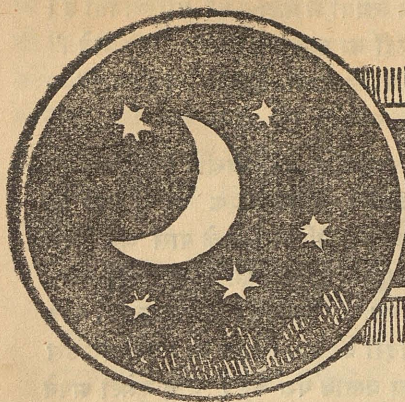
हिन्दू-धर्म और तलाक़

गत जुलाई मास के 'चाँद' में पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्री ने 'भारतवर्ष और तलाक़' शीर्षक देकर एक लेख द्वारा भारतवर्ष के लिए तलाक़ की उपयोगिता बतलाते हुए बड़े ही ज़ोरदार शब्दों में उसका समर्थन किया है। तलाक़ की उपयोगिता और अनुपयोगिता की जाँच के लिए पण्डित जी ने तर्क और विवाद को ग़लत तरीक़ा बतला कर इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न के हल करने का दूसरा तरीक़ा बतलाने का यत्न किया है। पर हमें खेद है कि जानते अथवा अजानते पण्डित जी भी उसी तर्क के इन्द्र-जाल में फँस गए हैं और शान्त विचार द्वारा जो विवेचन इस महत्वपूर्ण विषय का होना चाहिए था, उससे कोसों दूर चले गए हैं। इस लेख में हम पण्डित जी का तथा भारतीय शिक्षित-समाज का ध्यान उन बातों की ओर आकर्षित करने का यत्न करेंगे, जिन पर विचार करना तथा महत्वपूर्ण तलाक़ के प्रश्न को हल करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

पहली बात जो इस सम्बन्ध में विचारणीय है—और जो सबसे महत्वपूर्ण है—वह है विवाह की धार्मिक महत्ता। अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश का वैवाहिक आदर्श बहुत ही ऊँचा है, क्योंकि वह एक धार्मिक संस्कार और बन्धन माना जाता है और भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का यही एक कारण है। रोम-साम्राज्य की यशोकीर्त्ति भारतीय साम्राज्य से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी थी, पर उसकी संस्कृति की छाप स्थायी नहीं रह सकी। रोम साम्राज्य के पतन के साथ ही साथ उसका नामोनिशान तक मिट गया। क्यों? वैवाहिक आदर्श और रक्त की पवित्रता की ओर उनका ध्यान नहीं था। विवाह को उन्होंने सुख और लिप्सा की एक सामग्री मान ली थी। भारतीयों का वह प्राचीन आदर्श आज भी उनमें वर्तमान है और सारे गार्हस्थ्य-जीवन की कुञ्जी है। वही आदर्श हमें सिखाता है कि पत्नी, पति की अर्द्धांङ्गिनी है; बिना पत्नी के उसकी संसार-यात्रा सम्पन्न हो ही नहीं सकती। और इस यात्रा के लिए पति-पत्नी रूप जो रथ है उसका एक पहिया ही ग़ायब हो जायगा। अर्द्धाङ्गिनी के पद पर विराजमान पत्नी पति के हर कामों में छाया की भाँति रहना अपना कर्तव्य समझती है। प्रत्येक अवस्था में पति की सेवा करना वह अपना परम धर्म समझती है। कैसा भी पति क्यों न हो, उसकी तन-मन से उपासना करना ही भारतीय रमणी का आदर्श है। पति कोढ़ी है, रोगी है, अपाहिज है, असमर्थ है—पर है पति-देवता। एक भारतीय रमणी अपने पति को अपङ्ग, अपाहिज और असमर्थ के रूप में नहीं देखती, बल्कि पतिदेव के रूप में देखती है। ये ही आदर्श और अन्तरङ्ग भाव इस गिरी दशा में भी इस देश के गार्हस्थ्य जीवन को इतना सुखमय बनाए हुए हैं कि अन्य देश वाले इसका स्वप्न तक नहीं देख सकते। जिस देश में तलाक़ की प्रथा प्रचलित है, उस देश के गार्हस्थ्य इतिहास का अध्ययन कीजिए। कितना विषम है, कितना दुखमय है। पतिदेव यदि काउन्सिल-भवन में गए हैं तो पत्नीदेवी किसी दोस्त के साथ पार्क की सैर को

गई हैं। पतिदेव थके-माँदे घर आते हैं तो उन्हें अपना हृदय शीतल करना पड़ता है दाई के हाथों लाए हुए जल भरे ग्लास से और उसकी मीठी बातों से। और यदि पतिदेव इसमें हस्तक्षेप करना चाहते हैं, तो दूसरे ही दिन पत्नीदेवी की ओर से अदालत में दरख़ास्त पड़ती है—"He is a bore to me in my private life therefore I want to sever my connection with him."—अर्थात् "मेरी ख़ानगी बातों में ये बराबर दख़ल दिया करते हैं, इसलिए मैं इन्हें तलाक़ देना चाहती हूँ!" गार्हस्थ्य जीवन में यदि कहीं सुख और शान्ति का प्रकाश है तो वह नारी-हृदय में। यदि किसी भी घर में उसका आभास नहीं मिल सका तो फिर उस बन्धन में जाने की आवश्यकता? तब तो हमारे एक माननीय प्रोफ़ेसर के यही शब्द चरितार्थ होते हैं— "What is the good of keeping a cow, when a man gets fresh milk everyday."—अर्थात् "यदि बाज़ार से प्रतिदिन ताज़ा दूध मिल सकता तो गाय पालने का व्यर्थ झंझट ही क्यों उठाया जाय?"

"दीर्घ जीवन के लिए विवाह आवश्यक है" शीर्षक लेख में 'युवक' के छठें अङ्क में लिखते हुए मित्रवर श्री० रमेशप्रसाद जी लिखते हैं—"सारा दिन काम के झंझटों में बिता कर आप थके-माँदे शाम को घर आते हैं। उस समय यदि आपका स्वागत एक हास्यमयी रमणी करती है, तो क्या आपकी सारी थकान दूर नहीं हो जाती? आपके पहुँचते ही आपका जूता वह खोलती है, पङ्खा वह झलती है, ठण्ढा शर्बत वह पिलाती है। क्या ये आयुवर्द्धन के लिए टॉनिक नहीं हैं? दफ़्तरों में काम करने वालों के जीवन पर एक दृष्टि डालिए। किसी ग़लती के लिए साहब ने आपको झिड़कियाँ सुनाई हैं। आपके मन में बड़ी ग्लानि हुई है। आप एक ओर तो विचार रहे हैं नौकरी छोड़ दूँ, दूसरी ओर परिवार वालों की चिन्ता है। इसी अवस्था में आप घर पहुँचे। स्त्री आपके मन की बात ताड़ गई। उसने कोई ऐसी बात कह दी जिसे सुन कर आप हँस पड़े और सारा दुख भूल गए!" यह लेखक की कपोल कल्पना नहीं है, ध्रुव सत्य है और घर-घर में यह रोज़ घटता है। क्या उन देशों में इसकी कल्पना तक की जा सकती है, जहाँ तलाक़ की प्रथा प्रचलित है। वहाँ तो पत्नी की आज्ञा बिना पतिदेव उनके प्राइवेट चेम्बर (निजी कमरे) में प्रवेश करने तक का साहस नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करना पत्नी को तलाक़ के लिए तैयार करना है।

अब तलाक़ के जो मुक़दमात होते हैं, ज़रा उनका इतिहास उठा कर पढ़िए। क्या पाते हैं? पत्नी दरख़्वास्त करती है—"हमारा पति अयोग्य है। पुंसत्वहीन है। हमारी वासनाओं की तृप्ति वह नहीं कर सकता, इसलिए हम तलाक़ चाहते हैं।" दूसरी स्त्री कहती है—"हमारा पति हमें आराम से नहीं रख सकता। वह हमें रोटी-कपड़ा देने में असमर्थ है, इसलिए हम तलाक़ चाहते हैं।" विचार की बात है कि पति अपनी नामर्दगी और मर्दानगी की परीक्षा अदालतों में देता फिरे। और चूँकि मर्द अयोग्य है और अपनी पत्नी की वासना को पूर्णतया तृप्त नहीं कर सकता, इसलिए वह त्यागे जाने योग्य है। गोया विवाह का एकमात्र अर्थ है वासनाओं की तृप्ति। पति ने पत्नी को इसलिए ग्रहण किया था कि वह उसकी वासना को आजीवन तृप्त किया करे और जिस दिन वह इसमें अपनी असमर्थता दिखलावेगा उसी दिन पत्नी को अधिकार होगा कि वह पतिदेव का त्याग करके कहीं दूसरे का आश्रय ले। कितना वीभत्स है! अब दूसरे पहलू पर विचार कीजिए। हमने आरम्भ में ही कहा है कि हिन्दू-जाति में विवाह एक धार्मिक बन्धन है। स्त्री और पुरुष दोनों अग्नि की साक्षी देकर वैवाहिक बन्धन में परस्पर बँधते हैं। वहीं प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से लेकर यावज्जीवन हम-तुम दोनों, सुख और दुख के चिर-सङ्गी हुए! एक दूसरे की सहायता करते हम लोग संसार-यात्रा में आगे बढ़ेंगे। पर आगे चल कर जब पति दरिद्र हो जाता है तो वही 'सुख-दुख की चिर-सङ्गिनी' उससे सम्बन्ध-विच्छेद चाहती है। क्योंकि अब पति उसका भरण-पोषण करने में असमर्थ है। क्या गार्हस्थ्य जीवन का इससे भी नङ्गा कोई दूसरा दृश्य हो सकता है? अब आत्म-हत्याओं की संख्या पर दृष्टि डालिए। तलाक़ की प्रथा के कारण होने वाली आत्म-हत्याओं की कहानी समाचार-पत्रों में पढ़ कर हृदय विदीर्ण हो जाता है। कितने अभागे इस प्रचलित प्रथा के कारण अपने जीवन से ही हाथ धो डालते हैं। हमें खेद है कि हमारे पास कोई निश्चित तालिका इस विषय की मौजूद नहीं है, नहीं

तो हम उसे देकर पाठकों की जानकारी और भी बढ़ाने का यत्न करते !

इस सम्बन्ध में स्वर्गीय लाला लाजपतराय लिखित "अनहैपी इण्डिया" से दो अवतरण देकर हम इस लेख के दूसरे प्रसङ्ग पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे। जिन देशों में तलाक़ की प्रथा प्रचलित है, उनमें होने वाले व्यभिचार और तज्जनित भ्रूण-हत्याओं पर प्रकाश डालते हुए लाला जी ने प्रसिद्ध यूरोपीय लेखकों का मत इस प्रकार उद्धृत किया है—"हमारी (लन्दन की) सार्वजनिक सड़कों पर होने वाले पापाचार में महान् परिवर्तन हो गया है। पतिता स्त्रियों की एक नवीन जाति उत्पन्न हो गई है। वे दफ़्तरों और दूकानों से शिक्षित होकर निकलती हैं। वे युवती होती हैं। × × × वे फ़ैशन, सदाचार पर आक्रमण करने वाली पोशाक, सुनहले विश्राम-गृह, नाट्यशाला, रात्रि के विनोद-भवन का जीवन चाहती हैं।

"× × × उनसे पूछिए कि तुम क्या चाहती हो तो वे तुरन्त उत्तर देंगी—दिल बहलाने का समय! बस, इतना ही और कुछ नहीं। वे जीवन का आनन्द लेना चाहती हैं × × इसीलिए पहले वे अपनी लज्जा बेचती हैं और उसके पश्चात् अपना सदाचार। यही मूल्य है जिसे देकर वे अपने "दिल बहलाव का समय" ख़रीदती हैं।

"इन बातों का अन्त यहीं नहीं हो जाता। इस प्रकार की यह कुव्यवस्था बड़े-बड़े भयङ्कर पाप करवाती है और भयङ्कर इन्द्रिय-रोगों का प्रसार करती है। यूरोपीय समाज के समस्त वर्गों में गर्भावरोध के समस्त उपायों का ख़ूब प्रचार होने पर भी वर्तमान समय में गर्भपातों की संख्या बढ़ती ही चली जा रही है। पेरिस में होने वाले गर्भपातों के सम्बन्ध में डॉक्टर रॉबर्ट मोनिन कहते हैं—'प्रति वर्ष गिराए जाने वाले गर्भों की संख्या हम १,००,००० अनुमान कर सकते हैं। परन्तु हमें यह दृढ़ निश्चय है कि यह संख्या वास्तविक संख्या से बहुत ही कम है।' प्रोफ़ेसर बोर्डिन का अनुमान है कि समस्त देश (फ़्रान्स) में प्रतिदिन ५०० गर्भ गिराए जाते हैं। अर्थात् एक वर्ष में १,८२,०००।' × × × यदि मुझे (लाला जी को) स्वयं अपनी सम्मति भी इसमें शामिल करनी पड़े तो मैं कहूँगा कि यह संख्या लगभग २,७५,००० और ३,२५,००० के बीच में है। ये अङ्क उन अङ्कों से मिलते हैं, जिन पर फ़्रान्स की प्रसव-दात्री संस्था सन् १९०० में पहुँची थी।" कहना नहीं होगा कि इन समस्त बुराइयों का एकमात्र कारण है तलाक़ की प्रथा और उसके कारण स्त्रियों के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले स्वच्छन्दता और उच्छृङ्खलता के भाव!

दूसरा प्रश्न रक्त की पवित्रता का है। हमने ऊपर लिखा है कि भारतीय संस्कृति की उत्कर्षता का यही एक प्रधान रहस्य है और जिस दिन भारतवर्ष रक्त की पवित्रता के महान् आदर्श को भूल जायगा, रोम साम्राज्य की तरह उसका नामोनिशान मिट जायगा और इस तलाक़ की प्रथा को क़ानून का रूप देने में तथा इसे भारतीय समाज में प्रचलित कराने में सबसे बड़ा भय इसी बात का है। आख़िर स्त्रियाँ तलाक़ किस लिए देंगी? अपने वर्तमान पति से छुटकारा पाकर दूसरा पति चुनने के लिए! क्या यह व्यभिचार नहीं है? क्या इससे समाज में भारी उथल-पुथल नहीं मच जायगी? क्या समाज का सुख और उसकी शान्ति एक साथ ही नहीं लुप्त हो जायँगे? समाज में घोर उच्छृङ्खलता नहीं फैल जायगी? क्या कामुकों और इन्द्रिय-लोलुपों की नहीं बन आवेगी? ज़रा भारतीय स्त्रियों की दशा पर विचार कीजिए। वे कैसी भोली-भाली और सीधी-सादी होती हैं। बहकावे में कितनी जल्दी आ जाती हैं और दुष्टों के प्रलोभनों की शिकार किस प्रकार बन जाती हैं। किसी भी दिन समाचार पत्रों के पन्ने ख़ाली नहीं मिलते, जिस दिन एक-दो संवाद स्त्रियों के भगाए जाने के न रहते हों। बिना किसी क़ानून के होते तो यह दशा है, जिस दिन तलाक़ का क़ानून जारी हो जायगा, क्या होगा? क्षणिक आवेश में आकर स्त्रियाँ अपने जीवन को ही नष्ट कर देंगी! फिर तो यूरोपीय समाज की तरह हमें भी वही होटलों का जीवन व्यतीत करना पड़ेगा, क्योंकि हमें निश्चय ही नहीं रहेगा कि आज जो हमारी पत्नी है, कल हमारी रहेगी कि नहीं!

शास्त्री जी ने तलाक़ की प्रथा का समर्थन केवल इसलिए किया है कि प्रचलित समाज में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं है और उन्हें हर तरह से सताया जाता है। इस प्रकार के उत्पीड़नों का शिकार होने वाली स्त्रियों की रक्षा का कोई भी समुचित उपाय नहीं है और समाज अपनी सङ्कुचित-हृदयता तथा स्वार्थपरता के कारण उनकी रक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध भी नहीं

कर रहा है। साधारण दृष्टि से देखने में शास्त्री जी के कारण बहुत ही उपयुक्त और सङ्गीन मालूम होते हैं, पर उन पर विचार करने की आवश्यकता है !

पहली बात है भारतीय समाज का सङ्गठन। भारतीय समाज जिस प्रकार सङ्गठित है, उसे तीन श्रेणी में विभक्त कर सकते हैं। (१) कुलीन वर्ग (२) मध्यम श्रेणी के लोग (३) मज़ूरपेशा। शास्त्री जी के सभी तर्कों पर विचार करते समय इस वर्गीकरण को सामने रखना नितान्त आवश्यक है ! यहीं पर हम इतना और लिख देना चाहते हैं कि बुराइयाँ हर जगह पाई जाती हैं। पर विचार उनकी प्रधानता पर ही होता है, गौण का विचार छोड़ दिया जाता है। तलाक़ के पक्ष में शास्त्री जी का पहला आक्षेप स्त्रियों के ऊपर पतियों द्वारा किए गए व्यभिचार-जनित अत्याचार हैं। व्यभिचार की जननी सम्पत्ति है। बिना रुपयों के व्यभिचार नहीं बढ़ सकता, इसलिए यदि व्यभिचार-जनित उत्पीड़न का कहीं लाञ्छन लगाया जा सकता है तो वह कुलीन वर्ग है। अब देखना यह है कि कुलीन वर्ग की संख्या इस देश में कितनी है। इसके लिए हमें अधिक प्रयास की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पठित व्यक्ति इस तथ्य से अवगत है। दूसरा आक्षेप शास्त्री जी का मार-पीट तथा उत्पीड़न है। यह सभ्य कहलाने वाले शिक्षित तथा अशिक्षित ऊँच जातियों में नहीं पाया जा सकता।* इसकी झलक छोटी जातियों में ही देखने को मिलती है, जिन्हें हमने मज़ूर वर्ग में लिखा है और उनके यहाँ तो परम्परागत तलाक़ की प्रथा मौजूद है। उनके यहाँ तो कोई वैवाहिक दृढ़ बन्धन है ही नहीं। उनके यहाँ तो पञ्चायत की आज्ञा की शृङ्खला इतनी कड़ी है कि कड़ा से कड़ा क़ानून भी उसके सामने कुछ नहीं है। फिर भला थोड़े से लोगों के लाभ के लिए हम क्यों ऐसे शस्त्र का प्रचार करें जो सर्व-साधारण के लिए घातक हो। रोग को दूर करने के लिए हम जिस दवा का प्रयोग करने जा रहे हैं, उसका असर शरीर के अन्य अवयवों पर कैसा पड़ेगा, यह तो देख लेना आवश्यक है। यदि हम वर्तमान रोग को दूर करने के प्रयास में कोई ऐसी औषधि पी लेते हैं जिसका ज़हर समग्र शरीर को ही निकम्मा बना देता है, तब तो उस "राज रोग" को रहने देना ही श्रेयस्कर है।

बिना किसी बन्धन के समाज क्षण भर भी नहीं ठहर सकता। बन्धनहीन समाज में उच्छृङ्खलता और अत्याचार फैलते देर नहीं लगती। समाज की बागडोर उसी के हाथ में दी जाती है जो बलिष्ठ होता है और वही उसका समीचीन रूप से सञ्चालन कर सकता है। स्त्री-समाज की अपेक्षा पुरुष-समाज में यह गुण विशेष रूप से व्यक्त है। इसलिए समाज के शासन की बागडोर सदा पुरुष-समाज के हाथ में रहेगी। शासक क़ानूनों को अपने लिए ज़रूर कुछ नरमी के साथ प्रयोग में लाता है, पर इसके मानी यह नहीं हैं कि वह समाज के उन नियमों से सदा और सर्वदा बरी है। उन क़ानूनों का बन्धेज जैसा स्त्री-समाज के लिए है, उसी प्रकार पुरुष-समाज के लिए है। यदि पुरुष-समाज उच्छृङ्खल हो

श्रीमती वासन्ती देवी

आप लेफ़्टिनेण्ट-कर्नल डी० जी० राय, आई० एम० एस० की धर्मपत्नी हैं और हाल ही में मंगलोर में महिला-सभा की प्रेज़िडेण्ट निर्वाचित की गई हैं।

* नाक के एक लौंग खो जाने के अपराध में बिहार के एक डिप्टी कलक्टर महोदय का अपनी स्त्री को गर्म लोहे की सलाख़ों से पीटना, पुरानी घटना नहीं है।

—सं० 'चाँद'

गया है तो उसे क़ानून के दायरे में लाकर बाँधना ही समाज के हितचिन्तकों का काम होना चाहिए, न कि स्त्री-समाज को भी स्वतन्त्र करने का मन्त्र देकर समाज में धाँधली का जन्म देना और उसकी शृङ्खला को तोड़ कर उसे निकम्मा बना देना !

इसमें किसी तरह की बहादुरी नहीं है, समाज-सेवा नहीं है, समाज-सुधार के प्रयास का मूल आधार नहीं

मिस आर० बेगम

आप हैदराबाद (निज़ाम) की सेना के सर्वोच्च मेडिकल ऑफ़िसर डॉ० मुहम्मद अशरफुलहक़ की पुत्री हैं। आप मुसलमानों में पहली स्त्री हैं, जो डॉक्टरी पढ़ने विलायत जा रही हैं। आपकी आयु केवल पन्द्रह वर्ष की है।

है। यह सङ्गठन नहीं, यह तो विगटन है और इस तरह के अध्यवसाय से तो भारतीय समाज के न तो दोष दूर हो सकते हैं और न वह उन्नति के पथ पर अग्रगामी हो सकता है। हमें अनुकरण पर ही अवलम्बित नहीं रहना चाहिए और न उसका अन्ध-पक्षपाती ही होना चाहिए। हमारा काम तो देश, समाज और जाति की वास्तविक अवस्था का अध्ययन कर ; उसकी रीति नीति, चाल-चलन, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा और साथ-साथ मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का अध्ययन कर उसी के अनुरूप योजना करना है और उसी में समाज का वास्तविक कल्याण हो सकता है।

—छविनाथ पाण्डेय, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

['चाँद' में तलाक़ का जो लेख प्रकाशित हुआ था, उसका उद्देश्य स्त्रियों की उस दुर्दशा की ओर समाज के मुखियों का ध्यान खींचना था जो उन्हें नीच स्वभाव के पतियों के कारण उठानी पड़ती है। उसका अभिप्राय यह था कि उस विकट परिस्थिति से स्त्रियों का उद्धार होना ही चाहिए, समाज को इसका कोई उपाय निकालना ही चाहिए, पति की मर्यादा न पालन करने वाले पुरुषों का मनमाना आचरण समाज को रोकना ही चाहिए। इसी सिलसिले में तलाक़ की भी चर्चा की गई थी।

पाण्डेय जी ने अपने लेख में विवाह की पवित्रता बताई है। इन्कार किसको है। परन्तु जीती मक्खी तो नहीं निगली जा सकती, माथे पर जलने वाली आग की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती। लक्ष्मी की घटना अभी ताज़ी है। इस दुख को सहने की शक्ति किस स्त्री में है। कौन साधारण भी बुद्धि रखने वाला पुरुष इस घटना को सुन कर भयभीत और चिन्तित न होगा ? क्या उसको इसी दशा में पड़ी रहने देना चाहिए ? इस तरह के पुरुष क्या पवित्रता को रखना चाहते हैं ? ऐसी दशा में विवाह की पवित्रता क्या रक्षित रह सकती है ?

रहा होगा विवाह धर्मानुकूल किसी ज़माने में ! समाज के बड़े कहलाने वालों ने आज वह मर्यादा तोड़ दी है। विवाह तो कुमारी और कुमार का होता है। विवाह-पद्धति में साफ़ लिखा है कि "कुमाराय कुमारी।" क्या इस शर्त का पालन होता है ? फिर विवाह क्यों धर्मानुकूल बतलाया और समझा जाता है ? सत्तर बरस के काशी के एक पण्डित ने चौथा या पाँचवाँ विवाह अभी किया है। क्या यह धर्म है ? ऐसी बुराइयों को रोकने का कभी प्रयत्न किया गया है ? क्या इसी तरह रक्त की पवित्रता बची रह सकती है ?

आए दिन ऐसी बातें समाज में बहुतायत से हो रही हैं, इन्हें रोकना अभी तक ज़रूरी नहीं समझा गया।

इससे बढ़ कर खेद की बात और क्या हो सकती है ? जब कोई कुछ कहता है तो उसके सामने धर्म का पहाड़ खड़ा कर दिया जाता है। पवित्रता की दुहाई दी जाती है ! यही हमारी परिपाटी है ! शायद यही सोच कर बाबा तुलसीदास जी ने कहा है—"वायस करम भेस मराला।"

पाण्डेय जी को भय है कि तलाक़ की प्रथा प्रचलित होने पर स्त्रियाँ मनमानी करने लगेंगी। इससे पश्चिम के देशों में जो हानियाँ हो रही हैं वे यहाँ भी होने लगेंगी। बात सच्ची है और असम्भव भी नहीं है। पर किया क्या जाय ? घाव के ज़हर से बचने के लिए शरीर कटवाना ही पड़ता है। क्या कम तकलीफ़ होती है ? डॉक्टर किसी को बुलाता नहीं। रोगी ख़ुद जाता है और अपना शरीर काटने के लिए कहता है, ऊपर से कुछ फ़ीस भी देता है। इसका क्या कारण है ?

पाण्डेय जी को उस परिस्थिति में पड़ी स्त्रियों की रक्षा का कोई उपाय बतलाना चाहिए ? पवित्रता का गुण-गान ज़रूरत से ज़्यादा हो चुका है। यह निश्चित है कि समय की रफ़्तार को हमारी इच्छा रोक नहीं सकती। क्योंकि बेरोक-टोक चलने वाली हमारी इच्छा ने ही तो उसे जन्म दिया है। आज समाज के सामने जो विकट स्थिति आ खड़ी हुई है, वह हमारी मनमानी कारवाई की प्रति-क्रिया मात्र है—इस सत्य को सामने रख, विचार प्रारम्भ करना उत्तम होगा।

व्यवहार दूसरी चीज़ है और ऋषियों के उपदेश दूसरी चीज़ ! शास्त्रीय उपदेशों की कड़ाई के साथ पाबन्दी करने वाला भी व्यवहार में उसे उसी रूप में नहीं रख सकता। उपदेश आदर्श है और व्यवहार कठोर-सत्य ! यदि यह बात न होती तो मनुस्मृति रहते हुए हमारे आचरणों में इतने परिवर्त्तन न होते। हमारा कहना सिर्फ़ इतना ही है कि जब पुरुषों ने, परिस्थिति की ताड़ना से हो, या और किसी कारण से हो, अपनी सुविधा के लिए शास्त्रीय नियमों की अवहेलना करके पाप किया है, तब सङ्कट में पड़ी स्त्रियों का उद्धार करके पुण्य भी करें !

पाण्डेय जी के लेख में कोई उत्तर देने योग्य बात नहीं है। अतएव उनके लेख से हमने उद्धरण नहीं दिए। क्योंकि उनकी समझ में स्त्रियाँ पति-सम्बन्ध-विच्छेद व्यभिचार के लिए करती हैं या करेंगी। इस बात पर विचार करना हम सज्जनता के प्रतिकूल समझते हैं। —सं० 'चाँद']

* * *

स्त्रियों के अधिकार

प्रभु ने सम्पूर्ण सृष्टि को स्त्री और पुरुष—इन दो भागों में विभक्त किया है। कोई भी कार्य, जो संसार के प्रवाह को स्थिर रखने के लिए आवश्यक हो, इन दोनों के बिना नहीं हो सकता। पुरुष बिना स्त्री के, और स्त्री बिना पुरुष के निकम्मी है। परमात्मा ने इन दोनों को समानाधिकारों से युक्त उत्पन्न किया है। पर

मिस फुलट

आप कलकत्ते की रहने वाली एक वीर-रमणी हैं। अभी आपने तालाब में डूबते हुए एक छोटे लड़के की जान बचाई है, यद्यपि आपको स्वयम् तैरना नहीं आता।

पुरुषों ने समाज में जैसी सम-विषम अवस्था उत्पन्न कर दी है, उसे देख कर नारियों के हृदय में क्षोभ होता है और वह क्षोभ समाज की हानि का कारण बन रहा है। यह भी अक्षरशः सत्य है कि प्रत्येक प्राणी, चाहे

उच्च जाति का हो अथवा नीच जाति का, उन्नति-मार्ग पर चलने की अभिलाषा रखता है। इसलिए जब पुरुष-समाज को अपनी सब प्रकार की उन्नति करने का पूर्णाधिकार है तो स्त्रियों को इस अधिकार से क्यों वञ्चित रक्खा जावे? प्राचीन-काल में जब वैदिक सभ्यता संसार में प्रचलित थी तो स्त्री और पुरुषों को समानाधिकार थे और उस अवस्था में संसार सुख-धाम था। स्त्री के सुशिक्षिता होने पर ही गृहस्थी में सुख मिल सकता है।
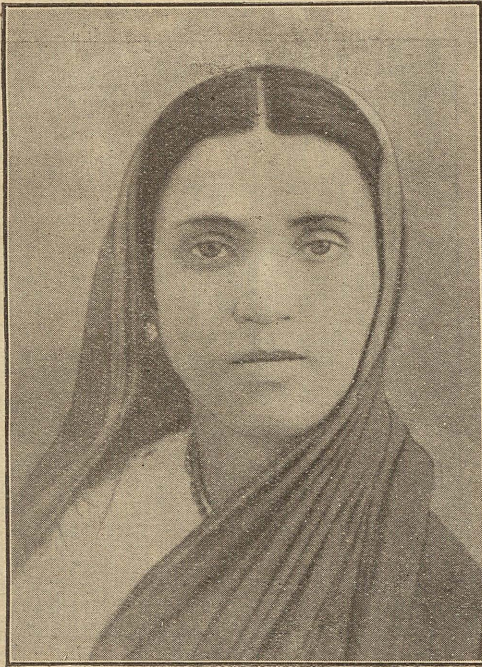
श्रीमती जनबाई रोकड़े

आप बम्बई की एक सुप्रसिद्ध समाज-सेविका हैं। उस प्रान्त की सरकार ने अभी हाल में आपको 'जस्टिस ऑफ़ पीस' की पदवी देकर सम्मानित किया है।

पर आजकल 'Might is right' (जिसकी लाठी उसकी भैंस) का समय है। प्रबल लोगों के अत्याचारों से निर्बल लोगों का जीना कठिन हो रहा है। पुरुषों में भी परस्पर यह विकट समस्या उपस्थित है। उच्च कुलों के लोग छोटी जाति वालों को अपने पास तक फटकने नहीं देते। उच्च जाति वाले छोटी जाति वालों को एक पंक्ति में बिठला कर खिलाना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते हैं।

जैसे उच्च जाति के लोगों ने छोटी जाति के लोगों के अधिकार छीन कर उन्हें तङ्ग कर रक्खा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण पुरुष-समाज ने स्त्री-समाज के अधिकारों को छीन लिया है। प्रत्येक स्थान पर यह बात देखने में आती है कि पुरुष स्त्रियों को कोई भी अधिकार देने को तैयार नहीं। स्त्रियों को सिवा गृह-सम्बन्धी कार्यों के कोई उच्चाधिकार प्राप्त करने का अवसर नहीं दिया जाता। पुरुष-समाज का कहना है कि स्त्रियाँ केवल सन्तानोत्पत्ति और उनकी रक्षा करने के लिए ही उत्पन्न की गई हैं। पर उनका यह कहना घोर असत्य है। स्त्रियाँ सब कुछ कर सकती हैं, जो शक्ति पुरुष रखते हैं उससे कहीं अधिक स्त्रियों में है।

आजकल कुछ लोग लड़कियों को अक्षर-ज्ञान कराना आवश्यक समझने लगे हैं और 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्' का जादू टूट कर सर्वत्र कन्या-पाठशालाएँ खुल गई हैं। इनमें लाखों कन्याएँ शिक्षा प्राप्त कर अपनी योग्यता का परिचय देने लगी हैं। अब कन्याएँ केवल साधारण शिक्षा ही प्राप्त नहीं करतीं, बल्कि उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करके पुरुष-समाज को दिखा रही हैं कि हममें भी कोई शक्ति है।

आजकल भारत में नवयुग का आगमन हो रहा है। अब मौलवी, मौलाना, पण्डितों और ब्राह्मणों के अन्यायपूर्ण अधिकारों का प्रभाव घटता जा रहा है। इसलिए मैं अपनी भारतीय बहिनों से अनुरोध करती हूँ कि वे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए स्वयं अग्रसर होकर अपने भीतर स्फूर्ति तथा जागृति उत्पन्न करें और वैदिक मर्यादानुसार अपने समानाधिकार प्राप्त करें। वैदिक मर्यादा यह है कि स्त्रियाँ मनुष्य-समाज का अर्द्धाङ्ग हैं और उन्हें समाज के प्रत्येक कार्य में भाग लेने का पूर्णाधिकार है। स्त्रियाँ सदाचार की मूर्ति रही हैं और अब भी हैं। स्त्रियों ने विकट से विकट कार्य किए हैं, कर रही हैं और कर सकती हैं। सीता, द्रौपदी, लक्ष्मीबाई, मीराबाई का नाम अद्यावधि जगत-प्रसिद्ध है। आज यदि प्रो० राममूर्ति ने संसार को अपनी वीरता से चकित कर दिया है, तो ताराबाई

भी उनसे कम नहीं हैं। स्त्रियों का धर्म है कि समाज के हितकर कार्यों में भाग लें और अपने अधिकारों को पहचानें। स्त्रियाँ समाज की स्वयं-सेविका बनें, परन्तु पुरुषों को अधिकार न हो कि उन्हें दासी समझ कर उनकी उपेक्षा करें और धिक्कारें। मैं आशा करती हूँ कि भारतीय बहिनों के कानों तक मेरी आवाज़ पहुँचेगी।

—शान्ता, विशारद

* * *

हमारी पुत्री-पाठशालाएँ

भारतवर्ष की जाग्रति तथा स्त्री-शिक्षा की उन्नति का, अथवा यों कहना चाहिए कि स्त्री-शिक्षा की एक अनन्त युग के बाद पुनः नींव पड़ने का फल हमारी पुत्री-पाठशालाएँ हैं। जहाँ-तहाँ देखिए, तङ्ग गलियों में, गन्दी मोरियों के किनारे, मक्खियों के भिनकने की जगह में हमारी सुकुमारी कन्याएँ गन्दे टाट पर बैठ कर तख़्ती पर लिख रही हैं! आजकल छोटे-छोटे शहरों में भी एक-दो ऐसी पाठशालाएँ अवश्य होती हैं। पञ्जाब में तो छोटी से छोटी जगह में भी चार-पाँच का होना साधारण बात है—यथा सनातनधर्मी, आर्य-समाजी, सिक्ख और ईसाई। फिर बड़े शहरों का तो कहना ही क्या? वहाँ तो ये संस्थाएँ पाठशाला के निकृष्ट नाम से नहीं पुकारी जातीं, वरन् लाला धनीराम, पं० दानवीर या अन्य किसी नेता के नाम से गर्ल्स-स्कूल कहलाते हैं। यद्यपि मेरा अभिप्राय इस लेख में इन हाई-स्कूलों की आलोचना करने का नहीं, तथापि मैं यह अवश्य कहूँगी कि उनकी शिक्षा-प्रणाली में भी बहुत-कुछ वे ही त्रुटियाँ पाई जाती हैं, जिनका वर्णन मैंने इस लेख में किया है।

पाठक, शायद आप इन पाठशालाओं की संख्या-वृद्धि होती देख कर इसे सौभाग्य की बात समझते हों। परन्तु सत्य बात तो यह है कि ये पुत्री-पाठशालाएँ भी दुखी भारत का एक अत्यन्त दुखमय तथा करुणोत्पादक दृश्य हैं। बालकों की शिक्षा के लिए केवल विद्वान् और बुद्धिमान् ही नहीं, वरन् अत्यन्त सुशील शिक्षक का होना आवश्यकीय है, जिसको बच्चों से स्वाभाविक प्रेम हो, जो उनके कोमल हृदय तथा चञ्चल मन को भली-भाँति समझता हो, और जो इस प्रकार से शिक्षा दे कि नया पाठ एक नवीन पुस्तक का पृष्ठ न होकर उनके खेल-कूद से सम्बन्ध रखता हो। उदाहरणार्थ छोटे-छोटे स्कूलों में भी सिखाया जाता है कि पृथ्वी से सूर्य ९,३०,००,००० मील पर है। तनिक ध्यान दीजिए, अध्यापक जी, कदाचित् आप भी ९,३०,००,००० मील की कल्पना नहीं कर सकते, फिर बालकों के लिए यह केवल एक अपरिचित भाषा का मन्त्र मात्र हो जाता है, जो अध्यापक जी को प्रसन्न करने के लिए उन्हें कण्ठस्थ करना पड़ता है। इस विषय में एक अमेरिकन पण्डित कहते हैं कि शिक्षक को शिष्य से पूछना चाहिए—"यदि सूर्य से तुम्हें कोई तोप का गोला मारे तो तुम क्या करो?" उत्तर मिलेगा—"रास्ते में से हट जाऊँगा।" अध्यापक फिर कहे—"इसकी कोई आवश्यकता नहीं। तुम अपने कमरे में

श्रीमती दहिगौरी देवी
आप हाल ही में बड़ोदा नगर की म्युनिसिपैलिटी की सदस्या मनोनीत की गई हैं।

शान्ति से जाकर सो जाओ, फिर उठो कोई व्यवसाय सीखो। जब तुम मेरे बराबर हो जाओगे तब तोप का गोला तुम्हारे निकट आवेगा, और तब तुम एक तरफ़ हट जाना। देखो बालको, सूर्य हमारी पृथ्वी से कितनी दूर है! अर्थात् वहाँ से तोप के गोले को पृथ्वी तक

श्रीमती एम० डी० मोडक
आप बेलगाम (बम्बई) के हाल ही में स्थापित लेडीज़ क्लब की प्रेज़िडेण्ट चुनी गई हैं।

आने में १५-२० वर्ष लगेंगे।" यह बालकों के लिए कितनी सरल, परन्तु शिक्षक के लिए कितनी कठिन पाठन-विधि है।

इसके विपरीत हमारे देश में बालक जितने ही छोटे होते हैं, उतना ही उनकी ओर कम ध्यान दिया जाता है। हमारी माताएँ, दादियाँ, नानियाँ इत्यादि अपनी प्रिय सन्तति को हर समय लाड़ से खिलाती हैं; अपने प्रियजनों को गाली निकालने को उत्तेजित करती हैं, यदि वे उनको मारें तो उन पर बलिहारी जाती हैं, और इतने पर भी जब वे असन्तुष्ट होकर ज़मीन पर लेट कर पञ्चम स्वर से सारे मुहल्ले को अपने हठीले स्वभाव का परिचय देते हैं, तब भी माता-पिता उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिए कोई साधन नहीं छोड़ते। इसके विपरीति पश्चिमी विद्वान् बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देते हैं। कुछ विद्वानों का तो कहना है कि मनुष्य का पूर्ण चरित्र बाल्य-काल के पहले सात वर्षों में बनता है। मुलायम ज़मीन पर जो बीज पड़ता है वही फलता है। अतः वे अपने छोटे बालकों की शिक्षा प्रणाली की उन्नति करने में जी-जान से लगे हैं। वे क्षण भर के लिए भी नहीं भूलते कि इन बालक तथा बालिकाओं पर ही देश का भविष्य निर्भर है।

चलिए पाठक, अब हम आपको अपनी पुत्री-पाठशालाओं के दर्शन करावें। सबसे पहले आरम्भिक श्रेणी को देखिए। अध्यापिका जी गर्व से कहती हैं कि मैं १३० कन्याओं को पढ़ाती हूँ! आपके कपड़े मैले हैं। और आप करें भी क्या? आपको पन्द्रह रुपए मासिक मिलता है और उसी से आपका निर्वाह होता है। आपके हाथ में एक लम्बी सी लकड़ी है, उससे आप उठने को इशारा करती हैं। कन्याएँ खड़ी हो जाती हैं। पुनः आप आए हुए सज्जनों को अपना सुयोग्य शासन दिखाने को अत्यन्त कठोर आवाज़ में कहती हैं "चुप"। इस समय आप सत्य ही काली का कराल रूप धारण कर लेती हैं। कमरे में शान्ति छा जाती है। कन्याएँ भी अत्यन्त मैले वस्त्र पहने हैं। हाथ-मुँह गन्दे, केश बिखरे हुए और दण्ड के भय से मुख ज्योतिहीन दिखाई पड़ता है, बालकों के स्वाभाविक आनन्द की छटा कहीं ग़ायब हो गई है। दृष्टि में न कौतूहल है, न चञ्चलता। अध्यापिका ने कहा "पढ़ो"! उन्होंने पढ़के सुना दिया। ऐसा विदित होता है कि कोई निर्जीव मशीन हैं।

अब दूसरे कमरे में देखिए। दूसरी श्रेणी पहाड़े याद कर रही है। ज़ोर-ज़ोर से सब चीख़ रही हैं—दो दूनी चार, दो तीय छः, दो चौक आठ। इसका अर्थ एक भी बालिका नहीं समझती। अतएव कण्ठस्थ करने में विशेष कठिनाई जान पड़ती है, और अध्यापिका जी की लकड़ी का भय रहते हुए भी ध्यान भटक जाता है। दो बालिकाएँ दीवार की ओर मुँह करके खड़ी हैं। इन दोनों को पाठ याद नहीं हुआ था। पहली का नाम कमला

है, उसकी दृष्टि निर्भय और गम्भीर है। दूसरी उसकी प्रिय सखी तारा है, जो कुम्हलाई हुई कली की नाईं सिसक-सिसक कर रो रही है। कमला का मुख तारा को देख कर एकदम क्रोध से लाल हो उठता है। वह सोचती है—"यदि गुरु जी ने तारा को दण्ड न दिया होता तो मैं पाठ अवश्य सुना देती। उस दिन जब कि तारा को उन्होंने एक बार मारा था, तब से तारा बहुत डरती है, और वह सीखा हुआ पाठ भी भूल जाती है। तारा बेचारी बड़ी ग़रीब और शान्ति-प्रिय है। परन्तु उसमें एक बड़ा अवगुण यही है कि वह डर जाती है। बेचारी नित्य ही बीमार रहती है। रोते-रोते उसके शिर में पीड़ा हो जायगी। अच्छा मैं भी गुरु जी को मज़ा चखाऊँगी।" इसके पश्चात् वह इस विचार में मग्न हो गई कि किस प्रकार बदला लूँ। गुरु जी यदि अपनी कल्पना-दृष्टि से देखतीं तो शायद उन्हें भारत के भविष्य-इतिहास में कमला का नाम देख पड़ता। उसमें वह गुण थे जिनकी देश को आवश्यकता है। वह तीव्र बुद्धि वाली और दृढ़ कर्त्तव्य-परायण थी और अन्याय बिल्कुल नहीं सहन कर सकती थी। परन्तु गुरु जी के क्रूर-व्यवहार से वह हठीली होती जाती थी।

जिस श्रेणी में जाइए, वहाँ यही हाल देखने में आता है। स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा मिलती है, लेकिन केवल पुस्तक से, आचार-व्यवहार से नहीं। कन्याओं के लिए कोई खेलने का स्थान नहीं है। छुट्टी के समय पाठशाला की माई जो मिठाई बेचती है वह बालिकाओं के खाने के सर्वथा अयोग्य होती है। पाठशाला में लाने और ले जाने के लिए बैलगाड़ियाँ प्रायः युक्त-प्रान्त में दिखाई देती हैं, जिनमें बेचारी कन्याएँ खाने-पीने तथा खेल-कूद से वञ्चित रह कर दो घण्टे सुबह और दो घण्टे शाम को बन्द रहती हैं। कहीं-कहीं तो गाड़ी को आदमी खींचता है और वर्षा ऋतु के समय जब पहिए कीचड़ में धँस जाते हैं, तब वे पथिकों के लिए तमाशा बन जाती हैं।

पाठशाला के मैनेजर अथवा सेक्रेटरी महोदय का परिचय कराना भी नितान्त आवश्यक है। ये सज्जन स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती और समाज के नेता कहलाते हैं। आपके सद्भावों और पाठशाला के शुभचिन्तक होने में तनिक भी सन्देह नहीं। परन्तु न तो आपको साहित्य से कोई रुचि है न लड़कियों को पढ़ाने का कोई अनुभव है। आपने कभी नहीं सोचा कि यह कन्याएँ देश की भावी माताएँ तथा समाज का एक अंश हैं। उनकी शिक्षा किस प्रकार होनी चाहिए यह एक कठिन समस्या है और इसका निर्णय कर सकना आपकी बुद्धि से बाहर है। फिर भी कर्त्ता-धर्त्ता आप ही हैं, मुख्याध्यापिका आपकी आज्ञा के बिना कुछ नहीं कर सकतीं। समय-

एक सफल छात्रा

आपका नाम मिस भक्ति अधिकारी है। आप बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हुई हैं। आप उक्त विश्वविद्यालय के फ़िलॉसफ़ी के प्रोफ़ेसर श्री० पी० बी० अधिकारी की पुत्री हैं।

विभाग आपने बनाया है। उसे बनाते समय आप बड़े असमञ्जस में पड़े थे। सिलाई हफ़्ते में कितनी बार होनी चाहिए और किस श्रेणी से शुरू की जावे। भाग्य

से आपकी धर्मपत्नी चतुर गृहिणी थीं, और इस विषय में उन्हीं की सहायता से महाशय जी का उद्धार हुआ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अध्यापिकाओं को बालिकाओं का मनोरञ्जन करने या उनके चित्त को आकर्षण करने की न तो विधि आती है, न इस ओर उनका ध्यान है। छोटे-छोटे बच्चे पढ़ते हैं—झूठ मत बोलो, चोरी करना महा पाप है, आदि-आदि। क्या यही आदर्श बातें कहानी के रूप में मनोरञ्जक नहीं बनाई

श्रीमती वी० कमलादेवी

आप आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की प्रेज़िडेण्ट चुनी गई हैं। कोकोनाडा में होने वाली कांग्रेस में महिला-स्वयं-सेविकाओं की आप कप्तान थीं।

जा सकतीं? यदि बालिकाओं के पढ़ाने की पुस्तकें सुन्दर रङ्गीन चित्रों से युक्त हों, तो क्या वे उनके लिए अधिक मनोरञ्जक न होंगी?

दुःख की बात है कि हमारे शिक्षित-समाज ने इन छोटी पाठशालाओं को एक प्रकार से भुला रक्खा है। इसके लिए स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक दोषी ठहराई जायँगी। वे ही इस कार्य के लिए सर्वथा योग्य हैं और उन्हीं को छोटे बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा का भार अधिकांश क्या सर्वांश में उठाना चाहिए। इसके लिए आवश्यकता है कि कन्या-पाठशालाओं की कमेटी में स्त्री-सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाय। साथ ही यह भी परम आवश्यक है कि सेक्रेटरी का पद किसी योग्य महिला को ही मिले। वह कन्याओं तथा अध्यापिकाओं की कठिनाइयों को शीघ्र समझ सकेगी तथा सहज में ही उनकी सहानुभूति प्राप्त कर लेगी। यही नहीं, परन्तु अन्य बहिनों से समय-समय पर सहायता ले सकेगी। जब तक पुरुष सेक्रेटरी के पद को सुशोभित करेंगे, तब तक भारतीय स्त्रियाँ किसी पाठशाला से सम्बन्ध रखने में अवश्य सङ्कोच करेंगी।

इसके लिए एक उदाहरण देकर मैं लेख समाप्त करती हूँ। लाहौर में अमेरिकन मिशनरियों ने शहर में एक कन्या-पाठशाला खोली है। पढ़ाने वाली वे ही बीस-तीस रु० पाने वाली हमारी अध्यापिकाएँ हैं। परन्तु वहाँ का सब प्रबन्ध विदेशी स्त्रियों के हाथ में है। मुझे यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वहाँ लड़कियों के कॉलेज की प्रोफ़ेसर, तथा लड़कों के कॉलेज के प्रोफ़ेसरों की स्त्रियाँ (जिनको शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान है) अपने काम से छुट्टी पाकर हफ़्ते में एक अथवा दो बार आकर बड़े प्रेम से एक-दो घण्टे के लिए कभी कन्याओं को पढ़ाती थीं, और कभी अध्यापिकाओं को नवीन पाठन-विधि, अङ्गरेज़ी का शुद्ध उच्चारण इत्यादि सिखाती थीं। इनके आने से कन्याएँ अत्यन्त प्रसन्न होती थीं। पाठ सुनाने में एक दूसरे से आग्रह करती थीं, और आज्ञापालन में सदैव तत्पर रहती थीं। यद्यपि हमारे देश में उन विदुषियों के समान उच्च शिक्षा-प्राप्त महिलाएँ बहुत ही कम हैं, परन्तु जो कुछ भी हैं वे यदि समाज की सेवा करने की कुछ भी अभिलाषा रखती हैं तो उनका कर्तव्य है कि इस सेवा-भाव को ग्रहण करें। उनको चाहिए कि सङ्गठन करके, पत्र-पत्रिकाओं में आन्दोलन मचा कर, अन्य बहिनों को उत्साह दिला कर—जिस तरह भी हो, इन पाठशालाओं की दीन-हीन दशा को सुधारें।

—चन्द्रकुमारी हण्डू

* * *

नारी-समस्या

आजकल विधवा-विवाह पर बहुत ज़ोर दिया जा रहा है और तलाक़-प्रथा (विवाह-विच्छेद) का भी औचित्य सिद्ध किया जाता है। अवश्य ही विधवा-विवाह से बढ़कर विवाह-विच्छेद की आवश्यकता है। पर विधवा-विवाह, 'सर्व रोग हरन्ति हरीतिकी' नहीं हो सकता—ब्याह होते ही सब दुःख दूर नहीं हो जाते। मैंने ऐसी बीसों विधवा बहिनों को देखा है, जिनका विधवा-विवाह विधवापन से भी कष्टदायक है। कितने ही लोग विधवा-विवाह करके और थोड़े दिन बड़ी अच्छी तरह रख के अन्त में उनको त्याग देते हैं। फिर उनकी दशा उन विधवाओं से भी बुरी हो जाती है, जो एकनिष्ठ विधवा और ब्रह्मचारिणी बनी हैं।* उनकी समाज भले ही सहायता न करे, पर सहानुभूति अवश्य करता है। सबकी दृष्टि में वे दुःखी विधवा हैं। पर विवाह से वे समाज की दृष्टि में गिर जाती हैं और दो-चार बच्चों का भार लेकर जीवन को और भी कठिन बना लेती हैं। इससे मेरा यह मतलब नहीं कि विधवा-विवाह बुरा है। पर पति सुयोग्य होना आवश्यक है। 'चाँद' में ही सधवा बहिनों के नारकीय उत्पीड़न की ऐसी कथाएँ भरी रहती हैं, जिनके सामने वैधव्य का दुःख फीका पड़ जाता है। विधवा को यह सन्तोष तो होता है कि मैं भगवान् की इच्छा द्वारा सब सुखों से वञ्चित हूँ। पर दुःखी सधवा बहिनों को तो मन को शान्त करने का उतना भी सहारा नहीं! उनका उत्पीड़न असह्य होता है। उन्हीं की आँखों के सामने उनका सौभाग्य अस्त हो जाता है!! वे अपने संसार को जब अपनी आँखों से लुटता देखती हैं, अपनी आँखों के सामने ही जब वे अपनी सम्पत्ति दूसरे को भोग करते देखती हैं, जिसकी कि वे पूर्ण अधिकारिणी थीं, तो उनका धैर्य छूट जाता है और वे फिर अपने फटते हुए कलेजे को शान्त करने का कोई उपाय नहीं पातीं। उधर वे संसार की घृणा-पात्र भी

एक महिला मैजिस्ट्रेट

आपका नाम श्रीमती अप्पैया, बी० ए० है। आप हाल ही में पल्लुर (मद्रास) में प्रथम-श्रेणी की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियत की गई हैं।

बन जाती हैं। घर के, बाहर के, और जाति-बिरादरी के, सब उनके बैरी हो जाते हैं। सास-ननद तो इस मौक़े की तलाश में ही रहती हैं और ऐसा समय आते ही वे अपनी हवस पूरी कर लेती हैं। तब उनका हृदय अनायास कह उठता है कि इससे तो विधवा कहीं अच्छी हैं!

* क्या देवी जी का आशय यह है कि जो विधवाएँ विवाह नहीं करतीं वे एकनिष्ठ विधवा और ब्रह्मचारिणी बनी रहती हैं? सम्भव है इस विषय में उनका विचार और आदर्श ऐसा होगा, पर अधिकांश विधवाओं के सम्बन्ध में इससे प्रायः उल्टा ही सुनने में आता है। हम देवी जी को सविनय बतलाना चाहते हैं कि विवाह की प्रेरणा, विशेषकर उन्हीं विधवाओं के लिए की जाती है, जो एकनिष्ठ विधवा और ब्रह्मचारिणी नहीं रह सकतीं अथवा नहीं रहतीं।

—स० 'चाँद'

दूसरी बात यह है कि हर एक विधवा-ब्याह कर भी नहीं सकती। उसे ग्रहण ही कौन करेगा? जो सुन्दर हैं, अल्प-वयस्का हैं, जिनके बाल-बच्चे नहीं हैं, उन्हीं का ब्याह हो सकता है। सम्भव है, एक-दो बाल-बच्चे वालियों के भी ब्याह हो जायँ। मुसलमानों में ये दोनों प्रथाएँ प्रचलित हैं। विधवा-विवाह भी है, और विवाह-विच्छेद भी। पर उनकी दशा हिन्दू स्त्रियों से कुछ भी अच्छी नहीं है। क्वाँरी लड़कियों के होते कोई विधवा से ब्याह नहीं करना चाहता और ४-४ शादियाँ करने पर भी विवाह-विच्छेद नहीं होता! अगर होता है तो नीच जातियों में और समाज उन्हें तुच्छ समझता है। चोरी से कुकर्म करना अच्छा माना जाता है, पर ये दोनों बातें अच्छी होते हुए भी टिकाऊ नहीं। साथ ही हिन्दू-समाज इनके लिए सदियों तक तैयार भी नहीं हो सकता। सभी विधवाएँ ख़ूबसूरत भी नहीं हैं और न सभी अल्प-वयस्का हैं। जिनके ४-५ बच्चे हैं उनसे कौन ब्याह करेगा? पराए बच्चे कौन प्रेम से पालेगा और अधेड़ स्त्रियों से कौन प्रेम करेगा? अगर हुआ भी तो कितने दिन टिकेगा? जो लोग क्वाँरी लड़की ब्याह के लाते हैं वे उन्हीं की परवा नहीं करते, किसी भी औरत पर नज़र पड़ते ही उधर ही ढुलक पड़ते हैं; फिर बड़ी उम्र की स्त्री से ब्याह करके सारी आयु चैन से कटेगी, इसमें मुझे भारी सन्देह है। इससे उसकी इज़्ज़त भी गई और वह ब्रह्मचारिणी विधवा भी नहीं रही! सारा प्रश्न है जीविका का। यदि स्त्रियाँ अपनी जीविका चला सकें तो सब अवस्थाओं में सन्तोष पा सकेंगी। वे जीविका के लिए ही अपार कष्ट झेलती हैं। पर यह बात सुनते ही पुरुष-समाज चौंक पड़ता है। अरे जब पुरुषों को अभी काम नहीं मिलता तब स्त्रियों के भी नौकरी करने पर क्या गति होगी? पर इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी स्त्रियाँ निरर्थक नौकरी की ही तलाश किया करें। नहीं, पुरुष उनके साथ अच्छा व्यवहार करके मज़े से घर चला सकते हैं। पर जिन्हें कष्ट है, महाकष्ट है, उनको जीविका उपार्जन करने का कोई साधन अवश्य होना चाहिए। पर 'भिक्षां देहि' की नीति से तो काम चल नहीं सकता। इसके लिए आवश्यकता है पूर्ण स्वतन्त्रता की। वह कैसे प्राप्त होगी? पहले उसी का यत्न होना चाहिए और वह भी स्त्रियों के हाथों से। सबसे पहले पर्दे का समूल नाश और फिर दूसरी बातें। पर यह आशा किससे करनी चाहिए? अफ़ीम की पिनक में पड़े हुए भारतीय स्त्री-समाज से! शोक का विषय है कि पुरुष तो कुछ प्रयत्न भी करते हैं, पर स्त्रियों को इस बात की कुछ भी परवा नहीं है!!

—भगवती देवी

श्रीमती डी० कमलारत्नम्

आप अनन्तपुर (मद्रास) के डिस्ट्रिक्ट सैकिण्डरी एजूकेशन बोर्ड की मेम्बर नियत की गई हैं।

[यह सच है कि वर्तमान हिन्दू-समाज चोरी से कुकर्म करने की अपेक्षा विधवा-विवाह और विवाह-विच्छेद जैसी नीति और न्याय के अनुकूल प्रथाओं को निन्दनीय समझता है। पर इसका कारण उसकी मूर्खता और अशिक्षित अवस्था ही है। पर देवी जी समझदार होकर ऐसी ग़लत बात को क्यों मानती हैं। देवी जी

का ख़्याल है कि हिन्दू-समाज इसके लिए सदियों तक तैयार न होगा, पर हम उनको प्रत्यक्ष अनुभव से बतला सकते हैं कि पिछले दस वर्षों में इस सम्बन्ध में हिन्दू-समाज की कट्टरता रुपए में छै आना दूर हो गई है, और अगले दस वर्षों में इसका चौथाई अंश भी शेष न रहेगा। हिन्दू-समाज चाहे अपनी राज़ी से और अपने हिताहित को समझ कर इन बातों को स्वीकार न करे, पर समय और घटनाओं की शक्ति उसे लाचार करके डण्डे के बल से इस रास्ते पर चलाएगी।

देवी जी का सबसे बड़ा भ्रम यह है कि वे विधवा-विवाह को 'इज़्ज़त का जाना' समझती हैं। इस भ्रम का कारण केवल अनभिज्ञता है। विवाह का जितना अधिकार और आवश्यकता क्वारी कन्या को है, ठीक उतना ही विधवा को भी है।

यह भी सोचना व्यर्थ है कि सब लोग क्वारी कन्याओं या कम उम्र की ख़ूबसूरत स्त्रियों से शादी करना ही पसन्द करेंगे। मनुष्यों की रुचि विचित्र और एक दूसरे से भिन्न होती है। असंख्य लोग ऐसे हैं जो कम उम्र और ख़ूबसूरती की अपेक्षा गृह-कार्य की दक्षता और परिश्रमी स्वभाव को अधिक पसन्द करते हैं। कितने ही शिक्षिता स्त्री को ही विशेष पसन्द करते हैं; चाहे उनमें दूसरी ख़ूबियाँ हों या न हों। इस प्रकार यदि झूठे ढोंग और मूर्खतापूर्ण प्रथाओं को छोड़ कर समझदारी और विवेक से काम लिया जाय तो हर एक विधवा का, जो इच्छा रखती हो, विवाह हो सकता है और वह सुख से जीवन बिता सकती है।

देवी जी ने स्त्रियों की जीविका के विषय में जो बातें लिखी हैं, वे बिलकुल सच और परमावश्यक हैं; तथा हम भी उनसे पूर्णतया सहमत हैं। भारतीय नारी-समस्या को सुलझाने का वास्तविक और प्रधान उपाय उनको अपनी जीविका स्वयं उपार्जन करने के योग्य बनाना ही है। यही उनके सब रोगों की एक-मात्र दवा है।

—सं० 'चाँद']

* * *

गोस्वामी तुलसीदास कौन थे ?

(आलोचना)

श्री रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल० ने 'गोस्वामी तुलसीदास कौन थे ?' शीर्षक लेख, जो जुलाई २६ के 'चाँद' में छपा है, बड़ी गवेषणा

श्रीमती एल० सुभलक्ष्मी अम्मल

मद्रास-सरकार ने आपको सैदपेट की म्युनिसिपैलिटी की सदस्या नियुक्त किया है।

के साथ लिखा है। पर उनके लिखने की शैली पाठकों के हृदय में खटक जाती है ! जैसे, शुरू में ही शास्त्री जी लिखते हैं—"जिन गोसाईं जी ने 'रामचरितमानस' की मधुर वंशी फूँक कर 'शबरी नाद मृगी जनु मोही' को चरितार्थ करते हुए हिन्दू-जनता को मन्त्र-मुग्ध-सा

कर दिया है"—इस उपमा को पढ़ कर किस पाठक के मन में खेद न होगा ? चाहे लेखक महाशय का ध्यान इस पर न गया हो, पर हम तो इसे अपना दुर्भाग्य कहेंगे ! हमारी समझ में 'रामचरितमानस' पर हिन्दू-जनता के मुग्ध होने का कारण यह है :—

सरल कवित कीरति विमल, सो आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान॥

भावार्थ—रामायण की कविता सरल है। थोड़े पढ़े-लिखे लोग भी अर्थ लगा लेते हैं। और उसमें आदर्श

श्रीमती सी० कृष्णम्मा

आप भी हाल ही में सैदपेट (मद्रास) की म्युनिसिपैलिटी की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

पुरुष श्रीरामचन्द्र जी की विमल कथा बखानी गई है। जिनकी श्रद्धा न गोसाईं जी पर है, न रामायण पर, वे भी गोसाईं जी की कविता की तारीफ़ करते हैं।

अब हम उन प्रमाणों पर विचार करते हैं, जो गोसाईं जी के वंश का निर्णय करने के लिए शास्त्री जी ने पेश किए हैं :—

(१) जायो कुल मङ्गन बधावो न बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी-जनक को।

शास्त्री जी ने "जायो कुल-मङ्गन" पर बड़ा ज़ोर दिया है और यह सिद्धान्त निकाला है कि गो० तुलसीदास का जन्म मङ्गन-कुल—गोसाईं-कुल—में हुआ, ब्राह्मण-कुल में नहीं। आपका कहना है कि ब्राह्मण को भिक्षुक कहीं नहीं लिखा गया। ज़रा श्रीमद्भागवत देखिए, जहाँ शर्मिष्ठा (एक शूद्र राजा की कन्या) देवयानी (एक ब्राह्मण-कन्या) को "भिक्षुकि' कहके सम्बोधन करती है। यथा :—

आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि।
किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा॥

अर्थ—अरी भिक्षुकि ! अपनी ब्राह्मण-वृत्ति को न जान कर तू बड़ी-बड़ी बातें कर रही है। क्या तू कुत्ते या कौए के समान हमारे घर की ओर रोटी के टुकड़ों के लिए टकटकी लगा कर नहीं देखती है ?

महाभारत, (बङ्गवासी प्रेस) आदि पर्व, १८८ पृष्ठ में लिखा है—"वहाँ (पाञ्चाल नगर में) ब्राह्मण-वृत्ति अवलम्ब कर भिक्षोपजीवी हो रहने लगे; इससे इन समागत वीरों का (पाण्डवों का) आना कोई न जान सका।" इससे बढ़ कर और क्या प्रमाण चाहिए ? फिर, गोस्वामी जी ने अपने को "जायो कुल-मङ्गन" लिखा है। उन्होंने सब ब्राह्मणों को मङ्गन-कुल का तो कहा नहीं। इसमें उन्होंने क्या अक्षम्य धार्मिक तथा सामाजिक अपराध किया ?

तुलसीदास जी विनयपत्रिका में लिखते हैं :—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर,
हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पण्डित परम पद,
पावत पुरारि मुरारि को॥
यह भरतखण्ड समीप सुरसरि,
थलु भलो सङ्गति भली।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली
चहति है विष-फल फली॥

अर्थ—"ईश्वर ने मुझे सुन्दर मनुष्य का शरीर दिया है, जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फलों की प्राप्ति

का कारण है। तिस पर सुकुल—अच्छे ब्राह्मण-कुल में जन्म दिया है, जिसे पाकर पण्डित महादेव और श्री-कृष्ण के परम पद के अधिकारी होते हैं। फिर मेरा वास (पुण्य-भूमि) भरतखण्ड में गङ्गा के किनारे है। साधु पुरुषों की सङ्गति भी है। इतना सब कुछ होकर, मैं ऐसा कायर हूँ! मैं ऐसा कुमति हूँ! कि (बनी बात) —कल्पवल्ली में विष-फल फला चाहता है—सायुज्य मुक्ति के स्थान में मुझे भव-वास मिला चाहता है!" कहिए, सुकुल में जन्म होना, पण्डित होना, सुरसरि के समीप निवास होना—ये सब बातें गोसाईं जी पर ही घटित होती हैं कि किसी दूसरे पर? फिर हम, ऐसा उन्हीं का लिखा प्रमाण रहते, कैसे मानें कि गोस्वामी जी ब्राह्मण—अच्छे कुल के ब्राह्मण—न थे? वे गोसाईं थे—भर्तृहरि या गोपीचन्द का गीत गाकर फेरी देने वाली जाति के थे? सार बात तो यह है कि वेद-शास्त्र-पुराण के ज्ञाता गोस्वामी जी जन्म से ब्राह्मण थे।

"भयो परिताप पाप जननी-जनक को।" इसका अर्थ शास्त्री जी लिखते हैं—"गोसाईं जी के जन्म होने पर आपके माता-पिता को अपने पाप का पश्चात्ताप हुआ। पर पाप और पश्चात्ताप तब होते हैं जब सन्तान की उत्पत्ति अवैध रीति (Unlawful manner) से होती है। ये (उनके माँ-बाप) परस्पर शास्त्रानुसार विवाहित स्त्री-पुरुष (पति-पत्नी) न थे।" आपने "पाप" शब्द को पापी के अर्थ में जननी-जनक का विशेषण भी कहा है। भला जिन गोसाईं जी ने अयोध्याकाण्ड में "उचित कि अनुचित किए विचारू, धर्म जाय सिर पातक भारू।" लिखा है—अर्थात् पिता की आज्ञा उचित है कि अनुचित, इसका विचार करने से पुत्र का धर्म नष्ट होकर उसके सर पर पाप का भार पड़ता है—वे कब अपने माँ-बाप को पापी लिखेंगे? यदि गोस्वामी जी का जन्म अवैध रीति से हुआ होता तो "दियो सुकुल जनम" क्यों लिखते? ऊपर लिखित पद का सरल अर्थ यह है कि मुझ पापी के जन्म होने से मेरे माता-पिता को परिताप हुआ। क्योंकि मेरा जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ था। इस परिताप का कारण दरिद्रता भी थी। हमने देखा है कितने ही ग़रीब माँ-बाप अकाल से पीड़ित हो, अपने बच्चों को मिशनरियों के सुपुर्द कर देते हैं! ख़ैर, तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं:—

अगुन अलायकु आलसी जानि अधनु अनेरो।
स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा,
कैसो टोटकु औचट उलटि न हेरो॥

इसका अर्थ पण्डित रामेश्वर भट्ट ने इस प्रकार लिखा है—"मुझे गुणहीन, नालायक़, आलसी और निकम्मा जान कर कोई पास नहीं आने देता है और

राष्ट्र-भाषा-प्रेमी मद्रासी-महिला

आपका नाम मिस के० मलाथी है। आप 'राष्ट्र-भाषा-परीक्षा' में सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हुई हैं। इसके लिए आपको पुरस्कार भी दिया गया है।

(माता-पिता आदि) मतलब के साथियों ने भी मुझे तिजारी के टोटके की तरह भूल से भी उलट कर नहीं देखा—मूल में होने के कारण, जिस दिन से मुझे माता-पिता ने त्यागा उस दिन से मेरी कभी सूरत नहीं देखी।" "तिजरा कैसो टोटकु औचट उलटि न हेरो"—यह पद सच्चा साक्ष्य देता है कि गोसाईं जी का जन्म मूल नक्षत्र में हुआ था, और दरिद्रता के कारण शान्ति-

विधान न हो सका। माँ-बाप ने उनसे पिण्ड छुड़ा लिया। फिर न मालूम कितनी मुसीबतों के बाद वे नरहरि गुरु के पास पहुँचे।

(२) जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।

श्रीमती शीलावती

आप रियासत हैदराबाद के श्रीमान् राजा दीनदयाल मुसवरजंग के सुपौत्र बाबू हुकुमचन्द की धर्मपत्नी हैं। स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार के लिए आप बड़े उत्साह से कार्य कर रही हैं।

इसे पढ़ कर मुझे एक बात याद आगई। मैंने किसी संन्यासी से पूछा—"आप किनके यहाँ भोजन पाते हैं?" उन्होंने कहा—"अपनी जाति ब्राह्मण के यहाँ; और क्षत्रिय-वैश्यों के यहाँ, जो सुजाति हैं। हम कुजाति—शूद्रों के यहाँ नहीं पाते।" इस पर अधिक लिखना उचित नहीं।

मेरे कोऊ कहूँ नाहीं........

(३) ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं।

यह गोसाईं जी की गृहस्थी के बाद की बात है। वे लिखते हैं—"नए-नए नेह अनुभए देह गेह बसि परिखे प्रपञ्ची प्रेम परत उघरि सो।" अर्थात्—"मैंने गेह (घर में) बस कर इस शरीर में नए-नए (स्त्री-पुत्रादि के) स्नेह का अनुभव किया; और वक्त पड़ने पर परख लिया कि उनका प्रेम स्वार्थयुक्त था।" मालूम पड़ता है कि गोसाईं जी को गृहस्थाश्रम में शान्ति न मिली; तभी उनके मुख से ऐसा उद्गार निकला है। कहते हैं, स्त्री ने ही उन्हें जङ्गल का रास्ता बता दिया था। ऐसी दशा में गोसाईं जी फिर ब्याह और सगाई की किस प्रकार चाहना करते? गृहस्थी से विराग होने पर ही गोसाईं जी सच्चे विरागी और सच्चे राम-भक्त बने थे।

हमें शोक है कि शास्त्री जी ने गोस्वामी जी के जीवन-चरित्र की खोज में साधु-मार्ग का अनुसरण नहीं किया है। उन्होंने गोस्वामी जी को छिपे रुस्तम, दो मुँहे साँप, कालनेमि, चापलूस आदि लिख कर कौन सा डूबा जहाज़ प्रशान्त महासागर में से निकाल लिया!

"यहाँ न पक्षपात कछु राखौं, वेद पुरान सन्त मत भाखौं।" के अनुसार रामायण में प्रसङ्गानुसार स्तुति और निन्दा की गई है। जहाँ "पूजिय विप्र सील गुन हीना, शूद्र नाहिं गुन ज्ञान प्रवीना।" लिखा है, वहाँ "विप्र निरच्छर लोलुप कामी, निराचार शठ वृषली स्वामी।" भी लिखा है। जब हम आज साधु-कर्म करते हैं, तो हम साधु हैं; और कल दुष्ट-कर्म करते हैं, तो दुष्ट हैं। गोस्वामी जी के ज़माने में मुग़ल केवल राजा ही न थे, उनकी पूजा हिन्दू-समाज—सभा-सोसाइटी—में होने लगी थी। ऐसे प्रसङ्ग में उन्हें लिखना पड़ा कि अपने भाई शील-गुण-हीन विप्र की पूजा (मान्यता) करो; पर अन्यों को गुणी, ज्ञानी और प्रवीण समझ कर हिन्दू-समाज का सूत्रधर न बनाओ।

अब हम अपनी आलोचना को अधिक न बढ़ा कर इतना और लिखते हैं कि श्रीगोस्वामी जी का सच्चा जीवन-चरित्र उनका रामचरितमानस है, जो सूर्य के

समान हिन्दू-समाज का प्रकाशक और जीवन-दाता है। इनका जन्म भरतखण्ड में हुआ, उनकी माता जगज्जननी श्रीसीता और पिता जगत्पिता श्रीरामचन्द्र हैं। इनका गोत्र वही है, जो उनके पिता या स्वामी श्रीरामचन्द्र का है।

—बिसाहूराम

[गोस्वामी तुलसीदास जी और उनकी रामायण का धार्मिक हिन्दुओं में जितना अधिक मान है, उसे देखते हुए, रजनीकान्त जी शास्त्री के लेख का घोर प्रतिवाद और विरोध होना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। हमें इस सम्बन्ध में चार लेख मिले हैं, जिनमें से एक यहाँ प्रकाशित किया गया है। कितने ही आलोचकों ने तो लेखक को कड़ी-कड़ी बातें और गालियाँ भी सुनाई हैं। इससे भली-भाँति सिद्ध होता है कि हमारे देशवासी गोस्वामी जी के कैसे अन्ध-भक्त हैं, और इस सम्बन्ध में आलोचना होने की कितनी अधिक आवश्यकता है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो गोस्वामी जी की जाति, वंश, विवाह आदि व्यक्तिगत बातों पर अधिक विवाद उठाना विशेष आवश्यक नहीं है। ये बातें हिन्दी-साहित्य के इतिहास की निगाह से कुछ उपयोगी और महत्वपूर्ण अवश्य हैं, पर समाज-सुधार की दृष्टि से इनका मूल्य शायद बहुत अधिक न होगा। इसके बजाय गोस्वामी जी की रचनाओं के द्वारा हिन्दू-समाज पर जो हानिकारक प्रभाव पड़ा है उसकी ही आलोचना करना और उसके विषय में सर्वसाधारण को सचेत करना अधिक हितकारी होगा।

सच पूछा जाय तो गोस्वामी जी की रचनाओं से उनकी जाति का ठीक-ठीक पता लगा सकना कठिन है। सम्भव है, स्वयम् गोस्वामी जी को अपनी जाति और वंश का पूरा-पूरा पता न हो। क्योंकि उनकी रचनाओं से प्रकट होता है कि माता-पिता के देहान्त हो जाने से या माता-पिता द्वारा त्याग दिए जाने से, या अन्य किसी कारण से वे बिलकुल छोटी अवस्था से ही अनाथ हो गए थे और भीख के टुकड़े खाकर बड़े हुए थे। उसी अवस्था में वे साधुओं की
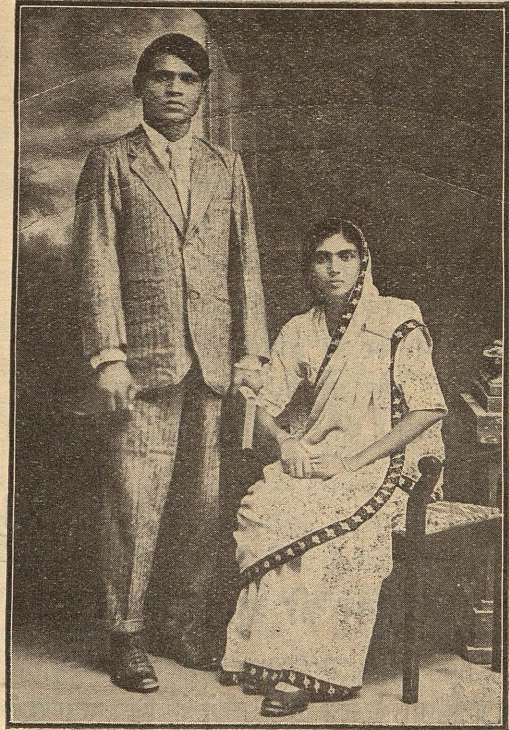
सच्चे समाज-सुधारक

श्री० मोतीरामजी चौधरी कराची के आर्यसमाज के मन्त्री और वहाँ के स्पेशल स्कूल के प्रधान अध्यापक हैं। आपने उच्च जाति की कितनी ही सुयोग्य और सुशिक्षित कन्याओं के विवाह के लिए राज़ी होते हुए भी अछूत जाति की एक साधारण शिक्षित कन्या से विवाह किया है।

सङ्गति में रहने लगे और राम-भक्ति तथा कविता का बीज उनके हृदय में जम गया, जो समय पाकर बड़े भारी वृक्ष के रूप में परिणत हो गया। उनकी कुछ उक्तियों से मालूम होता है कि उनका ब्याह अवश्य हुआ था। (देखिए हनुमानबाहुक

में 'बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो' वाला कवित्त) पर यह निश्चय नहीं कि वह जाति के नियमानुसार हुआ था या किसी जातिच्युत व्यक्ति ने उनको सुयोग्य देख कर अपनी कन्या उनको ब्याह दी थी।

इस प्रकार तुलसीदास जी का वास्तविक जीवन-वृत्तान्त कितने ही अंशों में अन्धकार में छिपा हुआ है। कितने ही लेखकों ने इसको पूर्णतः लिखने की चेष्टा की है, पर उसमें उन्हें प्रायः अपनी कल्पना से ही काम लेना पड़ा है, और इसलिए उनमें जगह-जगह मतभेद देखने में आता है। हमारे विचार से अब इसमें अधिक परिश्रम न करके, गोस्वामी जी की रचनाओं का हिन्दू-जनता पर जो प्रभाव पड़ता है उसी की आलोचना और जो बातें उसमें हानिकारक हों उनके प्रतिकार की चेष्टा की जाय, तो अधिक उत्तम होगा।

—सं० 'चाँद']

* * *

स्वयंवर की आवश्यकता

सांसारिक सुख भोग करने के लिए प्रायः सभी मनुष्य गृहस्थ-आश्रम में पैर रखते हैं। परन्तु सच्चा सुख उसी गृहस्थी में प्राप्त होता है, जहाँ दाम्पत्य-जीवन सुखमय है। अर्थात् पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम है और एक दूसरे को बराबरी की दृष्टि से देखते हैं। यह नहीं, कि पति-पत्नी को अपनी आश्रित समझ कर अनुचित शब्दों से उसका तिरस्कार करते हैं। पति का पत्नी के साथ ऐसा व्यवहार आजकल असंख्य घरों में देखा जाता है और इसके कारण गृहस्थाश्रम नरक-तुल्य बन जाता है।

अगर ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह हमारे ही कर्मों का फल है। क्योंकि हमारे यहाँ ऐसे वरों और कन्याओं को विवाह-बन्धन में बाँध दिया जाता है, जिन्होंने पहले एक दूसरे की छाया तक नहीं देखी। साथ ही वे इतने नादान होते हैं कि उन्हें इस बन्धन के महत्व का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। हमारे यहाँ बाल-विवाह की प्रथा बहुत ही प्रचलित है और विवाह के सम्बन्ध में वर-कन्या से कोई सलाह नहीं ली जाती। न उन्हें एक दूसरे से वार्त्तालाप करने और एक-दूसरे को जान सकने का अवसर दिया जाता है। ये सब काम माता-पिता अथवा संरक्षकों के ही ऊपर निर्भर रहते हैं। कैसे आश्चर्य और खेद की बात है कि जिनके भावी जीवन का फ़ैसला होने जा रहा है और जो एक ऐसे बन्धन में पड़ने को जा रहे हैं, जिससे वे इस जीवन में मुक्त नहीं हो सकते, उनसे कोई बात भी नहीं पूछता! तब भला वे किस प्रकार दम्पति कहलाने का अधिकार रख सकते हैं?

अगर हम अपनी पुरानी प्रथाओं को देखें तो स्वयंवर के रूप में हमें एक ऐसी प्रथा मिलती है, जो बड़ी उम्र के विवाह व सच्चे दाम्पत्य जीवन का आदर्श बतलाती है। यदि हम वर्तमान समय के अन्धे-विवाहों की प्रथा को उठा कर अपने पूर्वजों की भाँति स्वयंवर की प्रथा फिर से प्रचलित करें, तो वर्तमान दशा में बड़ा सुधार हो सकता है। क्योंकि जो वर और कन्या अपनी इच्छा से विवाह-बन्धन में पड़ेंगे, उनमें स्वभावतः स्थायी प्रेम रहेगा। यदि ग़लती से इस चुनाव में कोई त्रुटि भी रह गई तो वर-कन्या उसे अपना ही दोष समझ कर मिटाने का प्रयत्न करेंगे, न कि केवल माता-पिता को ही गालियाँ देकर छुट्टी पा जायँगे, जैसा कि वर्तमान समय में होता है।

स्वयंवर की प्रथा का जारी करना बहुत अच्छा है परन्तु उसके साथ-साथ कन्या को इतनी सामर्थ्य भी अवश्य होनी चाहिए कि वह अपनी भलाई-बुराई समझ सके। यदि आजकल के समान आठ-नौ वर्ष की कन्याओं के विवाह की प्रथा क़ायम रक्खी जाय तो स्वयंवर करना केवल उसका मज़ाक़ उड़ाना होगा।

इसलिए विवाह के समय कन्या कम से कम सोलह वर्ष की अवश्य होनी चाहिए और उसको शिक्षा भी अवश्य देनी चाहिए; क्योंकि उसके बिना कन्या अपना हिताहित समझ कर योग्य वर नहीं चुन सकती।

—सुमित्रा देवी सकसेना
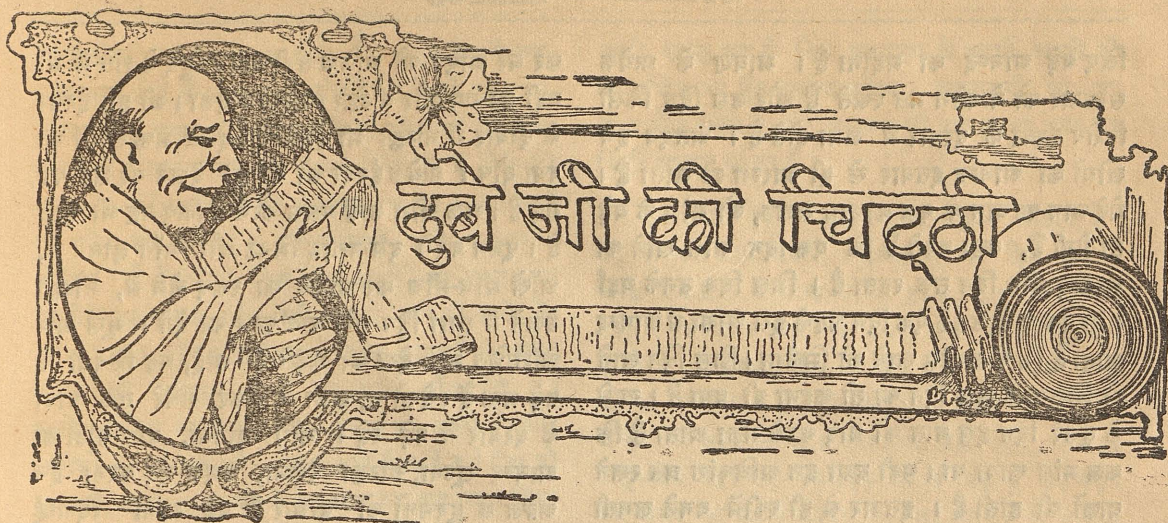
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

क्या कहूँ भाई, हिन्दुओं का पाखण्ड देख कर चित्त को बड़ा ही क्लेश होता है। हिन्दुओं ने धर्म तथा आस्तिकता को अपने मनोरञ्जन का साधन बना रक्खा है। इनकी समझ में ईश्वर को मानने तथा उसकी उपासना करने में दो लाभ हैं। एक तो ईश्वर की खोपड़ी पर एहसान का गट्ठा लादना और दूसरे अपना मनोरञ्जन करना। आम के आम और गुठलियों के दाम ! धर्म का इतना सदुपयोग और कौन कर सकता है ? देवताओं की अधिकता सनातनी हिन्दुओं के लिए उतनी ही मनोरञ्जक है, जितनी किसी बालक के लिए खिलौनों की अधिकता होती है। जैसे कोई बालक दिन भर में अनेक तथा नए-नए खिलौनों से खेलना पसन्द करता है वैसे ही सनातनी भाई भी दिनभर में अनेक देवताओं की आकांक्षा रखते हैं। सवेरे मुक्तेश्वर के मन्दिर में विराजमान हैं तो शाम को महेश्वरी देवी के मन्दिर में डटे हैं। दो घण्टे पश्चात् देखिए तो किसी अन्य ईश्वरी अथवा ईश्वर के दरबार में उपस्थित हैं। क्या ऐसा भक्ति-वश करते हैं ? अजी नारायण का नाम लीजिए ! भक्ति किस चिड़िया का नाम है, इसका भी पता इनको नहीं है। करते हैं केवल 'मज़े' के लिए। मज़ा ढूँढ़ते फिरते हैं—मज़े के लिए दीवाने हैं। मैंने अनेक 'भक्तों' को यह कहते सुना है—"आज अमुकीश्वरी के दरबार में गए थे—कुछ मज़ा नहीं आया। आज अमुकेश्वर के दरबार में कुछ आनन्द नहीं आया।" इन कमबख़्तों से कोई पूछे—मज़ा नहीं आया तो इसके लिए ईश्वर अथवा ईश्वरी क्या करें ? उन्होंने आपको मज़ा पहुँचाने का ठेका ले रक्खा है ? और आप उनकी सेवा करने और दर्शन करने जाते हैं या मज़े लूटने ? जैसे लोग कबूतरबाज़ी, पतङ्गबाज़ी तथा अनेक प्रकार की अन्य बाज़ियों में मज़ा ढूँढ़ा करते हैं, ऐसे ही कुछ भक्त लोग "देवताबाज़ी" करते हैं और उसमें मज़ा ढूँढ़ते रहते हैं। जिस देवता में उन्हें कुछ मज़ा अथवा आनन्द मिलता है—वह देवता सिद्ध देवता समझा जाता है, जिसमें आनन्द नहीं आता—वह देवता नापास और देवताओं की बिरादरी से ख़ारिज ! ऐसे देवता के मन्दिर में शाम को कोई चिराग़ भी नहीं जलाता। जो देवता 'मज़ा' देता रहता है, उसकी शान देखिए—क्या ठाट रहते हैं। आप पूछेंगे कि "देवताबाज़ी" में क्या मज़ा आता है। मैं बहुधा यह सोचा करता हूँ कि लोगों को बटेरबाज़ी, कबूतरबाज़ी, पतङ्गबाज़ी में क्या मज़ा आता है ? मुझे तो वह सोलहों आने हिमाक़तबाज़ी दिखाई पड़ती है। परन्तु उन्हें कुछ तो मज़ा आता ही होगा, तभी तो वे उसमें समय तथा धन नष्ट करते हैं। उस मज़े को हम-आप नहीं समझ सकते। इसी प्रकार "देवताबाज़ी" के मज़े का अनुमान हम-आप नहीं लगा सकते। हाँ, देवताबाज़ों को किस बात में आनन्द मिलता है, इसको मैंने समझने का प्रयत्न किया है।

श्रावण तथा भादों का महीना "देवताबाज़ों" के

लिए बड़े आनन्द का महीना है। श्रावण के प्रत्येक सोमवार को ये लोग व्रत रखते हैं और उस दिन किसी विशेष ईश्वर के दरबार में जमा होते हैं। अतएव इन लोगों का आनन्द इतवार से ही आरम्भ हो जाता है। मेरे जान-पहचान के एक कायस्थ सज्जन, जो मांस के बड़े ही प्रेमी हैं, कहा करते हैं कि एक दिन मांस खाने का आनन्द तीन दिन तक रहता है। जिस दिन उनके यहाँ मांस पकता है उसके एक दिन पहले इस आशा में आनन्द आता है कि कल मांस खाने को मिलेगा। जिस दिन खाने को मिलता है उस दिन का तो कहना ही क्या है। खाने के दूसरे दिन इस बात को याद करके मज़ा आता है कि कल मांस खाया था। यही दशा इन अधिकांश व्रत रखने वालों की होती है। इतवार से ही स्कीमें बनने लगती हैं कि कल खाने को क्या-क्या बनना चाहिए। व्रत का उद्देश तथा उसके कर्त्तव्य सब गए चूल्हे में, सबसे पहले खाने की फ़िक्र होती है। रखते हैं व्रत और खाने की चिन्ता एक दिन पहले से पड़ जाती है। इस विरोधाभास का भी कुछ ठिकाना है? इसके पश्चात् यह तय होता है कि कल किस ईश्वर के दरबार में चलना चाहिए। इसके लिए अधिक सोच-विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारे शहर में चार ईश्वर हैं। प्रत्येक सोमवार को एक-एक ईश्वर के दरबार में मेला लगता है, अतएव अधिकांश वहीं जमा होते हैं। जो लोग धनी हैं, उनका सब सामान इतवार की शाम को ही ईश्वर जी के कम्पाउण्ड में पहुँच जाता है। सोमवार के दिन शाम को इस कम्पाउण्ड में जिधर देखिए सिल-बट्टा खटक रहा है। ख़ूब गहरी छनती है। शिवजी की भक्ति में एक यही तो बड़ा सुविधा है कि छानने को ख़ूब मिलता है। सोमवार के दिन दोनों समय छनती है। सवेरे से ही नशे जम जाते हैं। भाँग-वाँग पीकर वहीं शौच से निवृत्त हुए। इसके पश्चात् स्नान किया, तत्पश्चात् ईश्वर जी की खोपड़ा पर एहसान का टोकरा लादा गया। अर्थात् थोड़ी देर पूजन किया। इसके पश्चात् आनन्द के साथ तर-माल पर हाथ साफ़ किया।

यों चाहे कभी महीनों अजीर्ण न होता हो, परन्तु व्रत के दिन निश्चय अजीर्ण हो जायगा। व्रत और उपवास के अर्थ ही यही हैं कि अजीर्ण हो जाय। इसके पश्चात् हा-हा, हू हू आरम्भ हुई और रात के नौ-दस बजे तक आनन्द लूट कर घर आए। जो अधिक तबीयतदार हुए वे रात में भी वहीं डट गए और नौटङ्की का स्वाँग देखा। जी हाँ, ईश्वर के दरबार में नौटङ्की भी होती है। इसमें भक्त लोगों का क्या दोष? प्रत्येक ईश्वर को नौटङ्की देखने की लत पड़ गई है। भक्त लोग उन्हें प्रसन्न करने के लिए यह भी करते हैं। पूजन करेंगे दस-पन्द्रह मिनट और भाँग छानने में, आँखें मीच-मीच कर भोजन का स्वाद लेने में, नौटङ्की देखने में सारा दिन और रात ख़र्च कर देंगे। मूर्ख और अशिक्षित उन्हें देख कर कहते हैं—भई, यह शिवजी के बड़े भक्त हैं। देखो न, शाम से लेकर सवेरे तक बाबा के दरबार में पड़े रहे। भाँग छानना, दाल-बाटी का आनन्द लूटना, नौटङ्की देखना, उछल-कूद करना इन अक़्ल के दुश्मनों को "दरबार में पड़े रहना" दिखाई पड़ता है। भक्तराज घर आकर हमारे जैसे लोगों से, जिन्हें उनका-सा सौभाग्य कभी स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता, कहते हैं, "आज बाबा के दरबार में बड़ा आनन्द आया। ख़ूब जी भर कर पूजन हुआ। बाबा का श्रृङ्गार भी बड़ा दिव्य हुआ था। बड़ी विशाल मूर्त्ति है।" हालाँकि बाबा के पास केवल दस मिनट से अधिक नहीं फटके, परन्तु बातें बाबा ही की करेंगे। और इस ढङ्ग से करेंगे मानो बाबा के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। और आनन्द यह है कि विशाल और सिद्ध मूर्त्ति होते हुए भी दूसरे सोमवार को भक्तराज उनकी बात भी न पूछेंगे—दूसरे सोमवार को दूसरे बाबा का दरबार अपनी चरण-रज से पवित्र करेंगे। इसी प्रकार तीसरे सोमवार को किसी तीसरे बाबा की खोज होगी। क्यों सम्पादक जी, इसे आप देवताबाज़ी नहीं तो और क्या कहेंगे? इसके साथ एक बात और है—तीन बाबा का दरबार तो गङ्गा-तट पर है और एक बाबा का दरबार रेलवे लाइन-तट पर। अतएव जिन बाबा का दरबार गङ्गा-तट पर है वहाँ भक्त लोग अधिक जमा होते हैं। क्यों? इसलिए नहीं कि उक्त तीन बाबा अधिक पहुँचे हुए हैं, इसलिए कि गङ्गा-तट होने से वहाँ आनन्द अधिक आता है। रेलवे लाइन-तट वाले बाबा के दरबार में उतना आनन्द नहीं आता। इसलिए लोग उन्हें ज़रा कम पतियाते हैं।

श्रावण में फूलों तथा झाँकियों का ज़ोर भी रहता है। इस अवसर पर अनेक मन्दिरों में रास, थिएटर

तथा नौटङ्की का आयोजन रहता है, अतएव काफ़ी भक्त-गण जमा होते हैं। मनचले लोगों को स्त्रियों पर नयन-बाण-प्रहार तथा छेड़छाड़ करने का सुअवसर भी प्राप्त होता है। ठाकुर जी के सामने नौटङ्की में ऐसे-ऐसे अश्लील स्वाँग होते हैं कि भगवान् बचावे। रासलीलाएँ तो लोप ही हो गईं। रासमण्डली वाले दस-पन्द्रह मिनिट "द्वै-द्वै गोपी बिच-बिच माधौ" का नाच तथा 'ताथेई' करके झट राजा-रानी बनकर खड़े हो जाते हैं, और "प्यारी तेरे इश्क़ में हुआ हाल बेहाल" के साथ नगाड़ों की "कड़कड़ धम" का समाँ बाँध देते हैं। अड़ोस-पड़ोस वालों की नींद हराम हो जाती है और नगाड़ों की कड़कड़ और धम-धम से सिर में दर्द पैदा हो जाता है, परन्तु ठाकुर जी के नाम पर यह सब सहन किया जाता है। एक बार नगाड़ों की धमाधम से एक मकान गिर पड़ा था और बहुत से आदमियों के चोट आगई थी। जिस मकान में ठाकुर जी विराजमान थे, वह था पुराना तथा जीर्ण-शीर्ण। नगाड़ों की कड़कड़ाहट जो हुई तो एक दीवार अररा कर बैठ गई। लोग समझे कि बरसात के कारण दीवार बैठ गई। परन्तु असली कारण नगाड़ों की कड़कड़ाहट थी। जिन्होंने विज्ञान का अध्ययन किया है, वह भली-भाँति जानते हैं कि वायु के कम्पन में कितनी शक्ति होती है। जितने ज़ोर का शब्द होगा, उतना ही अधिक वायु में कम्पन उत्पन्न होगा। उसी कम्पन के धक्के से दीवार बैठ गई। ठाकुर जी को अपने भक्तों पर इतनी भी दया नहीं आई कि एक रात के लिए दीवार साध लेते—गोवर्द्धन पर्वत को उँगली पर उठा लेने वाले ठाकुर जी की यह निष्ठुरता!

सम्पादक जी, यह सब धर्म के नाम पर और धर्म की ओट में होता है। यदि इस पर कोई भला आदमी कुछ कहता है, तो भक्त लोग झट उसे नास्तिक, आर्य-समाजी, विधर्मी इत्यादि की उपाधियों से विभूषित कर देते हैं!!

इसके पश्चात् जन्माष्टमी आती है। इस अवसर पर भी भक्त लोगों का उत्साह देखने योग्य होता है। इस दिन भी अनेक लोग उपवास करते हैं। कुछ लोग तो कृष्ण-जन्म होने के पश्चात् भोजन करते हैं और कुछ फलाहार के नाम से दिन भर दुनिया भर का अल्लम-गल्लम चट करते रहते हैं। यों रोज़ दिनभर में दो बार भोजन करेंगे, परन्तु व्रत के दिन फलाहार के बहाने बकरी की तरह दिन भर मुँह चलता रहेगा। जन्माष्टमी का व्रत लोग कैसे रखते हैं, इस सम्बन्ध की एक घटना देकर यह चिट्ठी समाप्त करता हूँ।

एक हमारे पड़ोसी महोदय कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। बड़े धार्मिक तथा भक्त हैं। जन्माष्टमी के दिन रात के बारह बजे तक जागरण करना होता है। सो हमारे पड़ोसी भक्तराज जागने के लिए उस दिन बाइस्कोप देखते हैं। बाइस्कोप देख कर जब लौटते हैं, तब कृष्ण जी का जन्म करते हैं। दो-तीन साल पहले की बात है। जन्माष्टमी का दिन था। घटनावश उस दिन भक्तराज बाइस्कोप नहीं गए—अतएव घर में पड़ के सो गए। जब जन्म का समय आया तो घर वालों ने आपको जगाने की चेष्टा की। परन्तु भक्तराज मुर्दों से बाज़ी लगा कर सोए थे। उनकी माता ने लाख प्रयत्न किया, पर वह नहीं उठे। इधर उनके न उठने से कृष्ण जी का जन्म तमादी में पड़ा जा रहा था। लोग इस प्रतीक्षा में बैठे थे कि पण्डित जी उठें तो कृष्ण महाराज तवल्लुद हों, और कृष्ण जी तवल्लुद हों तो मीठा-मीठा पञ्चामृत तथा प्रसाद चखने को मिले। परन्तु जब पण्डित जी नहीं उठे और कृष्ण जी असहयोग करके बैकुण्ठ लौट जाने पर आमादा हो गए तो लोगों ने उनकी माता से कहा—"तो तुम्हीं जन्म कर दो।" विवश होकर उनकी माता ने जन्म किया। यह दशा भक्तगणों की है। पञ्चामृत और प्रसाद बँटने के समय वे पैसे-कौड़ी का दृश्य देखने को मिलता है। बहुधा प्रसादार्थी भक्तों में लात-जूता तक चल जाता है। एक-एक भक्त कई-कई बार प्रसाद लेने के लिए पहुँचता है। प्रसाद और पञ्चामृत लेने के लिए भक्त लोग रात के एक बजे तक जागा करते हैं। टइयाँ-से मन्दिर के द्वार पर बैठे हैं। किसी ने कहा भी कि "अभी क्या है? जन्म हो ले तब आना।" तो बोले—"हम बैठे भजन कर रहे हैं, कुछ प्रसाद के लिए थोड़ा ही बैठे हैं।" यदि पञ्चामृत की जगह गङ्गाजल का चरणामृत बँटा करे तो भजन का हाल खुले, तब एक भी न दिखाई पड़े। प्रसाद बाँटने वाले ठाकुर जी के एजेण्ट भी ख़ूब कतर-ब्योंत करते हैं। जान-पहचान वालों को ख़ब दोने भर कर और गिलास

(शेष मैटर ७१७ पृष्ठ के पहले कालम में देखिए)
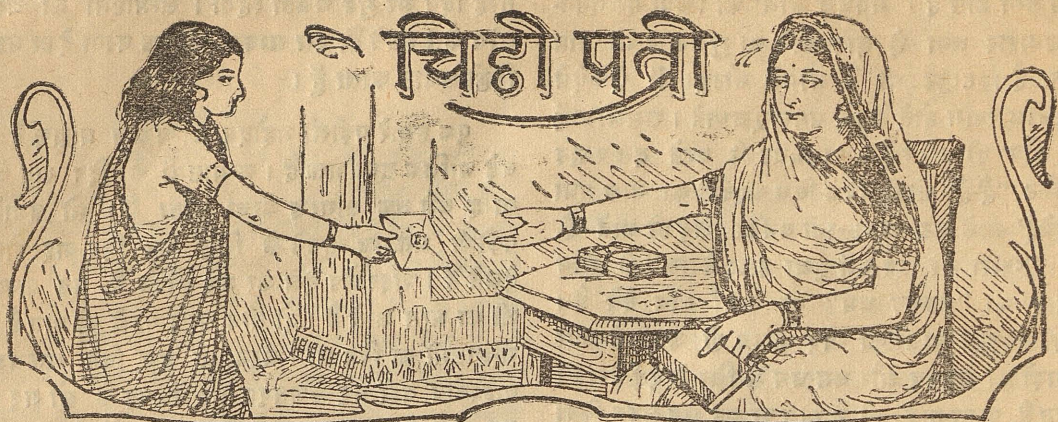
"ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी"

देहरादून से एक बहिन, जो अपना नाम प्रकट करना नहीं चाहतीं, लिखती हैं :—

सम्पादक जी,

आपके पास तो नित्य-प्रति ऐसे पत्र आया ही करते होंगे। इसलिए मेरे पत्र से आपको कुछ आश्चर्य न होगा, किन्तु सहानुभूति तथा समवेदना अवश्य होगी। जब मैं संसार में निराश हो चुकी थी तो आपके 'चाँद' के सुखद लेखों ने ही मुझे आशा और धैर्य दिलाया था। आज इस अभागे भारत में न जाने कितनी निरपराध बहिनों को जीवित रख कर मारा जा रहा है। अपमान के कारण निकलने वाली हमारी आहें जब तक जारी हैं, तब तक यह देश कैसे स्वतन्त्र हो सकता है?

मेरा जन्म एक अच्छे प्रतिष्ठित और रईस घराने में हुआ था। जब मैं दो वर्ष की थी, तभी अभाग्यवश मेरे पिता की मृत्यु हो गई। पर मेरी माता बड़ी चतुर और बुद्धिमती थी और उसने मुझे लिखाने-पढ़ाने और सब प्रकार की धार्मिक और राजनैतिक शिक्षा भली प्रकार देने की पूर्ण चेष्टा की। जब मैं १७ वर्ष की हुई तो मेरे लिए योग्य वर की तलाश शुरू हुई। पर हुआ वही जो भाग्य में लिखा था। चार वर्ष से, जब से मेरी शादी हुई है, मैं अनुभव कर रही हूँ कि स्त्री-जाति पर कैसे-कैसे अन्याय हो रहे हैं। और सब कुछ मैं सह सकती हूँ, पर मुझसे यह नहीं सहा जाता कि पुरुष डण्डों से स्त्रियों का सम्मान करें। यह दुःख मेरे शरीर को घुन की तरह खा रहा है। मैंने घर में इस बुराई को सुधारने का प्रयत्न किया, किन्तु निराश होना पड़ा। मैं समझती हूँ कि जब तक समाज ही इसके लिए कोई कड़ा नियम न बनावेगा तब तक यह अत्याचार बन्द न होगा। मैं हैरान हूँ कि क्या करूँ? यदि हम स्त्रियों को ईश्वर ने संसार में भूल से पैदा किया है, तो हमें भी ऐसा अपमान और व्यथा सह कर जीने की क्या आवश्यकता है?

२

एक बहिन ने, जो जाति की ठाकुर मालूम होती हैं और जो अपना नाम और पता प्रकट करना नहीं चाहतीं, अपनी विपत्ति की बड़ी लम्बी राम-कहानी हमारे पास लिख कर भेजी है। उसका सारांश नीचे दिया जाता है:—

महाशय जी,

मेरी आत्म-कथा ध्यानपूर्वक सुनिए। मेरा जन्म एक बहुत बड़े कुल में हुआ है। मेरे पिता लखपती हैं, उन्होंने कई जगह अस्पताल, धर्मशाला, सदावर्त क़ायम कर रक्खे हैं। जब मेरी अवस्था १४ वर्ष की थी तो पिता ने पास ही के एक गाँव के एक सामान्य घराने में मेरा विवाह कर दिया। मेरे पति की अवस्था १७ वर्ष की थी और वे न पढ़े-लिखे थे और न उनमें कुछ अक़्ल थी। इस प्रकार ससुर और पिता ही मेरे जीवन को भार-रूप

बनाने वाले हैं। १७ वर्ष की उम्र में गौना होकर मैं पति के घर आई। मेरे पति को बचपन से ही व्यभिचार आदि की कुटेव पड़ गई थी। कुछ वर्ष तक तो उन्होंने थोड़ा प्रेम भी रक्खा, पर अब ६ वर्ष से मेरा मोह बिल्कुल छोड़ दिया है। जब मैं ससुराल में आई तो जेठ और पति मांस खाते थे। मैंने समझा-बुझा कर पति का मांस खाना छुड़ा दिया। जेठ जी का भी रसोई के भीतर मांस खाना बन्द हो गया। मेरे जेठ मुझसे पहले से ही नाराज़ थे, अब और भी बिगड़ गए और बार-बार मेरे पति को मुझे दण्ड देने के लिए उकसाने लगे। पति को ४-५ वर्ष से एक साधू की सोहबत से भाँग और गाँजे का शौक़ लग गया है। उनमें वेश्या, जुआ, पर-स्त्री-गमन की आदत पहले से ही मौजूद हैं। एक दिन मैंने इस विषय में हँसते हुए उनसे कुछ पूछा तो ख़ूब मारा। जब चौथा पुत्र मेरे गर्भ में था तो मुझे तरह-तरह के कष्ट दिए गए। चाहे जब बिना क़सूर के मार देना और बुरी-बुरी गालियाँ देना साधारण बात थी। जब मैं प्रसव-गृह में थी और दाई से तेल की मालिश करा रही थी तो एक दही बेचने वाली आई। मैंने पति से कहलाया कि आप खिचड़ी के साथ खाने को दही ख़रीद लें। इसी पर मुझे जानवर की तरह मारना शुरू कर दिया और घसीट कर आँगन में डाल दिया। मारते-मारते मेरे कपड़े भी उतार कर फेंक दिए। पर ईश्वर को मेरे कष्टों का अन्त करना मञ्जूर न था, इसलिए उस नाज़ुक दशा में भी मेरे प्राण बच गए। इसी प्रकार मेरे रहने के कमरे में मेरे स्वर्गीय श्वसुर जी का कुछ रुपया बहुत समय से रक्खा था। एक दिन जेठ के माँगने पर उसे निकाल कर दे आए। जब मैंने इस बारे में कुछ कहा तो धड़ाधड़ मार पड़ने लगी। देखने वाली स्त्रियाँ बचाने को आईं तो जेठ ने उन्हें रोक दिया। स्त्रियों ने कहा, यह मर जायगी और बच्चे मारे-मारे फिरेंगे। जेठ कहने लगे, मर जाने दो, रात में ही मिट्टी का तेल डाल कर फूँक देंगे और भाई की दूसरी शादी कर लेंगे। मैं पिटते-पिटते बेहोश हो गई और आँख में चोट लगने से दिखाई पड़ना भी बन्द हो गया। उस समय मेरे पेट में बच्चा भी था, वह गठरी की तरह बँध कर एक तरफ़ आ गया। मैंने अपने लड़कों से कहा कि ज़रा मेरे मुँह में पानी डाल दो, तो जेठ ने उनको पानी देने से भी रोक दिया। उस समय मेरी दुर्दशा यहाँ तक की गई कि मुझे जीने की तनिक भी इच्छा न रही, पर गर्भ के कारण प्राण न दे सकी।

इस प्रकार इस बहिन ने कितनी ही घटनाओं का वर्णन किया है कि गर्भ और बीमारी की हालत में, जब कि वह कष्ट से व्याकुल थी, उसके नराधम पति ने उसे मार-मार कर अधमरा कर दिया और उसके पीहर (मैके) वालों ने इलाज करा के उसकी प्राण-रक्षा की। पर अब पीहर वाले भी हाथ खींचते जाते हैं। इस सम्बन्ध में चिट्ठी में लिखा है :—

मेरी इस दुर्दशा पर किसी को दया नहीं आती। भाइयों ने भी कह दिया कि ज़हर खाकर मर जाओ, हमको मुँह मत दिखाना, न अपने समाचार कभी भेजना। पिता भी अब विशेष सहायता करने को राज़ी नहीं। सब लोगों का कहना है कि तुम्हारी शादी कर दी, अब हमसे कुछ ताल्लुक़ नहीं। यह कैसी बुरी रीति चलाई गई है। पिता व भाई अपनी राज़ी का वर ढूँढ़ कर कूड़े की तरह भाड़ में झोंक देते हैं और फिर कहते हैं कि हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया, हमसे कुछ ताल्लुक़ मत रक्खो !!

वास्तव में इन पत्रों में हमारे लिए आश्चर्य की कोई बात नहीं है। भारतीय नारियाँ इतनी अधिक बेबस और पुरुषों पर आधार रखने वाली हो गई हैं कि पुरुषों को उनके साथ कैसा भी ख़राब से ख़राब व्यवहार करने में किसी प्रकार का सङ्कोच अथवा भय नहीं होता। वे जानते हैं कि इनके लिए हमारे अधीन रहने के सिवाय और कोई रास्ता है ही नहीं। इस भावना के कारण उनकी उद्दण्डता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और वे सचमुच औरतों को 'पैर की जूती' समझने लग गए हैं। गँवार और नीचे दर्जे के लोग ही नहीं, कितने ही बड़े-बड़े सुशिक्षित, सार्वजनिक क्षेत्र में सुप्रसिद्ध और एम० ए०, बी० ए०, शास्त्री आदि की उपाधि-प्राप्त लोग भी स्त्रियों पर चाहे जब डण्डा फटकारने लगते हैं।

इन बातों को पढ़ कर मुख से यही निकलता है कि ऐसे मनुष्यों से तो पशु ही कहीं अच्छे हैं, जो अपनी मादा पर कभी इस तरह के अत्याचार नहीं करते।

रह गई इसके उपाय की बात। हमारा कथन इन देवियों को शायद बुरा लगेगा। अधिकांश पुरुष उसे पढ़ कर लाल-पीले हो जायँगे, और 'धर्म-प्राण' लोग तो हमारे रौरव-नरक जाने की ही व्यवस्था करने लगेंगे। पर हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इन बातों का उपाय इस प्रकार के लेखों और कड़ी आलोचनाओं से नहीं हो सकता। इनका उपाय स्त्रियों के ही हाथ में है और वे ही जब कभी चेतेंगी तभी इस स्थिति का वास्तव में सुधार हो सकेगा। हम इतना ही कहना चाहते हैं कि संसार में जितने भी नाते और सम्बन्ध हैं, उनका आधार कर्तव्य-पालन पर है। जो आदमी हमारे साथ मित्रता का व्यवहार करता है, हमारा हित-साधन करता है, उसी को हम अपना मित्र मानते हैं। अगर किसी कारण से वह हमारे ख़िलाफ़ हो जाय, हमारे अहित का कार्य करने लगे, हमारे नाश का उपाय करे, तो हम उसे कदापि पूर्ववत् मित्र नहीं मान सकते और उसके और हमारे बीच में शत्रुता का सम्बन्ध हो जाता है। यही बात हम पति-पत्नी के सम्बन्ध में कह सकते हैं। क्योंकि पति-पत्नी का सम्बन्ध भी वास्तव में मित्रता और बराबरी का है। पति जब तक पत्नी के साथ मित्रता का व्यवहार करता है, उसके सुख-दुःख का ख़याल रखता है, उसको हृदय से प्रेम करता है, तभी तक वह पति मानने योग्य है और तभी तक उसकी सेवा-भक्ति करना पत्नी का कर्त्तव्य है। पर जब पति मित्र के बजाय शत्रु के समान व्यवहार करता है, पत्नी की इज़्ज़त का ख़याल छोड़ कर उसे अपमानित करता है, उसके मरने-जीने की भी परवा नहीं करता, तो उस दशा में वह पति नहीं कहा जा सकता और पत्नी के ऊपर उसका कुछ भी अधिकार नहीं रह जाता। पाठकों ने हाल ही में समाचार-पत्रों में पढ़ा होगा कि मद्रास और पञ्जाब में दो नवयुवती स्त्रियाँ अपने पढ़े-लिखे पतियों द्वारा आग में जला कर मार डाली गईं! इसी तरह के और भी कितने ही मुक़दमे अदालतों में सदा आते रहते हैं। हमारी सम्मति में ऐसी दशा में पत्नी को पूर्ण अधिकार है कि जिस प्रकार मनुष्य चोर, डाकू या किसी अन्य आततायी से हर उपाय से अपनी रक्षा करता है, उसी प्रकार उस पति नामधारी के साथ व्यवहार करके अपनी रक्षा का उपाय करे।

अब बहुत सी देवियाँ प्रश्न करेंगी कि हम किस प्रकार पति का मुक़ाबला करें, और उसके अत्याचार से अपनी रक्षा करें? क्योंकि न तो हमारे हाथ में कुछ शक्ति है, न साधन। इसके उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि जो स्त्रियाँ पति-पत्नी के सम्बन्ध को धर्म-बन्धन समझती हैं, जो इस विषय में परलोक का भय करती हैं, और जो पति कैसा भी हो उसकी सेवा करना स्त्री का धर्म है, यही स्वर्ग का मार्ग है, पति के सिवाय कुछ सोचना भी पाप का मूल है, आदि, मूर्खता-जन्य तथा काल्पनिक सिद्धान्तों को मान रही हैं, उनसे तो कुछ कहना व्यर्थ है। उनका रास्ता तो यही है कि वे ईश्वर और दूसरे देवताओं से प्रार्थना करें और यदि उनमें कुछ सामर्थ्य होगी तो वह शास्त्रों के कथनानुसार सब बिगड़ी बातों को सुधार देंगे। पर जो देवियाँ पुरुषार्थ को मुख्य समझती हैं और जो पति की श्रेष्ठता के दक़ियानूसी विचारों की गुलाम नहीं हैं, वे अगर दृढ़-निश्चय कर लें और साहस से काम लें तो उनका कष्ट अवश्य दूर हो सकता है। और यदि कष्ट दूर न हो तथा उद्योग करने में ही उनके जीवन का अन्त हो जाय, तो कम से कम अन्य बहिनों का बहुत-कुछ उपकार हो सकता है और उनका रास्ता साफ़ हो सकता है। इसलिए शिक्षित, समझदार और कुछ साहस रखने वाली

बहिनों का कर्त्तव्य है कि इस मामले में आगे बढ़ें। अपने को अबला बतला कर निश्चेष्ट बैठे रहना भूल है। जैसे पुरुषों के चार हाथ-पैर और दिमाग़ है वैसे ही स्त्रियों के भी है। वे दृढ़ता के साथ खुले तौर पर इस बात को घोषित कर दें कि हम इस अत्याचार को न सहेंगी। यदि आवश्यकता पड़े तो न्यायालय द्वारा भी इस प्रश्न का निर्णय कराने में न हटें। यद्यपि अभी तक इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट क़ानून नहीं है, पर अगर ऐसे दस-बीस मामले होंगे और उनसे हलचल मचेगी तो नया क़ानून भी बन जायगा। पर ऐसा करने के पहले अन्तिम निश्चय कर लेना और भविष्य के लिए, जहाँ तक सम्भव हो, तैयारी कर लेना आवश्यकीय है। अगर वे साहस-पूर्वक उठ खड़ी होंगी तो बहुत सम्भव है कि उनको कोई न कोई सहायक भी मिल जायगी। जब हबशी गुलामों को अत्याचारी गोरे लोगों में सहायक मिल गए और उनका उद्धार हो गया तो कोई कारण नहीं कि भारतीय पुरुषों में से अपनी पीड़ित बहिनों का साथ देने वाले कुछ विशाल-हृदय सज्जन तैयार न हो जायँ। यह सच है कि अधिकांश सङ्कीर्ण-हृदय लोग उनकी निन्दा करेंगे, और यह भी सम्भव है कि उनको किसी-किसी मामले में वर्तमान प्रथा और नीति की सीमा उल्लङ्घन करना पड़े, पर यह याद रखना चाहिए कि काँटे को निकालने के लिए काँटे की ही ज़रूरत होती है। स्त्रियों की दशा जैसी हद दर्जे तक बिगड़ गई है, उसका सुधार सहज उपायों से न होगा, और इसके लिए समाज में क्रान्ति करनी ही पड़ेगी। क्रान्ति के समय कभी-कभी उचित-अनुचित का ध्यान भी छोड़ देना पड़ता है। इस प्रकार के पत्रों पर, हम उन लोगों को ध्यान दिलाना चाहते हैं जो तलाक़ प्रथा के विरोध करने का साहस करते हैं!

—स० 'चाँद'

* * *

विधवाओं के बेचने का रोज़गार

बुलन्दशहर से वैद्यरत्न पं० रघुवीरशरण जी शर्मा ने हमारे पास विधवा-विवाह का रोज़गार करने वाली संस्थाओं के सम्बन्ध में नीचे लिखी शिकायत भेजी है:—

श्रीमान् सम्पादक जी,

विधवा-विवाह आजकल समाज-सुधार-आन्दोलन का एक विशेष अङ्ग है। किन्तु नीचे की घटना से पता लगेगा कि लोगों ने इस लोकोपकारी कार्य को भी अपनी स्वार्थ-सिद्धि का ज़रिया बना रक्खा है। कानपुर से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'वर्तमान' के गत् २ मई के अङ्क में एक नोटिस "श्रीमती श्यामवती देवी, लेडी सुपरिण्टेण्डेण्ट वि० प्र० कमेटी कानपुर" की तरफ़ से चार विधवाओं के लिए वरों की आवश्यकता का प्रकाशित हुआ था। हमारे एक परिचित मित्र ने हमसे अपने विवाह के लिए लिखा-पढ़ी कराई। उत्तर में उक्त कार्यालय की तरफ़ से सूचना दी गई कि २) रुपया भेज कर उनका फ़ॉर्म-शादी मँगाया जाय, उसकी ख़ानापुरी हो जाने के बाद शादी का प्रबन्ध करा दिया जावेगा। इस आज्ञा के पालन-स्वरूप २) रुपया नक़द भेज कर हमने उनसे फ़ॉर्म भेजने की प्रार्थना की। उत्तर में कार्यालय की तरफ़ से छोटे साइज़ के ८ सफ़े का एक ट्रैक्ट बज़रिए बुक-पोस्ट हमारे पास भेज दिया गया, जिसका नाम 'प्रॉस्पेक्टस' या नियमावली हिन्दू मेरिज-ब्यूरो, कानपुर, है। इसमें लिखा है कि कम से कम २०) रुपया भेज कर उक्त ब्यूरो का सदस्य बन जाने पर वह हमारे लिए किसी विधवा की खोज करेंगे। उसी 'प्रॉस्पेक्टस' में हमें यह भी सूचना दी गई है कि यह फ़ीस तलाशी, ३००) तक आमदनी वालों से २०) है, जो कम से कम है, और ३००) रुपए मासिक से ज़्यादा आमदनी वालों से १०) रुपया फ़ी सदी के हिसाब से ली जाती है। यह किसी दशा में भी क़ाबिल-वापिसी न होगी। शादी के बाद शुकराना या इनाम के नाम से भी एक रक़म ब्यूरो लेता है, जो कम से कम १००) और उसके बाद आमदनी पर २५ प्रति सैकड़ा के हिसाब से ली जाती है।

इस प्रकार दो रुपया नक़द ख़र्च करने पर कानपुर के उक्त ब्यूरो ने अपने सम्बन्ध में हमें ऐसी बातें बतलाईं, जिन्हें न हमने पूछा ही था और न हम जानना ही चाहते थे। हमारी प्रार्थना तो यह थी कि जिन चार विधवाओं के लिए आप वरों की तलाश कर रहे हैं, उनमें से एक के उम्मेदवार हमारे दोस्त भी हैं। इसका जवाब यही हो सकता था कि उन चारों विधवाओं में से अमुक विधवा के साथ उनका सम्बन्ध हो सकता है या किसी के साथ नहीं हो सकता। किन्तु फ़ॉर्म के नाम से २) लेकर प्रॉस्पेक्टस और उसमें फैलाए हुए जाल में भोले-भाले लोगों को फँसाना हमारी दरख़्वास्त का जवाब नहीं हो सकता। यह हम नहीं समझ सके कि इस तरह के ब्यूरो क़ायम करके और फ़ीस वग़ैरह लेने की स्कीमें फैला कर विधवा-विवाह के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति किस तरह की जा सकती है? सच पूछिए तो यह एक प्रकार का व्यापार है, जिसमें कभी-कभी बुरे से बुरे उपायों और साधनों का अवलम्बन किया जाता है!!

२

इसी सम्बन्ध में श्रीयुत बेनीमाधव बाजपेयी, कानपुर से लिखते हैं:—

सम्पादक जी, 'चाँद'

उत्तरी भारत और ख़ासकर यू० पी० तथा पञ्जाब में इस समय स्त्रियों की ख़रीद-फ़रोख़्त ज़ोरों पर है। शायद ही कोई ऐसा शहर हो, जहाँ पर इस कार्य के लिए दो-चार अड्डे न बने हों। कानपुर भी इस रोज़गार का केन्द्र बना हुआ है, यद्यपि उनके नाम भिन्न-भिन्न हैं। इन संस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाले, इस व्यापार के दलाल, इस रोज़गार से मालामाल हो रहे हैं। यहाँ के कुछ आश्रम और मैरिज-ब्यूरो इस व्यापार की मण्डियाँ हैं, जहाँ नित्य-प्रति सैकड़ों के वारे-न्यारे होते हैं, स्त्रियों के सतीत्व पर दिन-दहाड़े डाका डाला जाता है, और विवाह के लिए पागल व्यक्तियों की जेबों पर हाथ साफ़ किया जाता है। इन संस्थाओं का सञ्चालन कहने के लिए तो कमेटी द्वारा होता है और उसकी बाक़ायदा रजिस्ट्री भी करा ली जाती है। परन्तु वास्तव में इनके अधिकांश मेम्बर और कार्यकर्ता इस पापमय व्यापार के हिस्सेदार होते हैं। यदि बाहरी और सच्चे सेवा-भाव से प्रेरित कोई व्यक्ति इनमें आ फँसता है, तो उसे संस्था की असली बातों से बिल्कुल अनजान रक्खा जाता है। इन संस्थाओं में कुछ मर्द और स्त्रियाँ ऐसी भी रहती हैं, जिनका कार्य भोली-भाली समाज-पीड़ित औरतों को फाँस कर लाना तथा उनके बेचने के लिए ग्राहक जुटाना होता है। औरतें इन संस्थाओं में आने पर पहले तो आश्रम के कार्यकर्त्ताओं की काम-तृप्ति का शिकार होती हैं, और बाद में किसी दूसरे आदमी के हाथ बेच दी जाती हैं, जहाँ वे आजीवन नारकीय यन्त्रणाएँ सहती और घुल-घुल कर मर जाती हैं। जब इन संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं को ऐसी औरतें नहीं मिलतीं तो वे आश्रम में नौकर रक्खी हुई फ़ाहिशा औरतों को ही बेच देते हैं। यह औरतें मौक़ा पाकर उस व्यक्ति का सब माल-असबाब समेट कर फिर आश्रम में ही भाग आती हैं और उस बेचारे को दीन-दुनिया कहीं का नहीं रखतीं!! कानपुर में ऐसी घटनाएँ अक्सर होती ही रहती हैं। कहा जाता है कि अभी हाल में रेल-बाज़ार के इसी प्रकार के एक आश्रम से एक स्त्री बागाराम नामी एक परदेशी के हाथ विवाह के रूप में १००) में बेच दी गई थी। परन्तु ग़ाज़ियाबाद पुलिस द्वारा मय उस स्त्री के सब आदमी गिरफ़्तार करके कानपुर लाए गए। इसी सम्बन्ध में आश्रम के कुछ कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार किए गए हैं और उन पर मामला चल रहा है!

जुही के एक आश्रम में भी एक परदेशी स्त्री आश्रम की एक कुटनी द्वारा फाँस कर लाई गई और वहाँ उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे कई दिन तक बन्द रक्खा गया तथा उस पर अत्याचार किया गया। बाद में वह एक दिन आश्रम से भाग निकली और कुछ भले आदमियों द्वारा स्थानीय हिन्दू-सभा के मन्त्री के पास भेजी गई।

कानपुर के अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि वे इस पाप-व्यापार को समूल नष्ट करने का प्रयत्न करें तथा संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं को उनके कारनामों के लिए उचित दण्ड दिलवाने की व्यवस्था करें। हिन्दू-समाज को भी खुले तौर से इस पाप-व्यापार का घोर विरोध करना चाहिए।

आजकल विधवा-आश्रमों के सम्बन्ध में इस प्रकार की—इससे भी भयङ्कर शिकायतें प्रायः

सुनने में आती हैं। 'चाँद' के पिछले अङ्क में भी हमने "अनाथालय या दूकानदारी" शीर्षक चिट्ठी प्रकाशित की थी, जिसमें विवाह के इच्छुक लोगों से रुपया माँगने की शिकायत की गई थी। उपर्युक्त दोनों चिट्ठियों से उस बात का और भी समर्थन होता है। इन चिट्ठियों के पढ़ने से निश्चय हो जाता है कि अवश्य ही कुछ लोग खाल ओढ़ कर—गधे से सिंह बने हुए—लोगों को धोखे में डाल रहे हैं। ये लोग ऊपर से समाज-सुधारक का स्वाँग बना कर विधवाओं की रक्षा का ढोंग करते हैं, पर दरअसल उनके भक्षक हैं। एक तो विधवा-विवाह का अभी प्रचार ही नाम-मात्र को हुआ है और अधिकांश पुरानी चाल के लोग उसके विरोधी बने हुए हैं। ऊपर से ये नीच, स्वार्थी लोग उसे उल्टा बदनाम कर रहे हैं, और उसके मार्ग में काँटे बो रहे हैं। सचमुच ये उन पुरानी चाल के अन्ध-विश्वासी लोगों से कहीं बढ़कर विधवा-विवाह के शत्रु हैं। पर इस बुराई के सुधारने का उपाय केवल पत्रों में उनकी शिकायत छपा देना नहीं है। इसके लिए उत्साही समाज-सुधारक नवयुवकों को ऐसे बेईमान लोगों के पीछे हाथ धोकर पड़ जाना चाहिए और कैसा भी बलिदान क्यों न करना पड़े, उनकी जड़ उखाड़ कर फेंक देनी चाहिए। साथ ही प्रामाणिक और माननीय लोगों द्वारा एक विशाल विधवा-गृह की स्थापना की जानी आवश्यकीय है जिससे विधवाओं को ऐसे कपटियों के फन्दे में फँसने को लाचार न होना पड़े।

—सं० 'चाँद'

* * *

(७११ पृष्ठ का शेषांश)

भर कर प्रसाद देते हैं और अपरिचितों को वही माशे भर की कुल्हिया और तोले भर का दोना। इस पर भी ठाकुर जी का दिवाला निकल जाता है। तब पञ्चामृत में गङ्गाजल की बाढ़ आ जाती है। गङ्गाजल की बाढ़ आते ही भक्तगणों का रेला भी बन्द! गङ्गाजल का प्रसाद कौन मकुआ लेता है। उसकी क्या कमी है—गङ्गा भरी पड़ी है। प्रसाद की भक्ति तो पञ्चामृत की कुल्हिया और दोने के ही साथ रहती है। जहाँ उनमें फ़र्क़ पड़ा, बस भक्ति भी बिदा हो गई।

यह दशा है; और ये ही भक्तगण हमारे जैसे लोगों को, जो इस पाखण्ड से कोसों दूर रहते हैं, नास्तिक कहते हैं। सम्पादक जी, अपने राम नास्तिक रत्ती भर भी नहीं हैं और न ठेठ आर्यसमाजी हैं कि कृष्ण और शिव को न मानते हों। बात केवल इतनी है कि जब तक हृदय में सच्ची श्रद्धा तथा भक्ति न हो, तब तक केवल लोगों को दिखाने के लिए, भक्तों की सूची में नाम लिखाने के लिए, भक्ति के बहाने, पिकनिक पार्टी, फलाहार और प्रसाद इत्यादि का मज़ा लूटने के लिए अथवा ईश्वर के सिर पर एहसान लादने के लिए कोई काम नहीं करते। यदि अपने राम के हृदय में श्रद्धा-भक्ति नहीं है, तो इसमें अपने राम का क्या अपराध? अपने राम तो बहुत प्रयत्न करते हैं कि कभी-कभी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो जाया करे। परन्तु जब कभी कुछ अङ्कुर प्रस्फुटित भी होता है, तो पाखण्डी भक्तों की लीला और देवताओं की छीछालेदर देख कर वह अङ्कुर मुरझा कर रह जाता है। उस समय यह सोच कर सन्तोष होता है कि इन भक्तों से तो हम अभक्त लाख दर्जे अच्छे हैं।

भवदीय,
विजयानन्द (दुबे जी)

* * *

पञ्जाब में औरतों की बिक्री

श्रीयुत गिरधारीलाल मेहरोत्रा ने, जो गुजरात (पञ्जाब) में चावल का व्यापार करते हैं, पञ्जाब में स्त्रियों की बिक्री के सम्बन्ध में नीचे लिखे आशय का पत्र भेजा है:—

श्रीमान् सहगल जी,

आपके 'चाँद' की एक-दो प्रतियाँ देखने से विदित हुआ कि आप निःस्वार्थ भाव से नारी-समाज की सेवा कर रहे हैं। उसके लिए तहेदिल से आपको धन्यवाद देता हूँ। आजकल अबला-जाति पर जो अत्याचार पञ्जाब

प्रान्त में हो रहे हैं, उनको देख कर हर एक इन्सान का दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। हमारे ज़िले के बहुत से देहाती, जिनमें अधिकांश सिक्ख या मुसलमान होते हैं, यू० पी०, सी० पी०, बिहार, बङ्गाल आदि में कपड़ा बेचने जाते हैं। जब वे घर वापस आते हैं, तो उनमें विरला ही आदमी ऐसा होगा, जो उधर से एक-दो औरतों को बहका कर न लाता हो। यहाँ लाकर ये औरतें गाँव-गाँव में बेची जाती हैं। हमारे ज़िले में इस तरह हर साल सैकड़ों औरतें यू० पी० और सी० पी० की लाई जाती हैं और उनकी ख़रीद-फ़रोख़्त खुले-आम होती है। क़ानून इन गुण्डों का कुछ नहीं बिगाड़ पाता। सैकड़ों औरतें मुसलमानों के घरों में जाती हैं और उनके बेचने वाले सिक्ख होते हैं। यू० पी० के गोंडा ज़िले की कितनी ही बालिकाएँ हमारी दूकान पर आती हैं, उनसे पूछने पर पता लगता है कि वे सब मुसलमानों के घरों में रहती हैं। उनकी दुख-भरी कहानी सुन कर रोंए खड़े हो जाते हैं। जितना पतन इस समय पञ्जाबी हिन्दू-पुरुष-समाज का हुआ है, उतना संसार में किसी का न हुआ होगा।

ये घटनाएं बतलाती हैं कि हमारे देश में आजकल स्त्री का दर्जा कितना गिरा दिया गया है, और साथ ही इनसे यह भी ज़ाहिर होता है कि हमारे देशवासियों का चरित्र कितना पतित हो गया है। कहने के लिए तो स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी, देवी, शक्ति-स्वरूपिणी आदि बतलाई जाती हैं, पर उनके साथ व्यवहार होता है गाय, भैंस आदि के समान। स्त्रियों के बेचने की इन घटनाओं से मालूम होता है कि ये लोग उनको दिल व दिमाग़ से रहित एक पशु ही समझते हैं। भारतीय स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि इस अपमानजनक स्थिति को अधिक समय तक सहन न करें और इसके विरुद्ध ऐसा तीव्र संग्राम शुरू करें कि औरतों के बेचने और ख़रीदने वालों को अपनी कामुकता का मज़ा पूरी तरह मालूम हो जाय।

यह सच है कि पञ्जाब में स्त्रियों की कमी है और वहाँ वालों को दूसरे प्रान्त की स्त्रियों से अपनी आवश्यकता की पूर्ति करनी पड़ती है। पर इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि वे दग़ा-फ़रेब से औरतों को भगावें और जानवरों की तरह ख़रीदें। इसका उपाय तो यही है कि वे प्रकट रूप में अपना योग्य स्त्रियों से विवाह करें और उनको जन्म-पर्यन्त अपनी अर्द्धाङ्गिनी बना कर रक्खें। अगर वे अच्छे पति सिद्ध होंगे और अपनी पत्नियों को सुख और सम्मान के साथ रक्खेंगे, तो कुछ दिनों में उनके साथ विवाह करने में किसी को आपत्ति न होगी।

—सं० 'चाँद'

* * *

तलाक़-प्रथा की आवश्यकता

बनारस से श्री० मुरलीशरण सहाय सिन्हा लिखते हैं:—

श्रीमान् सम्पादक जी,

हिन्दू-समाज की विधवाओं की संख्या के स्मरण-मात्र से ही कलेजा काँप उठता है। परन्तु कदाचित् अपने नाश के हेतु इसे ही काफ़ी न समझ कर, हिन्दू-समाज ने अनेक सधवा होते हुए विधवाओं को भी आश्रित कर रक्खा है। मेरा तात्पर्य उन अभागिनी स्त्रियों से है, जो अपने पति द्वारा ठुकराई हुई विधवा-सरीखा जीवन व्यतीत कर रही हैं। आपने समय-समय पर 'चाँद' द्वारा हिन्दू-विवाहोच्छेद (तलाक़) के विरोधियों के सम्मुख जो अबलाओं की दुर्दशा का वर्णन कर उनकी आँखें खोलने का उद्योग किया है, वह सर्वथा निष्फल नहीं कहा जा सकता। मैं स्वयं एक ऐसी बालिका को जानता हूँ जो निरपराधिनी होते हुए भी समाज द्वारा दण्डित हो रही है। जो महानुभाव हिन्दू-धर्म के प्रेमी तथा समाज के हितैषी हिन्दू-विवाहोच्छेद का विरोध कर अपनी सचाई का डङ्का पीटते हैं, उनके सम्मुख मैं इस दुखिया बहिन की दशा का वर्णन करता हूँ। यह बालिका बनारस के एक उच्च हिन्दू-घराने की सत्रह वर्ष की विवाहिता युवती है। ब्याह होने पर जब ससुराल गई, तो पति महाशय बोले नहीं और न अभी

कोई सम्बन्ध रखते हैं। उन्होंने अपना दूसरा ब्याह कर लिया है। उनकी उदासीनता का कारण एक अत्यन्त नासमझी की बात है। उनसे किसी ने कह दिया है कि इस बालिका का अपने बहनोई से अनुचित सम्बन्ध है। उन भलेमानुस ने इस पर विश्वास कर लिया। उनके ध्यान में यह बात नहीं आई कि वह स्वयं जाँच करके तब एक बालिका का जीवन नष्ट करते। उनको इसकी आवश्यकता भी क्या थी कि वह जाँचने का कष्ट उठाते। वह जानते थे कि एक छोड़ दूसरा ब्याह करूँगा, दूसरा छोड़ तीसरा। वह धन्यवाद देते होंगे हिन्दू-समाज को। मैंने स्वयं उस बालिका को देखा है। उसे आर्थिक कष्ट ज़रा भी नहीं है और पारिवारिक सुख भी यथोचित है, परन्तु हिन्दू-स्त्रियों के लिए जो कुछ है, पति है। यह सधवा होते हुए भी विधवा है। ऐसी कितनी ही सधवा होते हुए विधवाएँ हिन्दू-समाज के अन्याय के कारण कष्ट पा रही हैं। मैं हिन्दू-विवाहोच्छेद के विरोधियों से पूछना हूँ कि वह ऐसी 'सधवाओं' को क्या सलाह देते हैं?

जो लोग विवाहोच्छेद या तलाक़ की प्रथा का विरोध करते हैं, उनको इस घटना पर ध्यान देना चाहिए। ऐसी घटनाएँ घरों की बदनामी के ख़याल से प्रकट बहुत कम की जाती हैं, पर यदि कुछ भी खोज की जाय तो हर एक स्थान में ऐसे दस-पाँच उदाहरण मिल सकते हैं। ऐसी स्त्रियों की दशा बड़ी करुणाजनक होती है। एक कठोर बन्धन में डाल कर उनको स्वतन्त्रता हर ली जाती है, साथ ही उनको उनके स्वाभाविक अधिकारों से वञ्चित कर दिया जाता है, और दूसरा व्यक्ति उनके अधिकारों का उपयोग करता है। ऐसी हालत में दिल के भीतर सदा आग-सी जलते रहना स्वाभाविक है। सुकुमार और कोमल स्वभाव की बालिकाओं को इस प्रकार जलाने वाले समाज के कल्याण की कोई आशा नहीं की जा सकती। यह सच है कि अभी तक इस विषय में सरकार ने कोई क़ानून नहीं बनाया तो भी लोगों को इन कुरीतियों के विरुद्ध आन्दोलन उठाना चाहिए और आवश्यकता पड़े तो उनको अदालत में पहुँचाना चाहिए। इससे स्त्रियों का कुछ न कुछ हित अवश्य होगा, और कुछ समय तक इसी प्रकार उद्योग होता रहा तो ऐसा क़ानून भी बन जायगा।

—सं० 'चाँद'

* * *

बड़े घरों की लीला

इलाहाबाद के एक इज़्ज़तदार खत्री घराने की एक महिला ने, जो अपना नाम प्रकट करना नहीं चाहती, अपनी दुर्दशा का करुणाजनक वर्णन हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजा है। नीचे हम उस पत्र को अविकल रूप में प्रकाशित कर हैं :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

सादर नमस्ते!

मैं आज आपको अपनी दुःखभरी कहानी सुना रही हूँ। मैं ... ... (इलाहाबाद) में रहती हूँ। मैं एक खत्री-कुल की बेटी तथा स्त्री हूँ। मेरी उम्र इस समय १९ वर्ष की है। शादी हुए तीन साल हो गए। दो साल से पतिदेव के साथ रहती हूँ। उनकी उम्र २२ साल की है। घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है। मेरे ससुर जी व्यापार करते हैं; व्यापार में उन्हें काफ़ी लाभ है। पति-देवता कुछ नहीं करते, स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण घर ही पर बैठे रहते हैं।

यह सब होते हुए जैसा दुःखमय जीवन मुझे व्यतीत करना पड़ता है, वह मैं ही जानती हूँ। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जिस दिन सास जी की गालियाँ न सुननी पड़ती हों—और फिर गालियाँ भी ऐसी कि जो कलेजे में तीर की तरह चुभ जाती हैं। कभी-कभी तो मार भी बैठती हैं। खाना मुझे बहुत ही रूखा-सूखा मिलता है, पहनने के लिए फटे-पुराने वस्त्र दिए जाते हैं।

इन सब कारणों से, सम्पादक जी, मैं बहुत दुखी हूँ। पति महाशय तो मुझसे बहुत ही अप्रसन्न रहते हैं। मैंने उनसे कई बार इस अप्रसन्नता का कारण पूछा, परन्तु वह मुझसे बोलते तक नहीं, उलटे मारने के लिए दौड़ते

हैं। ऐसी दशा में मैं क्या करूँ? क्या आप मुझे इस दुःख से किसी प्रकार छुटकारा दिला सकते हैं? मैं आजन्म आपका उपकार नहीं भूलूँगी।

इस बहिन ने जिस बात की शिकायत की है, वह कोई नई नहीं है। हमारे यहाँ की ५० सैकड़ा से भी अधिक नई बहुओं को यही शिकायत रहती है। सब मामलों में नहीं तो अधिकांश में उनका दुःख वास्तविक होता है। अपने माँ-बाप के घर और परिचित व्यक्तियों को छोड़ कर एक नए घर, नवीन परिस्थिति और अपरिचित व्यक्तियों में आकर रहने से एक तो नई दुलहिन का मन यौंही व्यथित और उदास होता है। इतने पर भी यदि उसके साथ रूखेपन का व्यवहार किया जाय, रुआब ग़ालिब करने के लिए उसको डाँट-फटकार कर रक्खा जाय, उसके ऊपर एकाएक गृहस्थी का भारी बोझ डाल दिया जाय तो वहाँ उसका जी कैसे लग सकता है, कैसे वह प्रसन्न रह सकती है? जबकि सास उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार करती है और पति उससे किसी प्रकार का ताल्लुक़ नहीं रखता, तब एक १५ वर्ष की लड़की का जीवन कैसा असह्य हो रहा होगा, इसे अनुभवी लोग ही समझ सकते हैं। दूसरी बातों को छोड़ भी दें तो एक बात हमारी समझ में नहीं आती कि इस दुःखी बहिन को खाने-पहनने का कष्ट क्यों दिया जाता है, जब कि उसकी ससुराल काफ़ी धनवान है। इससे दो ही बातें समझी जा सकती हैं कि या तो वे लोग स्वभाव ही से दुष्ट हैं और पराए की लड़की के सुख-दुःख या मरने-जीने की परवा न करके, अपने काम से मतलब रखते हैं, अथवा वे किसी कारण अपने समधी से नाराज़ हो गए हैं और उसका बदला असहाय लड़की को दुःख देकर पूरा करते हैं। दोनों में से कोई भी कारण हो, यह उनके लिए बड़ी निन्दनीय और शर्म की बात है। अगर वे समझते हों कि हम अपनी बहू के या अपने घर के आदमी के साथ चाहे जैसा बर्ताव करें, दूसरे को उसमें बोलने का हक़ नहीं, तो यह उनकी बड़ी भूल है। बहुओं और स्त्रियों को निजी जायदाद समझ, मनमाना सताने का ज़माना अब लद गया। अदालतों से ऐसे कितने ही सास-ससुरों को सज़ा मिल चुकी है, जो अपनी बहुओं को मारते-पीटते और कष्ट पहुँचाते हैं। साथ ही एक बात यह भी कहना ज़रूरी है कि अगर वे अपनी बहू को पसन्द नहीं करते तो उसे क्यों नहीं छोड़ देते और उसके बाप के घर भेज देते? उस हालत में उसका दूसरा विवाह होकर वह इन कष्टों से छूट सकती है और उसकी वर्तमान ससुराल वाले भी अपनी इच्छानुकूल दूसरी लड़की से अपने लड़के का ब्याह कर सकते हैं। पर एक निर्बल और असहाय प्राणी को बन्धन से मुक्त भी न करना और कष्ट भी पहुँचाना मनुष्यता के विरुद्ध बात है और अब यह अधिक समय तक नहीं टिक सकती।

—सं० 'चाँद'

* * *

शुभ-चिन्ह

काशी आर्यसमाज-विधवाश्रम के मन्त्री श्री० चुन्नीलाल जी ने हमारे पास निम्न-लिखित पत्र भेजा है:—

सम्पादक जी 'चाँद'

सादर नमस्ते!

अगस्त मास के 'चाँद' में, 'अनाथालय या दूकानदारी' शीर्षक पत्र पढ़ कर और उस विवाहेच्छुक नवयुवक की बेकसी तथा कुछ अनाथालयों के अधिकारियों के अनुचित बर्ताव का हाल जान कर दुःख हुआ।

वास्तव में कुछ ऐसी संस्थाओं में कुछ ऐसे लोग घुस गए हैं, जो इस पवित्र कार्य को अपने अनुचित कार्यों से कलङ्कित कर रहे हैं। जिसके लिए प्रत्येक

विचारशील देश-हितैषी को दुःख तथा लज्जा मालूम होती है। आप कृपा कर उक्त सज्जन को सूचित कर दें कि हमारी शाखा—विधवा-आश्रम, नागौद—में एक हिन्दू-कन्या १५ वर्ष की कुँवारी, रङ्ग गहरा साँवला, घर के कामों में चतुर, दर्जा दो तक हिन्दी पढ़ी विवाह के लिए मौजूद है। अगर विधवा से विवाह करना चाहें तो १६ वर्ष की एक क्षत्री-विधवा है, जो दर्जा पाँच तक हिन्दी पढ़ी है और आर्यसामाजिक विचार की है, घर के कामों से अच्छी प्रकार वाक़िफ़ है। इनमें से जिससे वे विवाह करना चाहें, मुझसे पत्र-व्यवहार करें।

हमारे यहाँ स्त्री के नाम किसी प्रकार का धन नहीं जमा कराया जाता और न विवाह के उपलक्ष में दान माँगा जाता है। आश्रम के दो-एक ख़ास नियम हैं, जिनका पालन करना आवश्यक है। एक तो विवाह की रजिस्ट्री राज-नियमानुसार करानी होती है। दूसरे अपनी आमदनी, जायदाद और चाल-चलन के सम्बन्ध में स्थानीय आर्यसमाज के मन्त्री और प्रधान का प्रशंसा-पत्र भेजना चाहिए। तीसरे विवाहार्थी स्त्री-पुरुष की परस्पर बातचीत करा के दोनों के स्वीकार करने पर ही विवाह कराया जाता है।

हमें हर्ष है कि काशी का यह विधवाश्रम उन दोषों से मुक्त है, जो आजकल प्रायः ऐसी संस्थाओं में सुनने में आते हैं। वास्तव में जो व्यक्ति इस परोपकार के कार्य में हाथ डालें उनका प्रथम कर्त्तव्य है कि इस मामले में सचाई और शुद्धता के साथ व्यवहार करें। हम आशा करते हैं कि इस प्रकार की अन्य संस्थाओं के सञ्चालक भी इस उदाहरण पर ध्यान देंगे और विधवाओं या अनाथ कुमारियों का विवाह उनके कल्याण को दृष्टि में रखते हुए ही करेंगे, न कि अपने स्वार्थ को सिद्ध करने की नीयत से। हमें यह भी आशा है कि उपर्युक्त नवयुवक इस अवसर से लाभ उठाएँगे और सुयोग्य पत्नी प्राप्त करके सुखी हो सकेंगे।

—सं० 'चाँद'

* * *

कलियुगी साधू

बोरावड़ (जोधपुर) के श्री० शङ्करलाल कासट लिखते हैं :—

आज हमारे धर्मगुरुओं की, हमारे मन्दिरों के महन्तों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो रही है। आज वे अपने मुख्य उद्देश्य से पतित होकर, समाज में व्यभिचार, भ्रूणहत्यादि पापों की वृद्धि करके, हमारा सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं, और हम सब कुछ देखते हुए भी कानों में तेल डाले चुपचाप पड़े हैं।

ऐसा ही एक नारकीय काण्ड आज ग्राम बोरावड़ (ज़िला जोधपुर) में हो रहा है। इस ग्राम के एक प्रसिद्ध मन्दिर के महन्त का चेला, महन्ती का भावी उत्तराधिकारी एक नौजवान साधु है, जो अपने असद् आचरण द्वारा, अनेक अबलाओं का सतीत्व नष्ट करके, समाज में व्यभिचारादि पापों की निरन्तर वृद्धि कर रहा है। फिर भी ग्रामवासी इस तरफ़ से एकदम उदासीन हैं, और इस अत्याचार को रोकने की कुछ भी चेष्टा न कर, मौन धारे बैठे हैं। गत वर्ष इन्हीं दिनों में इसी विषय को लेकर ग्राम में भारी तूफ़ान उठा था, लेकिन न मालूम फिर भी क्या जान कर ग्रामवासी सज्जनगण इसका कुछ भी प्रतिकार न करके, चुप हो गए। मुझे तो यह यहाँ के मारवाड़ी-समाज की कायरता ही मालूम होती है। क्योंकि आज का अधिकांश मारवाड़ी-समाज इस कहावत के अनुसार कि 'अपनी जाँघ उघाड़ने से अपनी ही लाज जाती है' अपने दोषों को प्रकट करने की बनिस्बत बदनामी के डर से उन्हें छिपाने का ही प्रयत्न करता है।

मेरी ग्रामवासी सज्जनों से, नवयुवकों से प्रार्थना है कि वे इस व्यभिचार-लीला का अन्त करने का जी-जान से प्रयत्न करें, और अपने माथे से इस कलङ्क के टीके को शीघ्र पोंछ दें।

जिस प्रकार के साधू के कुकर्मों का वर्णन इस पत्र में किया गया है, वैसे साधू और महन्त आजकल देश के कोने-कोने में मौजूद हैं और

(शेष मैटर ७२५ पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)

हैज़े की दवा

कपूर ४० ग्रेन और सोहागा ४० ग्रेन लेकर दोनों को खूब खरल करे। एक-एक रत्ती हैज़ा होने पर खिलावे।

* * *

वन्ध्यापन दूर करने की दवा

पीपल की लाख बारीक पीस कपड़छान कर चार-चार माशे सुबह-शाम गाय के गरम दूध के साथ पिलावे।

* * *

गर्भ के बच्चे के लिए पुष्टिकारक दवा

सोंठ २० तोले, ब्राह्मी २० तोले, सौंफ २० तोले, सबको चूर्ण करके ३ पाव घी में भून कर डेढ़ सेर शक्कर (देशी) मिलावे। दो-दो तोला सुबह-शाम गरम दूध के साथ गर्भवती औरत को खिलावे।

* * *

गर्भ-धारण योग

जो स्त्री ऋतुकाल के समय गाभिन भैंस का दूध और बकरी का मूत्र मिलाकर पीवेगी, वह अवश्य गर्भ धारण करेगी।

* * *

मासिकधर्म बन्द करने की दवा

हर्र अथवा आँवले के बीज चार तोले तक मिश्री के साथ देने से स्त्री का मासिकधर्म तुरन्त बन्द हो जाता है।

* * *

पुत्र होने की दवा

चौथे दिन स्नान करके रति के पहले नागकेशर दूध के साथ पीवे—अवश्य गर्भ रह कर पुत्र होगा

—राघवचन्द्र शुक्ल

मलेरिया बुख़ार की दवा

मलेरिया बुख़ार में आधे नींबू के रस में ४ चम्मच पानी और दो चम्मच चीनी मिलाकर, दिन में तीन चार सेवन करने से दो-तीन दिन में मलेरिया से पीछा छूट जाता है।

* * *

सिर-दर्द की दवा

ऐसे सिर-दर्द में, जो पेट के विकारों के कारण हुआ करता है अथवा जो स्त्रियों के मासिकधर्म के बिगड़ने से होता है, निम्न उपचार करना लाभदायक है:—

यदि जीभ पर सफ़ेदी हो तो अम्ल की अधिकता जाननी चाहिए। उसे दूर करने के लिए ½ चम्मच सोडा एक ग्लास ठण्ढे पानी में डाल कर ४ ख़ुराक़ बनाकर एक-एक घण्टे बाद १ ख़ुराक़ ले। अथवा एक ग्लास दूध में एक चम्मच भर लकड़ी के कोयले का सफ़ूफ़ मिलाकर उसे दो-दो घण्टे के अन्तर से पिए। तत्काल लाभ होता है।

* * *

दमा और ख़ून की ख़राबी की दवा

मूली ख़ून की ख़राबी और दमे के लिए बहुत गुणकारी है। कच्ची मूली को महीन काट कर या पीस कर खाने से नसों की कमज़ोरी दूर होती है। बच्चों को (१ वर्ष के ऊपर) भी इस्तेमाल कराना चाहिए।

* * *

क़ै और दस्त की दवा

अदरक का रस हैज़ा, क़ै, दस्त, आँव, पेचिश, पेट फूलना, अनपच आदि में बहुत लाभ पहुँचाता है। मिचली रोकने के लिए भी यह उपयोगी है। यह रस ¼ से ½ चम्मच की मात्रा में जितनी बार ज़रूरत हो, दिया जा सकता है।

—किशोरी देवी

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

[लेखक—"पागल"]

चतुर्थ खण्ड

(अलिन्द)

मैं समझता था कि डॉक्टर सन्तोषानन्द के यहाँ तारा बीमार पड़ कर चिकित्सार्थ आई होगी, मगर यह मुझे स्वप्न में भी नहीं ख़याल था कि वही डॉक्टर साहब की स्त्री होगी, जिसकी बीमारी का हाल मैं महीने भर से सुन रहा था। इसलिए मैं उससे बड़ी तपाक से मिलने जा रहा था। क्योंकि मैं उसे अपनी ही तरह विदीर्ण-हृदया जानता था। और दुखी जनों को जितना सन्तोष दुखी जनों की सङ्गत में मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं भी नहीं। मगर ज्योंही मैं उसके कमरे में पहुँचा और माँ जी, जो तारा का सर अपनी गोद में लिए उसके बालों को सुलझा रही थीं, चिल्ला कर बोलीं—"अरे! अलिन्द, यहाँ कहाँ? देखते नहीं, डॉक्टर बाबू की स्त्री यहाँ लेटी हुई है?" त्योंही मैं भौंचक-सा होकर रह गया। मेरी मिलने की सारी ख़ुशी ताज्जुब में बदल गई। मैंने बौखला कर पीछे डॉक्टर साहब की ओर देखा। उन्होंने झट अपनी गर्दन झुका ली। तारा पर नज़र डाली, उसकी भी निगाह नीची हो गई।

तारा अब नाम-मात्र को तारा थी। न वह चेहरा था और न वह ढाँचा। वह सूख कर बिलकुल हड्डियों की ठठरी हो रही थी। उसकी यह हालत देख कर मेरा जी भर आया। मगर सङ्कोच के मारे दिल खोल कर मैं उससे अपनी सहानुभूति भी प्रकट न कर सका। क्योंकि उसे अब डॉक्टर साहब की स्त्री जान कर मैं इस सोच में पड़ गया कि मुझसे यह भेद जान-बूझ कर अब तक छिपाया क्यों गया। इस ख़याल ने मेरी तबीयत उस वक़्त ज़रूर कुछ फीकी कर दी थी। मगर बाद को ग़ौर करने पर मैं आप अपनी भूल पर लज्जित हुआ। क्योंकि अगर इन लोगों ने इस भेद को छिपाने में मुझसे चाल खेली थी तो मेरी ही भलाई के ख़याल से, मेरी ही आर्थिक सहायता की ख़ातिर। वरना मैं तारा को अपने परम मित्र की स्त्री जान कर उससे रुपए किस तरह ले सकता था? उस पर पति-पत्नी दोनों को अब झेंप और लज्जा में कुछ इस तरह पड़े पाकर, मानों वह लोग मूक-भाव से अपने अपराध को स्वीकार करके पछता रहे हैं, मैं और भी कट मरा। क्योंकि अपराधी के अपराध से अगर दिल में चोट पहुँचती है तो उसके पश्चात्ताप से तबीयत पिघल भी जाती है। और जहाँ अपराध की आड़ में किसी का उपकार किया जाय और फिर भी अपराधी उसके आगे अपने को दोषी ही समझे, तो उस उपकार किए गए हुए हृदय पर इसका कैसा असर पड़ेगा, इसे वही जान सकता है। इसलिए इस विषय पर स्वप्न में भी अब मैं अपनी ज़बान नहीं हिलाना चाहता था। यहाँ तक कि डॉक्टर साहब ने कई बार मुझसे एकान्त में इसका प्रसङ्ग छेड़ने का उद्योग किया मगर मैंने हर बार क़सम दिला कर उनका भी मुँह बन्द कर दिया, ताकि उनको अच्छी तरह से विश्वास हो जाय कि मेरा दिल बिलकुल साफ़ है और उन्हें इसकी बाबत ज़रा भी सफ़ाई देने की आवश्यकता नहीं है।

यों तो माँ जी अक्सर बहू जी का ज़िक्र मुझसे किया ही करती थीं, मगर उस दिन से, जिस दिन मुझसे और तारा से उनके सामने भेंट हुई थी, वह जब मिलती थीं तो उसी के सम्बन्ध में बातें करती थीं और इस ढङ्ग से कि मानों मैं तारा को पहले से जानता ही न था। क्योंकि उन्हें क्या ख़बर कि मेरी चित्रशाला में कौन व्यक्ति चित्र खिंचाने आता था और कौन नहीं। उन्होंने कभी उसका नाम लेकर मुझसे उसकी चर्चा भी नहीं की थी, वरना यह रहस्य पहले ही खुल जाता। माँ जी पुराने ख़याल की थीं और कुछ पढ़ी भी न थीं, इसलिए तारा का मुझसे मिलना उन्हें कुछ नागवार-सा ज़रूर मालूम हुआ। क्योंकि उनके मतानुसार प्रतिष्ठित कुल

की युवती स्त्रियों, विशेषकर बहुओं, को बहुत सख़्त पर्दा करना चाहिए। इसी विषय को लेकर वह उन दिनों मुझसे उसकी बातें करती थीं। उनकी नित्य की बातों का सारांश बस यही होता था कि बहू है तो बड़ी अच्छी, मगर उसमें इतना ऐब है कि वह टेढ़ी माँग निकालती है और पर्दा नहीं करती, यहाँ तक कि अपने पति के सामने भी मुँह खोले रहती है।

धीरे-धीरे तारा स्वास्थ्य लाभ करती गई और ईश्वर की कृपा से मेरे पैर में भी कुछ हरकत आ गई। जिस दिन मैं डण्डा छोड़ कर अपनी सुन्न टाँग घसीटता हुआ आठ-दस क़दम चला था, उस दिन तारा ने परसाद मँगवा कर विश्वनाथ जी के मन्दिर में चढ़ाने के लिए भेजा। यह देख कर माँ जी फूली न समाईं। फिर क्या था उनकी निगाहों में तारा के सब ऐब धुल गए और वह एक आदर्श देवी हो गई।

मेरा समय अधिकतर अब तारा की सङ्गत में कटने लगा। उन दिनों उसके चेहरे पर प्रसन्नता की काफ़ी झलक रहती थी, फिर भी उसकी हार्दिक वेदना की झाँई कभी-कभी उस पर छा जाती थी। यह रङ्गत देख कर मैं सोचने लगता था कि इसे कौन सा दुख हो सकता है? ईश्वर की कृपा से डॉक्टर साहब अमीर-कबीर थे, योग्य और समझदार थे। यद्यपि उनकी अवस्था तारा से बहुत अधिक थी, फिर भी वह युवक नहीं तो पूर्णरूप से अभी युवा ही थे। कोई बुरी लत भी उनमें न थी। ऐसी दशा में कोई कारण तारा के हृदय में ठेस लगने वाला मुझे दिखाई न पड़ा। दूसरी बात जो उसकी मुझे खटक रही थी वह यह थी कि इसने पत्र में मुझे यह क्यों लिखा था कि—"कोई भी प्रतिष्ठित सज्जन मेरा भाई कहाने में अपना अपमान समझेगा।" मैंने इन मसलों पर बहुत सर खपाया, मगर असलियत की कुछ भी थाह न मिली।

एक दिन सन्ध्या को मैं कुछ अजीब परेशानियों में पड़ा अपने ही कमरे में लेटा रह गया। मानसिक वेदनाओं ने तो मुझे पहले ही से पागल बना रक्खा था। उस पर बीमारी और अपनी मुहताजी के ख़्याल से मेरे दिमाग़ की हालत और भी ख़राब हो गई थी। इसलिए अब तबीयत ज़रा भी बेचैन होते ही मैं अपने को किसी तरह सँभाल नहीं पाता था; और हताश होकर चुपके-चुपके रोने लगता था। ऐसी ही कुछ हालत उस दिन भी कोई पुरानी बात याद आ जाने से मेरी हो गई थी। उसी वक़्त मेरे कमरे में तारा आ खड़ी हुई!!

तारा—अरे! आप अँधेरे में पड़े क्या कर रहे हैं? माफ़ कीजिएगा, मैं समझी थी आप इस वक़्त फुलवारी में होंगे।

चुपके से आँसू पोंछ कर और बहुत-कुछ अपनी आवाज़ को सँभाल कर मैंने कहा—हाँ, जब से कुछ-कुछ चलने-फिरने लगा हूँ, तब से दो-एक दफ़े डॉक्टर साहब की ज़िद पर फुलवारी में इस वक़्त चला गया था। मगर मेरी तो आदत सदा कमरे में पड़े रहने की है।

तारा ने मेरी आवाज़ से मेरी वेदना ताड़ ली। वह उत्सुक होकर बोली—क्या, हुआ क्या? आप ऐसे × × ×

इतना कहते-कहते वह एकाएक रुक कर मेज़ की तरफ़ लपकी और वहाँ चट लैम्प जला कर मेरे पास आकर कहने लगी—अरे! आप रो रहे हैं! कहिए, कहिए, कुशल तो है?

मैं—कुछ नहीं। ज़रा सर दुख रहा है। इसी से शायद आँखों से आँसू निकल आए होंगे।

तारा—ले रहने दीजिए, बहाना न कीजिए। यह किसी और को बताइएगा कि सर दुखने से आँसू निकलते हैं। मर्दों की आँखें इतनी हयादार नहीं होतीं।

इतनी देर में मेरी तबीयत कुछ सँभल चुकी थी। मगर तारा की बात में मर्दों की बुराई की आड़ में औरतों की बड़ाई की छिपी हुई झलक मुझे कुछ बुरी मालूम हुई। अतः मैंने ज़रा रूखे भाव से उत्तर दिया—मर्दों की आँखें अगर हयादार नहीं होतीं तो औरतों की तरह तोतेचश्म भी नहीं होतीं।

तारा—तोतेचश्म?

मैं—बल्कि उससे भी बत्तर।

तारा—सरासर झूठ। मैं नहीं मान सकती, यह गुण मर्दों ही में होता है।

मेरी हालत की पूछपाछ स्त्री और पुरुषों के चरित्रों की आलोचना के नीचे दब गई। मेरी तबीयत स्त्रियों से जली हुई थी ही, इसलिए इस बहस में मैं कुछ ऐसा जोश में आ गया कि बिना इस बात का ख़्याल किए हुए कि मैं किसी स्त्री के सामने कह रहा हूँ, मैं बड़े ही कड़े शब्दों में अपने दिल के फफोले फोड़ने लगा। दोनों

ही अपनी-अपनी टेक पर अड़े रहे। इतने में डॉक्टर साहब कहीं बाहर से आए, और उन पर हम लोगों ने इस झगड़े का फ़ैसला करने का भार सौंप दिया।

डॉक्टर साहब दोनों पक्ष के आक्षेपों को सुन कर मुस्करा कर बोले—यों प्रमाण-शून्य बातों से काम न चलेगा। तुम पुरुषों की बुराई करती हो और तुम स्त्रियों की, मगर दोनों में कोई भी अपने-अपने आक्षेपों का कारण नहीं बताता। इसलिए तुम दोनों अपने-अपने मामले में पहले अपना-अपना अनुभव विस्तार रूप में कहो तो अलबत्ता न्याय हो।

"माफ़ कीजिए, मैं आपका न्याय नहीं चाहती।"—यह कह कर तारा वहाँ से भाग खड़ी हुई।

उसके जाने के बाद सन्तोषानन्द ने कहा—आज सेठ भैरोंनाथ के यहाँ मैं बुलाया गया था, जो इन दिनों उसी कोठी में रहते हैं जिसमें जहानारा ठहरी हुई थी। तुम तो उन्हें अच्छी तरह से जानते होगे; क्योंकि तुम्हारी बनाई हुई उनकी तस्वीर उनके कमरे में लगी हुई है। उन्होंने उसे दिखला कर ख़ुद ही कहा कि यह 'अलिन्द' की खींची हुई है।......क्यों, तुम चौंके क्यों? तुम्हारा चेहरा इतना पीला क्यों पड़ गया?

मैं—क्या बताऊँ डॉक्टर! बस पुरानी बातों की याद न दिलाओ।

डॉक्टर—इसमें तुम्हारी पुरानी बातें कैसी?

मैं—हाय! वही तस्वीर तो मेरे सारे अनर्थों की मूल है। न जाने किस कुसाइत में मैंने उसे खींचा था। उसी को खींचते समय तो मुझसे पहले-पहल सरो से भेंट हुई थी।

डॉक्टर—सेठ जी के यहाँ?

मैं—हाँ। क्योंकि वही तो उसके पिता हैं। और वह कोठी भी उन्हीं की है। जब जहानारा यहाँ थी तब सेठ जी कलकत्ते में रहते थे, क्योंकि वहाँ इनका दियासलाइयों का एक बड़ा भारी कारख़ाना था। इसलिए उन दिनों यह कोठी किराए पर चलती थी। क्या बताऊँ, जहानारा तो यहाँ से चली गई, मगर वह कम्बख़्त मानो अपनी रूह उसी कोठी में छोड़ गई थी, तभी तो शायद मैं उसका पड़ोस त्याग न सका और उफ़! इस मुसीबत में फँसा।

डॉक्टर—अच्छा भाई, इस मुसीबत में किस तरह पड़े, यह तो बताओ।

मैं—कहता हूँ डॉक्टर! ज़रा सब्र करो। कुछ तो अपने दिल को थाम लेने दो। आह! जब उन दिनों का ख़याल करता हूँ, मेरे रोएँ-रोएँ छाती फाड़ के रो उठते हैं। हाय! उस ज़माने में दुनिया कितनी प्यारी थी, कह नहीं सकता।

(क्रमशः)

* * *

(७२१ पृष्ठ का शेषांश)

हिन्दू-समाज की नैया तो पाप के भार से डूब रही है। पर इस बात की आशा बहुत कम है कि इनका सुधार जल्दी हो सकेगा; क्योंकि हमारे यहाँ की जनता इस विषय में बहुत ही अन्धी है, साधू के वेश को देखते ही उसे पूजनीय मान लेती है। इसका उपाय यही है कि उत्साही और साहसी नवयुवक इनके विरुद्ध तीव्र आन्दोलन करें और सिक्खों की तरह सार्वजनिक मन्दिरों पर पञ्चायती अधिकार क़ायम करने का प्रयत्न करें। साथ ही ऐसे साधुओं की क़लई जनता में हमेशा खोलते रहना चाहिए और किसी तरह उन्हें चैन न लेने देना चाहिए। इस बात पर ज़ोर देना चाहिए कि वे साधू या तो एक स्त्री को पत्नी-रूप में ग्रहण करके गृहस्थ-जीवन व्यतीत करें या सच्चरित्र रह कर साधुओं के कर्त्तव्यों को पूरा करें। इस प्रयत्न में जो कष्ट आवें उन्हें सहर्ष सहें। इसी एक उपाय से समाज का यह कलङ्क दूर हो सकता है।

—सं० 'चाँद'
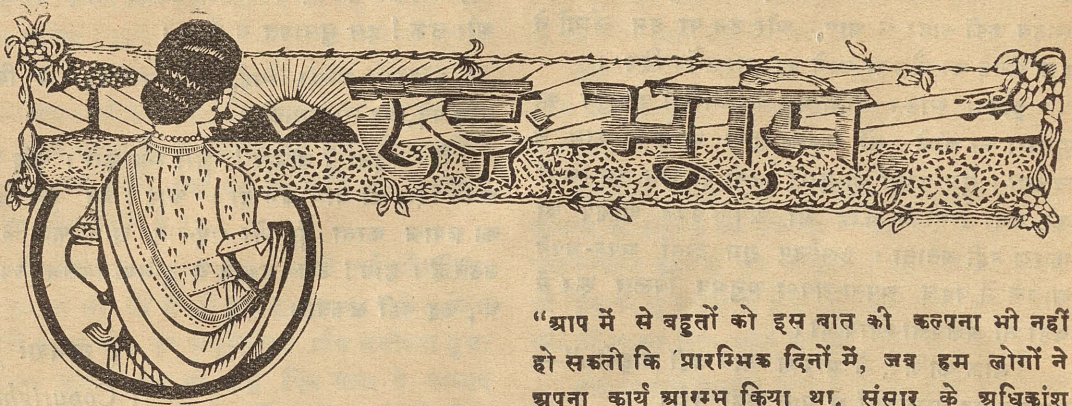
अन्तर्राष्ट्रीय महिला-कॉङ्ग्रेस

जर्मनी की राजधानी बर्लिन में अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सङ्घ (International Alliance of Women for suffrage and Equal Citizenship) की रजत जयन्ती का उत्सव विगत जून मास के मध्य में बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ है। यह सार्वभौम संस्था पिछले २५ वर्षों से समस्त संसार की स्त्रियों को मताधिकार तथा पुरुषों के समान नागरिकता के अधिकार दिलाने के लिए प्रचण्ड आन्दोलन कर रही है। इस संस्था को अपने महान् लक्ष्य की पूर्ति में अब तक कितनी सफलता मिली है, इसका थोड़ा सा परिचय उस सन्देश से मिल सकता है, जिसे श्रीमती कैरी चैपमैन कैट ने न्यूयॉर्क से बर्लिन कॉङ्ग्रेस की सदस्याओं के पास भेजा था। श्रीमती कैट अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सङ्घ की पुरानी, सुयोग्य और सम्मानित सञ्चालिकाओं में से एक हैं। आप ही के द्वारा सन् १९०२ ई० में सङ्घ की स्थापना हुई थी और उसके बाद निरन्तर २० वर्षों तक आपने अथक तत्परता और असीम उत्साह से सङ्घ की सभानेत्री का कार्य सञ्चालन किया है। श्रीमती जी ने बर्लिन-कॉङ्ग्रेस में सम्मिलित न हो सकने के कारण कॉङ्ग्रेस की सदस्याओं और कार्यकर्त्ता-महिलाओं के पास एक सन्देश भेजा था, जो बड़ा ही उद्बोधनपूर्ण और साथ ही मनोहर है। श्रीमती कैट उपरोक्त सन्देश में एक स्थान पर कॉङ्ग्रेस के प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए कहती हैं—

"आप में से बहुतों को इस बात की कल्पना भी नहीं हो सकती कि प्रारम्भिक दिनों में, जब हम लोगों ने अपना कार्य आरम्भ किया था, संसार के अधिकांश लोग स्त्रियों के मताधिकार को कितनी घृणा और कटुता की दृष्टि से देखते थे। जर्मनी और ऑस्ट्रिया में तो इस घृणा और विरोध का भाव इतना प्रबल था कि इन देशों ने क़ानून बना कर स्त्रियों के राजनीति में भाग लेने का निषेध किया था और कोई भी संस्था, जो स्त्रियों को राष्ट्रीय कार्यों में मताधिकार दिलाने की चर्चा करती थी, इन दोनों देशों में ग़ैर-क़ानूनी समझी जाती थी! उस निराशा और अन्धकार के युग में यह आशा करना ही बहुत बड़े साहस और शक्ति का काम था कि किसी सुदूर भविष्य में स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति मताधिकार तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त होंगी। उस समय कोई स्वप्न में भी यह ख़याल नहीं कर सकता था कि जर्मनी के नगर-परिषदों, प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं और राष्ट्रीय महासभा (रीष्टैग) में स्त्री-सदस्याओं की संख्या संसार के सभी राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक होगी!"

श्रीमती कैरी चैपमैन कैट ने उपरोक्त सन्देश में अपने विराट् आन्दोलन के जिन प्रारम्भिक दिनों का वर्णन किया है, उन दिनों यूरोप के प्रायः सभी देशों में जर्मनी के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ प्रिन्स बिस्मार्क का यह सिद्धान्त प्रचलित था कि स्त्रियों का कार्यक्षेत्र केवल "बालकों, पाकशालाओं और मन्दिरों" तक ही परिमित है। आरम्भ के उस निराशामय वातावरण को देखते हुए तथा आधुनिक युग में स्त्रियों की उन्नति और उसके प्रति पुरुष-जाति की उदार भावनाओं पर विचार करते हुए, यह कहना पड़ता है कि विगत २५ वर्षों के अल्प-काल में अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सङ्घ को स्त्री-जाति की

उन्नति और उसकी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने में जो सफलता मिली है, वह आशातीत, गौरवमय और महान् है। संसार की कोई भी संस्था इतने थोड़े समय में इतनी महान् सफलता प्राप्त करके अपने सौभाग्य पर गर्व कर सकती है! और उसका ऐसा करना सर्वथा उचित भी होगा!

बर्लिन की अन्तर्राष्ट्रीय महिला-कॉङ्ग्रेस में संसार के भिन्न-भिन्न ४५ स्वतन्त्र देशों की प्रतिनिधि-महिलाएँ उपस्थित हुई थीं। भारतवर्ष की ओर से श्रीमती जिन-

अन्तर्राष्ट्रीय महिला-कॉङ्ग्रेस (बर्लिन) में भारतीय प्रतिनिधि

दाईं तरफ़ से बाईं ओर—श्रीमती धनवन्ती रामराव, एम० ए० (सभानेत्री), मिसेज़ डोरोथी जिनराजदास, मिसेज़ आचम्मा मत्थाई, श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय, मिस रामकृष्ण।

राजदास, श्रीमती मत्थाई, श्रीमती धनवन्ती रामराव, श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय, श्रीमती सरोजनी नायडू और कुमारी रामकृष्ण उपस्थित थीं। भारतवर्ष के स्वतन्त्र राष्ट्र न होने के कारण भारतीय प्रतिनिधियों को अन्तर्राष्ट्रीय परिषदों में प्रायः जो कष्ट और अपमान सहन करना पड़ता है, वही कष्ट और अपमान भारतवर्ष के महिला-प्रतिनिधियों को बर्लिन-कॉङ्ग्रेस में सहन करना पड़ा था। कॉङ्ग्रेस में सम्मिलित होने वाले भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल की नेत्री श्रीमती धनवन्ती रामराव कॉङ्ग्रेस-सम्बन्धी अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखती हैं :—

"Really it is at international functions of this nature that we realise how humiliating is our state. Tiny specks like Iceland and Jugo Slavia receive consideration as nations with independent consultations and we—tremendous India—can claim no real status as a nation!!"

अर्थात्—"इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में ही हमें भली-भाँति इस बात का ज्ञान हो पाता है कि वास्तव में हमारी अवस्था कितनी अपमानजनक है। आइसलैण्ड और जुगोस्लाविया के समान क्षुद्र प्रदेशों की गणना स्वतन्त्र देशों में होती है और उनकी सम्मति का आदर किया जाता है; किन्तु हम भारतवासियों का—विशाल भारत के प्रतिनिधियों का—संसार के स्वतन्त्र देशों की श्रेणी में कोई स्थान नहीं है!!"

इतनी असुविधाओं के होते हुए भी भारतीय महिला-मण्डल की सम्मतियों को अन्तर्राष्ट्रीय महिला-कॉङ्ग्रेस में जो उज्ज्वल विजय प्राप्त हुई है, उसके लिए भारत के महिला-प्रतिनिधियों की योग्यता और कार्य-तत्परता की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। वर्तमान शासन में भारतीय महिलाओं को अपने नैसर्गिक अधिकारों की रक्षा और उपयोग करने में कैसी

मिस रईसुन्निसा बेगम

आप हैदराबाद (निज़ाम) की रहने वाली एक प्रतिभाशाली बालिका हैं जो हाल ही में इङ्गलैण्ड डॉक्टरी पढ़ने गई हैं।

दुस्तर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, इसका वर्णन करते हुए श्रीमती मथाई ने बड़े ही मार्मिक और प्रभावशाली शब्दों में कहा कि भारतीय स्त्रियों को राजनीतिक मताधिकार प्राप्त होते हुए भी यह उनके लिए सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि भारतीय नियमों के अनुसार मतदाता के पास सम्पत्ति या जायदाद का होना आवश्यक है; किन्तु भारतवर्ष में स्त्रियाँ न तो पैतृक धन की उत्तराधिकारिणी हो सकती हैं और न उन्हें स्वयं धन उपार्जन करने की सुविधा ही प्राप्त है। श्रीमती मथाई ने भारतीय स्त्रियों की शोचनीय अवस्था का वर्णन करते हुए यह भी कहा कि भारतवर्ष में आजकल जो अङ्गरेज़ी शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है, वह भारतीय महिलाओं के हित की दृष्टि से सर्वथा अनुपयोगी है, क्योंकि अधिकांश भारतीय महिलाओं का विवाह बाल्यावस्था में ही हो जाने के कारण, वे अङ्गरेज़ी स्कूलों और कॉलेजों की शिक्षा से वञ्चित रह जाती हैं और ये स्कूल और कॉलेज उन्हें घरेलू काम-धन्धों की शिक्षा नहीं देते, जो उनके जीवन का प्रधान कर्त्तव्य है। भारतीय स्त्रियों की शिक्षा-सम्बन्धी कठिनाइयाँ तब तक दूर नहीं हो सकतीं, जब तक विवाह की छोटी से छोटी अवस्था स्त्रियों के लिए १४ वर्ष और पुरुषों के लिए १८ वर्ष निश्चित नहीं कर दी जायगी। ब्रिटिश प्रतिनिधि-मण्डल का प्रस्ताव था कि स्त्रियों और पुरुषों दोनों के विवाह की कम से कम अवस्था १६ वर्ष निश्चित की जानी चाहिए। भारतीय प्रतिनिधियों ने इस मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव का घोर विरोध किया और इसमें संशोधन उपस्थित करते हुए बताया कि भारतवर्ष जैसे परतन्त्र और पददलित राष्ट्र का, जिसके अधिकांश भागों में अभी भी बाल-विवाह की घातक कुप्रथा प्रचलित है, कल्याण इसी बात में है कि पुरुषों के विवाह की कम से कम अवस्था १८ वर्ष से कम किसी प्रकार निश्चित न की जाय। इस संशोधन के पक्ष में भाषण करते हुए श्रीमती धनवन्ती रामराव ने बड़े ही प्रभावोत्पादक और गम्भीर शब्दों में कहा कि ब्रिटिश प्रतिनिधि-मण्डल के प्रस्ताव के पास होने का तात्कालिक परिणाम यह होगा कि भारतीय महिला-सङ्घ ने भारतवर्ष से बाल-विवाह की कुप्रथा को दूर करने के लिए अब तक जितने भी प्रयत्न किए हैं, उन सभी प्रयत्नों की सफलता पर पानी फिर जायगा; अतएव भारतीय प्रतिनिधि किसी भी ऐसे प्रस्ताव का विरोध करने तथा उसमें संशोधन उपस्थित करने के लिए विवश हैं, जिसके द्वारा उनके वर्षों का परिश्रम क्षण भर में व्यर्थ हो सकता है। दो दिनों की गरमागरम बहस के अन्त में यह प्रस्ताव एक विशाल बहुमत से पास हुआ कि पुरुषों के लिए विवाह की कम से कम अवस्था १८ और स्त्रियों की १६ वर्ष की होनी चाहिए।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल की गौरवमय विजय केवल भाषणों और प्रस्तावों तक ही परिमित न थी; वह यूरोप के अशान्त वक्षःस्थल पर भारतवर्ष के विश्व-विजयी तिरङ्गे झण्डे की स्थापना करके युद्ध और सङ्घर्ष से क्लान्त यूरोपियन देशों को शान्ति का सन्देश सुनाने में भी सफल हो सकी थी! विगत महायुद्ध के पश्चात् जब से यूरोपियन राष्ट्रों को युद्ध के कड़वे फलों का कुछ स्वाद मिला है, तभी से यूरोप में विश्व-शान्ति का आन्दोलन किया जा रहा है। थोड़े दिनों से यह आन्दोलन बहुत ही व्यापक और प्रबल हो उठा है। बर्लिन-कॉङ्ग्रेस के उद्घाटन के आरम्भ में भी एक विशाल शान्ति प्रदर्शन का आयोजन किया गया था। भारत के प्रतिनिधियों को भी इस प्रदर्शन में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। परतन्त्र भारत की महिला-प्रतिनिधियों के पास भारत के राष्ट्रीय झण्डे के अतिरिक्त और ऐसी वस्तु ही कौन सी था, जिसे वे विश्व-शान्ति के प्रदर्शन में समर्पित कर सकते थे! उन्होंने बर्लिन-कॉङ्ग्रेस की सभानेत्री से प्रस्ताव किया कि शान्ति-प्रदर्शन में भारत के राष्ट्रीय झण्डे को स्थान मिलना चाहिए। सभानेत्री ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। उनकी अनुमति मिल जाने पर भारत की प्रतिनिधि-महिलाओं ने रात भर में ही झण्डा प्रस्तुत करने का सङ्कल्प कर लिया; उन्होंने अपनी रेशमी साड़ियों से लाल, हरा और उजला, तीन टुकड़े फाड़ कर रात के दो बजे तक राष्ट्रीय झण्डा सीकर तैयार कर लिया। दूसरे दिन संसार के सभी स्वतन्त्र देशों की पताकाओं के साथ-साथ भारत का राष्ट्रीय झण्डा भी फहराया गया और कॉङ्ग्रेस की कार्यवाही समाप्त होने तक अन्य पताकाओं की भाँति यह झण्डा भी कॉङ्ग्रेस-पण्डप में अपने देश के प्रतिनिधि-मण्डल के पीछे फहराता रहा था। धन्य है भारत का वह तिरङ्गा राष्ट्रीय झण्डा, जिसने बिना एक बूँद भी रक्त बहाए यूरोपीय महाभारत की लीलाभूमि में अपनी विमल कीर्ति और उज्ज्वल सन्देश का प्रचार किया, और धन्य हैं वे महिलाएँ, जिन्होंने प्रेम और आत्मबल के द्वारा परतन्त्र भारत के राष्ट्रीय झण्डे को स्वतन्त्र देशों के झण्डों के बीच में स्थापित करके अपने प्यारे देश का मस्तक ऊँचा कर दिया!!

बर्लिन-कॉङ्ग्रेस ने संसार की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को उन्नत बनाने के सम्बन्ध में जो मुख्य प्रस्ताव पास किए हैं, उनमें से कुछ का आशय इस प्रकार है:—

(१) सभी देशों में विवाह की अवस्था स्त्रियों के लिए कम से कम १६ वर्ष और पुरुषों के लिए कम से कम १८ वर्ष होनी चाहिए।

(२) स्त्रियों की स्थिति, चाहे वे विवाहित हों अथवा अविवाहित, क़ानून की दृष्टि से पुरुषों के समान ही होनी

मिस मेरी माथन बी० ए०

आप बङ्गलोर की एक महिला-रत्न हैं। शीघ्र ही आप उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अभिप्राय से इङ्गलैण्ड जाने वाली हैं।

चाहिए; औरस सन्तानों पर माता का उतना ही अधिकार होगा, जितना पिता का; बालकों के सम्बन्ध में माता-पिता में यदि कोई मतभेद हो, तो इसका निर्णय न्यायालय से कराया जा सकता है; न्यायालय में जाने का अधिकार माता और पिता को समान रूप से प्राप्त है; माता और पिता में सम्बन्ध-विच्छेद होने पर बालक किसके संरक्षण में रहेगा, इस प्रश्न का निर्णय केवल बालक के हिताहित की दृष्टि से किया जाना चाहिए।

(३) महिला-पुलिस का कार्य स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी

झगड़ों की जाँच करने, उनके सम्बन्ध में गवाही लेने और स्त्रियों तथा बच्चों के झगड़ों को निबटाने में बहुत ही सन्तोषजनक प्रमाणित हुआ है; अतः पुलिस-विभाग में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान ही उच्च पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए।

(४) यह कॉङ्ग्रेस सब प्रकार के युद्धों की निन्दा करती है और उनके लिए विषैले गैसों के प्रस्तुत किए

श्रीमती सुखीबाई
आप रोहरी (सिन्ध) के स्कूल-बोर्ड की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

जाने वाले निन्दनीय आविष्कारों की घोर निन्दा करती है, क्योंकि कॉङ्ग्रेस का विश्वास है कि रसायन-विद्या की वर्तमान उन्नत अवस्था में यह प्रथा मानव-समाज के लिए घातक सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकती।

(५) सभी देशों के क़ानून और उनके व्यवहार में इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि पुरुष अपनी अनौरस सन्तान के प्रति अपने आर्थिक और नैतिक उत्तरदायित्व का पालन करें और वे ऐसी सन्तान की माता का पालन गर्भधारण, बालकोत्पत्ति और बालकोत्पत्ति के बाद तक करने के लिए बाध्य किए जावें।

(६) सरकारी ऑफ़िसों में विवाहों की रिजिस्ट्री न करने के कारण स्त्रियों के व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है; इसलिए कॉङ्ग्रेस की सम्मति है कि जिन देशों में विवाहों की रिजिस्ट्री की प्रथा अभी तक आरम्भ नहीं हुई है, उनमें इस प्रथा को शीघ्र आरम्भ कर देना चाहिए; रिजिस्ट्री की प्रथा के कारण विवाह के धार्मिक कृत्य में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़नी चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सङ्घ का यह पवित्र उद्देश्य है कि वह समस्त संसार की स्त्रियों की नैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति को पुरुषों के समान उन्नत बनावे। हम हृदय की समस्त शक्ति के साथ सङ्घ की उपरोक्त शुभेच्छाओं का स्वागत करते हैं। हमें आशा है कि भारतीय महिलाएँ उक्त सिद्धान्तों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगी और भारतीय स्त्रियों के पुनरुद्धार के महान् कार्य में इन सिद्धान्तों से अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगी, सर्व शक्तिमान् परमात्मा उनका सहायक हो!

* * *

सतीत्व का मूल्य

जिस पवित्र भारतभूमि में चक्रवर्ती सम्राट् तक किसी दीन से दीन मनुष्य की स्त्री की ओर अपमान की दृष्टि से नहीं देख सकते थे, उसी भारतभूमि में अङ्गरेज़ी शासन के प्रताप से आज भारतीय देवियों के सतीत्व का मूल्य सोने और चाँदी के टुकड़ों की संख्या में कूता जा रहा है! यह भारतवासियों के पतन और नपुंसकता का ही परिचायक है कि देश के जिन शासकों को देवियों के धर्म और महिलाओं के सम्मान की रक्षा के लिए प्रजा के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, वे ही अनियन्त्रित प्रभुत्व और निरङ्कुश स्वेच्छाचार से अन्ध होकर भारतीय ललनाओं को अपमानित और उत्पीड़ित कर रहे हैं! और भारतीय प्रजा इन सभी अत्याचारों को निर्विरोध भाव से सहन कर रही है! नपुंसकता का यह रूप कितना निर्मम है! राजवंश के कुल-कलङ्क पटियाला-नरेश ने, १२ वर्ष हुए, सरदार अमरसिंह नामक एक सज्जन की

पत्नी का अपहरण करके बलात् उन्हें अपनी परिणीता बना लिया था, जिसका भण्डा अभी हाल ही में फूटा है ! इण्डियन स्टेट्स पीपुल कॉन्फ्रेन्स (भारतीय रियासतों का प्रजा-सङ्घ) को एक महत्वपूर्ण पत्र प्राप्त हुआ है, जिससे इस मामले पर बहुत प्रकाश पड़ता है। इस पत्र पर रियासत फुलकियाँ—पटियाला, नाभा, झींद—के भूतपूर्व पोलिटिकल एजेण्ट मि० क्रैम्प का हस्ताक्षर है। इस पत्र का आशय यह है कि पटियाला-नरेश ने जब सरदार अमरसिंह की धर्मपत्नी का हरण कर लिया, तो सरदार अमरसिंह ने महाराजा से बहुत-अनुनय-विनय किया कि उनकी पत्नी उन्हें लौटा दी जाय; पर महाराजा पटियाला ने सरदार अमरसिंह की छीनी हुई पत्नी को छोड़ना स्वीकार न किया। इसके बाद सरदार अमरसिंह ने भारत-सरकार तथा पञ्जाब-सरकार को, जिसके अधीन उस समय पटियाला रियासत थी, इस सम्बन्ध में कई प्रार्थना-पत्र भेजे; जिनमें सरदार साहब रोए-गिड़गिड़ाए—सब कुछ इसलिए किया कि उनकी विवाहिता पत्नी उन्हें वापस दिला दी जाय ! पर इसका कोई परिणाम न हुआ। कई महीनों के बाद सरदार अमरसिंह को एक सरकारी पत्र मिला, जिसमें पोलिटिकल एजेण्ट मि० क्रैम्प का हस्ताक्षर था तथा जिसमें लिखा था कि भारत-सरकार आपकी धर्म-पत्नी को महाराजा पटियाला से वापस लेकर आपको देने में सर्वथा असमर्थ है। यदि आप चाहें तो आपकी स्त्री के मूल्य-स्वरूप नक़द बीस हज़ार रुपए महाराजा पटियाला से लेकर आपको दिए जा सकते हैं !!!

अपनी धर्मपत्नी के सतीत्व का मूल्य २०,००० या २० करोड़ ही रुपए सही—लेकर कौन कुलाङ्गार उसे एक गुण्डे के हाथ बेचना चाहेगा ? सरदार अमरसिंह जी ने भी तिरस्कारपूर्वक इन चमकते हुए रुपयों को ठुकरा कर अपने आत्म-सम्मान का परिचय दिया। उन्होंने न्याय के नाम पर अन्याय और शान्ति के नाम पर अशान्ति के प्रणेता प्रत्येक ज़िम्मेदार शासक के सामने रो-रोकर अपने मनो-भावों को व्यक्त करने का निष्फल प्रयत्न किया; पर ग़ुलाम जाति में उत्पन्न हुए शरीर का मूल्य ही क्या हो सकता है ? जिस नियम के अनुसार रेल-सम्बन्धी दुर्घटनाओं में मृत्यु हो जाने के कारण मृतक के सगे-सम्बन्धियों को —यदि मृतक मध्यम परिस्थिति का हो—तो १०००-१५०० रुपए देकर मामला तै कर दिया जाता है, उसी नियम के अनुसार सरदार अमरसिंह की स्त्री के सतीत्व का मूल्य शिमला-शैल की चोटियों पर बसने वाले महा-प्रभुओं ने २०,००० रुपए आँक कर अपनी दरिया-दिली का परिचय दिया ! बार-बार इस कृपा को ठुकराते देख कर पोलिटिकल एजेण्ट क्रैम्प साहब ने, जो भारतीय ख़ज़ाने से देशी रियासतों में अन्याय को रोकने के लिए वेतन

मिस पली जॉर्ज, बी० ए०

आप ट्रावनकोर में रहने वाली एक प्रतिभाशालिनी मद्रासी महिला-रत्न हैं। आप हाल ही में बरमिङ्घम (Birmingham) विश्वविद्यालय से "सोशल सर्विस" की परीक्षा पास करके लौटी हैं।

पाते हैं, सरदार अमरसिंह जी के २१ अगस्त, सन् १९१७ के प्रार्थना-पत्र के उत्तर में खीज कर, जो पंक्तियाँ अपने १० दिसम्बर, १९१७ के मेमोरण्डम में लिखी हैं, वह इस समय मास्टर तारासिंह जी, बी० ए० सम्पादक 'अकाली' के क़ब्ज़े में हैं, जिसकी फ़ोटो अभी हाल ही में उन्होंने प्रकाशित भी की है। उस पत्र का हिन्दी-अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :—

मेमोरण्डम

नम्बर ८०६ ए० ६-७

तारीख़ १० दिसम्बर, सन् १६१७

सरदार अमरसिंह के २१ अगस्त के प्रार्थना-पत्र के उत्तर में सरकार की आज्ञा से इन पंक्तियों का लेखक (Undersigned) एक बार फिर सरदार अमरसिंह को सूचित करता है कि यदि वह महाराजा पटियाला से २०,००० रुपए लेना स्वीकार नहीं करता और इसके बदले

मिसेज़ सी० एच० पेरेरा

आप कोचीन की 'मेटरनिटी एण्ड चाइल्ड वेलफ़ेयर एसोसिएशन' की मन्त्रिणी नियत की गई हैं। आपके पति 'कोचीन आर्गस' नामक पत्र के सम्पादक हैं।

मैं अपनी धर्मपत्नी (जो महाराजा पटियाला के क़ब्ज़े में है) के समस्त अधिकारों को त्यागना नहीं चाहता, तो भविष्य में इस सम्बन्ध में आए हुए उसके किसी भी प्रार्थना-पत्र पर ध्यान नहीं दिया जायगा—जिसमें उसकी स्त्री को वापस दिलाने का कोई भी उल्लेख होगा।

(हस्ताक्षर) एल० एम० क्रैम्प
पोलिटिकल एजेण्ट

रियासत फुलकियाँ—नाभा, पटियाला, झींद,
बनाम
सरदार अमरसिंह बिस्वेदार, मौज़ा रुड़की,
रियासत पटियाला।

उपरोक्त घटना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हमारे श्वेताङ्ग महाप्रभुगण भारतीय महिलाओं के सतीत्व का क्या मूल्य समझते हैं। जिन अङ्गरेज़-शासकों को भारतीय देवियों के सम्मान का सच्चा रक्षक होना चाहिए था, वही पटियाला-नरेश जैसे पतित राजाओं की काम-लिप्सा के पोषक बन कर, स्त्रियों के व्यापार को प्रोत्साहन देने वाले सबसे बड़े और शक्तिशाली एजेण्ट बन रहे हैं! उपरोक्त पत्र के अतिरिक्त दो पत्र और भी मिले हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि महाराजा पटियाला ने सरदार अमरसिंह की स्त्री को ज़बर्दस्ती अपने क़ब्ज़े में कर लिया था। इन पत्रों में से एक पर पञ्जाब के गवर्नर के सेक्रेटरी का हस्ताक्षर है तथा दूसरे पर एक अन्य उत्तरदायी ऑफ़िसर का! ये दोनों पत्र इस समय कवीश्वर शार्दूलसिंह जी के क़ब्ज़े में हैं। एक पतित और दुश्चरित्र नरेश के द्वारा एक असहाय मनुष्य की स्त्री के हरे जाने के घृणित और निन्दनीय काण्ड में पञ्जाब के गवर्नर तथा रियासत फुलकियाँ के पोलिटिकल एजेण्ट के समान उत्तरदायी पदाधिकारियों के सम्मिलित होने से बढ़ कर, भारत में अङ्गरेज़ी राज्य के लिए और कोई कलङ्क का बात नहीं हो सकती। इन गर्हित और निन्दनीय कार्यों को देखते हुए यह विवश होकर कहना पड़ता है कि जिन भ्रष्ट और कलुषित साधनों से भारत में अङ्गरेज़ी सत्ता का विस्तार किया गया था, वे साधन अभी भी अङ्गरेज़ी राजनीति के अङ्ग बने हुए हैं! क्या भारत-सरकार या पञ्जाब-सरकार का कोई भी उत्तरदायी पदाधिकारी इस प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेगा कि यदि पटियाला-नरेश ने उनकी अर्द्धाङ्गिनी का अपहरण करके उन्हें अपनी शय्यार्द्ध-भागिनी बनने का सौभाग्य प्रदान किया होता, तो ऐसी दशा में वह पदाधिकारी क्या करता? सम्भव है, वह

पदाधिकारी महाराजा से कुछ हज़ार रुपए अथवा पाउण्ड (Stereing) पाकर अपने भाग्य पर फूला न समाता; पर दरिद्र भारतवासियों के पतित चरित्र में भी अभी तक ऐसे सौभाग्य के लिए कोई स्थान नहीं है।

* * *

बलिदान का महत्व

बलिदान ही जातियों के जीवन का रहस्य है। जो जाति अपने स्वत्वों की रक्षा और अपने गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखने के हेतु आत्म-बलिदान नहीं कर सकती, उस जाति का संसार में अधिक दिनों तक जीवित रहना एक बार ही असम्भव है। जीवन-कला का सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य यही है कि सम्मान और आत्म-गौरव का प्रश्न उपस्थित होने पर मनुष्य हँसते हुए मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए प्रस्तुत हो जाय। जिस देश के निवासियों में आत्मत्याग की भावना प्रबल होगी, उस देश के स्वत्वों का अपहरण करने का साहस संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी नहीं कर सकती। इसके विपरीत जिस जाति के व्यक्तियों का हृदय आत्म-गौरव और आत्माभिमान के भावों से शून्य होगा, उस जाति के जीवन की रक्षा करने में सर्वशक्तिमान् भगवान् को भी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। संसार के सभी देशों में यह क़ानून प्रचलित है कि चोरी करना अपराध है, और इस अपराध का करने वाला दण्ड का भागी होता है; किन्तु इतना होते हुए भी जो व्यक्ति स्वयं अपने धन की रक्षा करने का प्रबन्ध नहीं करता, उसका धन कभी सुरक्षित नहीं रहने पाता; वह कभी न कभी चोरों और उठाईगीरों के क़ब्ज़े में आ ही जाता है। किसी भी देश की शासन-संस्था चोरों को केवल दण्ड-मात्र दे सकती है; वह अपने देश के निवासियों की जान और माल की रक्षा करने में तब तक कदापि सफल नहीं हो सकती, जब तक उस देश के निवासी स्वयं अपनी जान और माल की रक्षा के लिए प्रस्तुत न हो जायँ।

भारतवासी जब तक स्वयं अपनी माताओं और बहिनों, देवियों और ललनाओं की मान-रक्षा के लिए प्रस्तुत न हो जाएँगे, तब तक भारत-सरकार हज़ार चेष्टाएँ करने पर भी भारतीय स्त्रियों के सम्मान की रक्षा नहीं कर सकती; और यदि भारत के वीर पुरुष और त्यागी नवयुवक भारतीय महिलाओं का अपमान करने वाले गुण्डों और नर-पिशाचों को दण्ड देने के महान् व्रत में आत्म-विसर्जन करने के लिए प्रस्तुत हो जायँ और भारत-सरकार कान में तेल डाल कर सोती रहे, तो भी किसी गुण्डे और बदमाश में यह साहस न होगा कि वह किसी भी भारतीय महिला की ओर दूषित

मिस मेरी जॉन, बी० ए०

आप ट्रावनकोर के स्त्रियों के महाराजा-कॉलेज में साइन्स की प्रोफ़ेसर हैं। मद्रास-सरकार द्वारा छात्रवृत्ति पाकर बहुत शीघ्र साइन्स की उच्च शिक्षा प्राप्त करने विलायत जाने वाली हैं।

अभिप्राय से आँख उठा कर भी देख सके। अङ्गरेज़ कुमारियाँ अकेले समस्त नगर में भ्रमण कर आती हैं, सिक्ख महिलाएँ बेरोक-टोक घर के बाहर आती-जाती हैं; किन्तु किसी भी गुण्डे को उन्हें छेड़ने की हिम्मत नहीं होती; उन्हें भगा ले जाकर उन पर अत्याचार करना तो दूर की बातें हैं, किसी शोहदे को उन पर आवाज़ें तक कसने का

साहस नहीं होता ! क्यों ? क्योंकि अङ्गरेज़ और सिक्ख पुरुष मरना और मारना जानते हैं; वे सैकड़ों बार—मृत्यु-यन्त्रणा से भी बढ़ कर दुःखद अपमान सहन करके जीवित रहने की अपेक्षा अपने सम्मान की रक्षा में वीर की भाँति मर-मिटने में अपना गौरव समझते हैं। हिन्दुओं को यदि जीवित रहना अभीष्ट है, तो उन्हें अङ्गरेज़ और सिक्खों के इस गुण का अनुकरण करना होगा। भारतीय स्त्रियों को आए-दिन जो अपमान और उत्पीड़न सहन करने पड़ते हैं, उन्हें बन्द करने का एक ही मार्ग है और वह यह कि भारतीय नवयुवक यह प्रतिज्ञा कर लें कि वे शरीर में प्राण रहते अपनी माताओं का अपमान नहीं होने देंगे और जो नराधम उनकी ओर अपवित्र दृष्टि से देखेगा, उसका रक्त चूसने के बाद ही वे विश्राम लेंगे।

कानपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र सहयोगी "प्रताप" के सुयोग्य सम्पादक महोदय अपने पत्र के विगत १ सितम्बर के अङ्क में इस महत्वपूर्ण विषय पर अपनी सम्मति-प्रकाश करते हुए लिखते हैं :—

यह चित्र बङ्गलोर के वाणी-विलास-भवन में ट्रावनकोर की जूनियर महारानी के आगमन के समय लिया गया था। महारानी साहब बीच में बैठी हैं। दोनों तरफ़ उनकी पुत्री और बहिन हैं। पीछे अन्य गणय-मान्य दर्शिकाएँ खड़ी हैं।

बङ्गाल में हिन्दू-नारियों पर बड़े भीषण एवं लोमहर्षण अत्याचार आए-दिन होते रहते हैं। मुसलमान-गुण्डे दिन-दहाड़े हिन्दू-बेटियों और बहुओं को उड़ा ले जाते हैं। बङ्गाल का हिन्दू-नारी-समाज जितना पीड़ित है, उतना अन्य स्थानों का स्त्री-समाज नहीं है। हिन्दू-विधवाओं पर न केवल मुसलमान-गुण्डे ही अत्याचार करते हैं, वरन् पाषाण-हृदय हिन्दू-समाज भी उनको सताने में कुछ नहीं उठा रखता। बङ्गाल की हिन्दू-जाति नष्ट होती जा रही है। मुसलमान-गुण्डे बड़ी बेदर्दी से हिन्दू-नारियों को उड़ा ले जाया करते हैं। इसी बात पर विचार करने के लिए अभी

इस सप्ताह कलकत्ते के आलबर्ट हाल में 'मॉडर्न रिव्यू' के स्वनाम-धन्य सम्पादक श्री० रामानन्द चट्टोपाध्याय के सभापतित्व में एक सभा हुई थी। उस सभा में बङ्गाल और आसाम के हिन्दुओं से अनुरोध किया गया है कि वे बिना जाति-उपजाति का ख़्याल किए, समाज के नारी-रत्न की रक्षा के लिए, एक सङ्घ-शक्ति के पाश में आबद्ध होकर नारी-जाति की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जायँ। एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से भी अनुरोध किया गया कि वह स्त्रियों को उड़ा ले जाने वाले गुण्डों की सङ्गठित कोशिशों का मुक़ाबला करने के लिए शीघ्र ही कुछ कार्रवाई करे, जिससे कि यह भयानक नारी-पीड़न-प्रथा समूल नष्ट हो जाय। सरकार कुछ करेगी या नहीं, सो तो हम नहीं कह सकते; पर इतना हम ज़रूर जानते हैं कि यदि बङ्गाल के हिन्दू अपनी नारियों की रक्षा के लिए प्राण लेना और प्राण देना सीख जायँ तो यह उत्पात शीघ्र मिट सकता है। गुण्डों को यदि दस-बीस जगह मार डाला जाय, तो उन्हें भी पता लग जायगा कि अब हिन्दू-नारी वह गुड़ की भेली नहीं रही जिसे चींटे खा जायँ। इसलिए हम तो, अत्यन्त नम्रता-पूर्वक, पर बहुत दृढ़ता के साथ, अपने बङ्गाली हिन्दू-भाइयों से कहते हैं कि वे बिला क़ानून और सरकारी दाँव-पेच का ख़्याल किए और बिला ज़रा भी हिचकिचाहट अपने मन में लाए, यह निश्चय कर लें कि हमारी बहू-बेटियों और माँ-बहिनों की तरफ़ आँख उठा कर देखने वालों की हम आँख निकाल लेंगे, और टेटुआ पकड़ कर उनका ख़ून चूस लेंगे। फिर देखते हैं कौन सा ऐसा गुण्डों का समाज, जो हिन्दू-नारियों की तरफ़ कनखियों से भी देखने का साहस कर सके?

हम सहयोगी "प्रताप" की सम्मति के एक-एक अक्षर का समर्थन करते हैं। सहयोगी ने जो सम्मति बङ्गाल के हिन्दुओं को दी है, उस वीरोचित सम्मति को भारत के प्रत्येक सपूत को शिरोधार्य करना चाहिए। आज पवित्र भारत-भूमि का कोई ऐसा भाग नहीं है, जहाँ महिला-जाति का सम्मान गुण्डों और आततायियों की कृपा पर अवलम्बित न हो। हम भारतीय नवयुवकों से पुनः अनुरोध करते हैं कि वे अपनी माताओं और बहिनों, देवियों और ललनाओं की मान-रक्षा के लिए प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत हो जायँ। जब तक भारत के
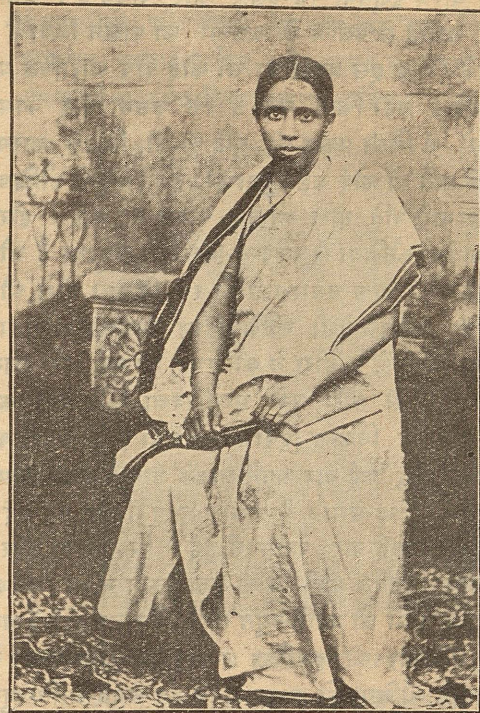
श्रीमती बट्टुला कामक्षम्मा
आपने आन्ध्र यूनिवर्सिटी की 'विद्वान्' परीक्षा पास की है।
राजमहेन्द्री के सेवा-सदन की आप सुपरिण्टेण्डेण्ट भी हैं।

नवयुवक अपने पवित्र शोणित से वसुन्धरा को स्नान न करा देंगे, तब तक भारतीय महिलाओं की सम्मान-रक्षा का प्रश्न स्थायी रूप से हल नहीं हो सकता।

* * *

पत्नी के अधिकार

इलाहाबाद-हाईकोर्ट ने हाल ही में पति-पत्नी के झगड़े-सम्बन्धी एक मुक़दमे में बड़ा ही महत्व-

पूर्ण फ़ैसला सुनाया है, जिस पर प्रत्येक भारतवासी को साधारणतः और महिलाओं को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। मामला यह था कि मुसम्मात कौलिया का विवाह लगभग १० वर्ष की अवस्था में हीरा से हुआ था। दोनों जाति के कोरी हैं। क़रीब ३ साल पहले इनके एक लड़की भी पैदा हुई थी। कौलिया का चरित्र पूर्णतया निष्कलङ्क और पवित्र है। उसने बड़ी सचाई से पत्नीत्व के कर्त्तव्यों का पालन किया है। उसके विरुद्ध इस प्रकार का भी कोई दोष आरोपित या प्रमाणित नहीं किया गया है कि उसने घरेलू काम-धन्धों में किसी प्रकार की त्रुटि की थी, जिसके कारण उसके पति को कोई कष्ट पहुँचा हो। इतने पर भी कौलिया के अभागे पति हीरा को वह पसन्द न आई। हीरा ने कार्यतः कौलिया से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है और अपने घर में एक चमार-स्त्री को रख लिया। हीरा और उसकी चमार रखेली कौलिया पर निरन्तर अत्याचार किया करते थे। हीरा ने कौलिया को कई बार लात और घूँसों से पीटा, उसे भूखों रक्खा और मार कर अपने घर से निकाल दिया। कौलिया अपने प्राणों की रक्षा के लिए कई बार अपने मायके जाने के लिए विवश हुई। पर हिन्दू-समाज के पाषाण-हृदय में दया का उद्रेक न हुआ। कई बार पञ्चायतें हुईं; पर उनका उद्देश्य अत्याचार-पीड़ित कौलिया की रक्षा करना न था; उनका ध्येय था हीरा को जाति-च्युत करके सनातन (?) धर्म की पवित्रता को सुरक्षित रखना! निर्लज्ज पञ्चों ने असहाय कौलिया को आज्ञा दी कि वह अपने जाति-च्युत पति के साथ रहे और उसकी सेवा करे!!

अन्त में जब हीरा और उसकी चमार-प्रेमिका के अमानुषिक अत्याचार असह्य हो उठे, तो मुसम्मात कौलिया ने अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए अदालत की शरण ली। पर वहाँ भी अभागिनी रमणी के साथ न्याय न हुआ। प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट ने उसकी हृदय-द्रावक कहानी सुनने के बाद फ़ैसला सुनाया—"जिस श्रेणी के ये लोग हैं, उसमें पति-पत्नी का जैसा व्यवहार हुआ करता है, उस पर विचार करने से यह नहीं कहा जा सकता कि मुसम्मात कौलिया के साथ जो दुर्व्यवहार किए जाते थे, वे बहुत ही कठोर थे अथवा उससे सतत और स्वभावतः क्रूर व्यवहार किया जाता था।" मैजिस्ट्रेट साहब ने साथ ही साथ यह भी कहा—"कोरी बहुत सभ्य नहीं होते और अभी भी वे अपने ही सामाजिक नियमों के अनुसार आचरण करते हैं।" अतः मुसम्मात कौलिया को पुनः अपने पति की सेवा में लौट जाना चाहिए और उसी के पास रहना चाहिए! एक असहाय रमणी को निरन्तर अत्याचार और दुर्व्यवहार की अग्नि में जलाते रहने के लिए कैसी सुन्दर दलील है!! प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट महोदय के फ़ैसले का स्पष्ट अर्थ यह है कि ब्रिटिश-न्याय कोरी जाति की सताई हुई महिलाओं की रक्षा करने के लिए नहीं है। ऐसी स्त्रियों को मूक-भाव से अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहाते हुए जीवन के शेष दिनों को व्यतीत कर देना चाहिए!

इलाहाबाद-हाईकोर्ट के जस्टिस एस० एन० सेन महोदय ने इस मूर्खतापूर्ण फ़ैसले पर टीका करते हुए कहा है—"क्या पति को इसीलिए कि वह कोरी है, असभ्य है और अभी भी अपने ही समाज के नियमों के अनुसार आचरण करता है, अपनी स्त्री पर पाशविक अत्याचार करने देना चाहिए? ब्रिटिश भारतीय व्यवस्था फ़ौजदारी क़ानून की धारा ४८८ का प्रयोग करने में एक उच्च राजवंश के प्रतिष्ठित पुरुष और समाज के तुच्छातितुच्छ व्यक्ति में कोई भेद नहीं करती। क़ानून का काम समता और मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा करना है। यदि कोरी जाति का कोई व्यक्ति यथेष्ठ साधनों के रहते हुए भी अपनी पत्नी के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करने से विमुख है और पत्नी का पोषण करने के प्रति उपेक्षा या अनिच्छा का भाव प्रकट करता है, तो वह फ़ौजदारी क़ानून की धारा ४८८ के अनुसार दण्डित होने के योग्य है। यदि वह अपने कर्त्तव्यों का पालन इसलिए नहीं करता कि वह "बहुत सभ्य" नहीं है, तो उस पर धारा ४८८ का प्रयोग होना चाहिए और इस धारा का विधान उस व्यक्ति की असभ्य प्रवृत्तियों का शमन करने में स्वास्थ्यदायक औषधि का कार्य करेगा।"

न्यायपरायण विचारपति के इस विचारपूर्ण फ़ैसले की जितनी प्रशंसा की जाय, सब थोड़ी है। न्याय-प्रिय जस्टिस सेन महोदय ने मुसम्मात कौलिया को हीरा से अलग रहने की आज्ञा दी और हीरा को आज्ञा दी कि वह मुसम्मात कौलिया के पालन-पोषण के लिए उसे

प्रति मास ८) दिया करे। हिन्दू-परिवारों में मुसम्मात कौलिया के समान न जाने कितनी अभागिनी स्त्रियाँ अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहाती हुई हिन्दू-समाज के जीवन को कोस रही हैं; पर समाज के ठेकेदारों का ध्यान उनके करुण हाहाकार की ओर आकर्षित नहीं होता। मुसम्मात कालिया कोरी जाति की स्त्री है। उसने आत्म-रक्षा के लिए जातीय पञ्चायत की शरण ली। जब पञ्चायत ने उसकी दयनीय दशा पर विचार न किया, तो उसने हाईकोर्ट तक लड़ कर अपने अधिकारों की रक्षा की। पर उच्चवंशीय महिलाओं की लोमहर्षक कहानी सुनने के लिए न तो कोई जातीय पञ्चायत है और न वे अपनी कुल-मर्यादा के मिथ्या अहङ्कार को त्याग कर अदालत के सामने ही अपने दुःखों की गाथा सुना सकती हैं। अब समय आगया है, जब समाज के प्रत्येक सत्यप्रेमी और न्यायप्रिय व्यक्ति को उच्छृङ्खल और इन्द्रिय-लोलुप पुरुषों के अत्याचारों से असहाय और निर्दोष स्त्रियों की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए और स्त्रियों को भी मिथ्या अहङ्कार और झूठे कुल-गौरव का भाव छोड़ कर अपने अमूल्य मानव-जीवन को असफल होने से बचा लेना चाहिए। हम छोटी-छोटी बातों के लिए स्त्रियों के अदालत में जाने के पक्षपाती नहीं हैं! किन्तु जहाँ उनके जन्म-सिद्ध अधिकारों तक की उपेक्षा की जाती है और उन्हें मनुष्यता के अधिकारों से भी वञ्चित कर दिया जाता है, वहाँ हम स्त्रियों के अदालतों में जाने के पक्षपाती अवश्य हैं और हमारी निश्चित सम्मति है कि स्त्रियाँ जब तक झूठे कुल-गौरव की अपेक्षा मानव-जीवन के मूल्य को श्रेष्ठतर नहीं समझने लगेंगी, तब तक संसार की कोई भी शक्ति उन्हें स्वार्थी और लम्पट पुरुषों के अत्याचारों से नहीं बचा सकती।

* * *

बाल-विवाह बिल

पाठकों को स्मरण होगा कि बड़ी व्यवस्थापिका सभा के विगत अधिवेशन में रायसाहब हरविलास शारदा महोदय के बाल-विवाह बिल पर विचार करना, यह कह कर स्थगित कर दिया गया था—कि सहवास-वय-समिति का अनुसन्धान-कार्य अभी तक समाप्त नहीं हुआ है; उक्त समिति की रिपोर्ट प्रकाशित होने के पश्चात् उसकी सिफ़ारिशों के प्रकाश में इस बिल पर विचार करना अधिक युक्तिसङ्गत होगा। अस्तु, विगत अगस्त मास के अन्तिम सप्ताह में सहवास-वय-समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई। यह रिपोर्ट ३९३ पृष्ठों की एक वृहत् पुस्तक है। यह आदि से अन्त तक महत्वपूर्ण प्रस्तावों और उपयोगी विचारों से परिपूर्ण है। प्रत्येक समाज-सेवी और सच्चे देशभक्त को इस रिपोर्ट का अध्ययन करना चाहिए और इसके महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

बड़ी व्यवस्थापिका सभा के प्रभावशाली सदस्य और बाल-विवाह बिल जैसे उपयोगी बिल के विधायक रायसाहब हरविलास जी शारदा।

सहवास-वय-समिति ने सहवास के वर्तमान वय में परिवर्त्तन करने की बड़ी भारी आवश्यकता बताई है। भारतीय दण्ड-विधान की धाराओं ३७५-७६ में सहवास-सम्बन्धी वर्तमान क़ानून का उल्लेख किया गया है। धारा ३७५ के अनुसार पति अपनी पत्नी की सम्मति के रहते हुए भी उससे तब तक सहवास नहीं कर सकता, जब तक पत्नी की अवस्था १३ वर्ष की न हो जाय। इसी प्रकार पति के अतिरिक्त कोई अन्य पुरुष किसी स्त्री की सम्मति के रहते हुए भी उससे तब तक सहवास नहीं कर सकता, जब तक उस स्त्री की अवस्था १४ वर्ष की न हो जाय। १४ वर्ष या इससे अधिक अवस्था

वाली स्त्रियों के साथ भी, उनकी इच्छा के विरुद्ध, उन्हें डरा-धमका कर या धोखा देकर सहवास करना अपराध समझा जाता है। इन सभी अपराधों को बलात्कार (Rape) कहते हैं और इनके लिए कालेपानी तक की सज़ा हो सकती है। सहवास-वय-समिति ने सिफ़ारिश की है कि स्त्रियों के लिए दाम्पत्य-सहवास का वय १३ से बढ़ा कर १५ वर्ष और पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के साथ सहवास के लिए सम्मति प्रदान कर सकने का वय १४ से बढ़ाकर १८ वर्ष कर दिया जाय। भारतीय दण्ड-विधान में इस आशय की एक धारा जोड़ दी जाय कि किसी भी पुरुष के लिए अपनी पत्नी की सम्मति के रहते हुए भी जब तक पत्नी की अवस्था १५ वर्ष की न हो जाय, तब तक उसके साथ सहवास करना अपराध समझा जायगा और इसके लिए पति को जेल या जुर्माना या दोनों प्रकार के दण्ड दिए जा सकेंगे। यह अपराध बलात्कार से भिन्न समझा जायगा और इसका नाम दाम्पत्य-दुर्व्यवहार (Marital Misbehaviour) होगा। समिति की यह भी सिफ़ारिश है कि जन्म और विवाह की तिथियों की सूची रक्खी जाय और जो लोग इन तिथियों की सूचना ठीक समय पर न दें, उनके साथ कठोरता का व्यवहार किया जाय। यदि हो सके तो स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी मामलों की जाँच के लिए तथा बलात्कार और दाम्पत्य-दुर्व्यवहार के मुक़द्दमों में स्त्रियों के बयान लेने के लिए महिला-पुलिस का प्रबन्ध किया जाय। ऐसे मुक़द्दमों का निर्णय करने वाली जूरी में महिलाएँ भी नियुक्त की जायँ। समिति ने इसी प्रकार की और भी बहुत सी सिफ़ारिशें की हैं, जिनका विस्तृत वर्णन सुविधानुसार फिर कभी किया जायगा।

हमें विश्वास है कि कोई भी विचारवान् व्यक्ति इन नियमों का समर्थन और इनके सदुद्देश्यों की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। इन नियमों को जितना शीघ्र क़ानून का रूप दिया जा सके, उतना अधिक देश का कल्याण होगा। किन्तु उक्त रिपोर्ट में एक बात ऐसी है, जिसका घोर विरोध करना उतना ही आवश्यक है, जितना इसकी अन्य बातों का समर्थन करना। दाम्पत्य-दुर्व्यवहार नाम के एक अलग अपराध की रचना करके भारतीय दण्ड-विधान में एक नवीन धारा का बढ़ाया जाना बहुत ही आपत्तिजनक है। एक क्षण के लिए भी यह बात भुलाई नहीं जा सकती कि वर्तमान समय में भारतवर्ष परतन्त्र है। भारतवर्ष के वर्तमान शासकों ने समय-समय पर सर्वथा निर्दोष और उपयोगी क़ानूनों को भी भारतवासियों के सच्चे हित के विरुद्ध उपयोग करने में कुछ उठा नहीं रक्खा है। ऐसी अवस्था में यह आशा करना कि दाम्पत्य-दुर्व्यवहार के क़ानून का दुरुपयोग नहीं किया जायगा, भूतकाल के अनुभवों की अवहेलना करना है। इस क़ानून से सरकार को व्यक्तियों के पारिवारिक जीवन में अनुचित हस्तक्षेप करने का अवसर मिलता है। किसी भी सरकार के हाथ में, चाहे वह प्रजा के प्रति उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकार हो अथवा सर्वथा अनुत्तरदायी विदेशी नौकरशाही, यह सङ्गीन अधिकार देना बुद्धिमत्ता की बात नहीं कही जा सकती। इस क़ानून की अवाञ्छनीयता के अतिरिक्त इसका एक दूसरा पहलू भी है। भारतवर्ष जैसे धर्म-प्रधान देश में, जहाँ की स्त्रियाँ पति को उपास्य देव समझ कर उसकी पूजा करना अपने जीवन का एकान्त धर्म समझती हैं, यह आशा करना कि स्त्रियाँ अपने पति के विरुद्ध दाम्पत्य-दुर्व्यवहार का मुक़द्दमा अदालतों में पेश करेंगी, एक हास्यास्पद-सी बात प्रतीत होती है। इस समय भी सहवास-क़ानून के अनुसार १३ वर्ष से कम अवस्था वाली स्त्रियों को अपने पति के विरुद्ध बलात्कार का मुक़द्दमा चलाने का अधिकार प्राप्त है। पर अब तक ऐसे कितने मुक़द्दमे अदालतों में पेश हुए हैं? हमें विश्वास है कि भारतीय वायुमण्डल में पली हुई किसी भी स्त्री को अपने जीवन में इस क़ानून से काम लेने का अवसर शायद ही कभी आया होगा। ऐसी दशा में जान-बूझ कर एक ऐसा क़ानून बना देना, जिसकी अवज्ञा होना अनिवार्य है, वास्तव में क़ानून की प्रतिष्ठा को कम करना है।

जब तक विवाह के लिए कोई आयु निश्चित नहीं कर दी जायगी, तब तक सहवास-सम्बन्धी क़ानून, चाहे वह कितना ही उचित और उदार क्यों न हो, कदापि सफल नहीं हो सकता। जिस देश में दुधमुँही बच्चियों की शादी कर दी जाती है—वह भी लम्पट और कामुक बुड्ढों के साथ—उस देश में यह आशा करना कि १५ वर्ष की अवस्था तक पत्नियों से सहवास न किया जायगा, बुद्धि से शत्रुता करने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? हम प्रयाग के हिन्दी साप्ताहिक "भारत" की

इस सम्मति से पूर्णतया सहमत हैं कि—"विवाह के लिए उम्र की कोई क़ैद न लगा कर सहवास के लिए उम्र की क़ैद लगाना क़ानून को ख़ुद तोड़ना है और प्राइवेट जीवन में बेजा दख़ल देना है।" सहवास-वय-समिति ने भी इस कठिनाई का अनुभव किया है और उसने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से लिखा है कि बाल-विवाह और बाल-पत्नियों के गर्भधारण से उत्पन्न होने वाली घातक बुराइयों को केवल दाम्पत्य-सहवास का वय निर्धारित कर देने और भारतीय दण्ड-विधान में दाम्पत्य-दुर्व्यवहार की एक नवीन धारा जोड़ देने से नहीं रोका जा सकता है। इसलिए समिति ने सिफ़ारिश की है कि एक क़ानून बना कर बालिकाओं के विवाह की कम से कम आयु १४ वर्ष निर्धारित कर देनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि विवाह के एक वर्ष बाद तक पति अपनी पत्नी के साथ सहवास नहीं कर सकता। जिन प्रदेशों में द्विरागमन की प्रथा है, उन प्रदेशों में इस क़ानून का पालन अनायास हो सकता है; किन्तु जिन प्रदेशों में द्विरागमन की प्रथा नहीं है और जहाँ लड़कियाँ विवाह होते ही ससुराल भेज दी जाती हैं, उन प्रदेशों में इस क़ानून का पालन हो सकना एक प्रकार से असम्भव ही है। इन दशाओं पर विचार करते हुए हमारी यह निश्चित सम्मति है कि विवाह और सहवास की अवस्थाओं में कोई भेद नहीं होना चाहिए।

सहवास-वय-समिति की रिपोर्ट का सबसे महत्व-पूर्ण अंश वह है, जहाँ समिति यह दिखाने का प्रयत्न करती है कि बाल-विवाह और बाल-पत्नियों के गर्भिणी होने की भयङ्कर बुराइयों को रोकने के अभिप्राय से विवाह की अवस्था निर्धारित न करके, सहवास की अवस्था निर्धारित करना सर्वथा निरर्थक है। सहवास-सम्बन्धी वर्तमान क़ानून की पूर्ण विफलता की चर्चा करने के बाद समिति अपनी खोजपूर्ण रिपोर्ट में एक स्थान पर लिखती है—"कन्या और उसके पति के परिवार वाले यह बात कभी नहीं पसन्द करते कि परिवार की गुप्त बात अदालत के सामने लाई जावे और उनकी प्रतिष्ठा में ख़लल पहुँचे। जिन बातों के आधार पर सहवास-क़ानून की अवहेलना का अपराध प्रमाणित किया जा सकता है, उन बातों का ज्ञान साधारणतया पति-पत्नी और उनके कुटुम्बियों को ही होता है और वे ही इस बात के सबसे अधिक इच्छुक होते हैं कि वे बातें अदालत में प्रकट न होने पावें और अपराधी दण्ड से बच जाय। × × × यदि किसी प्रकार इन अपराधों को प्रमाणित भी किया जा सके और इन्हें अदालत के सामने लाया जा सके, तो भी ऐसा करना वाञ्छनीय नहीं है, क्योंकि लड़कों का दण्डित होना परिवार का सर्वनाश है। जो पत्नी, पति के सर्वनाश का कारण हो सकती है, उसके साथ सम्भव है कि पति दया का व्यवहार न करे; उसका बहिष्कार कर दे; और पत्नी के लिए बहुत सी अवस्थाओं में इस विपत्ति से तलाक़ और पुनर्विवाह के द्वारा भी छुटकारा पाने का मार्ग न रह जाय।" इन सब कठिनाइयों पर विचार करने के बाद समिति ने अपनी सम्मति निर्धारित की है—"विवाह हो जाने के बहुत दिनों बाद तक सहवास के रोक रखने की अपेक्षा लड़के या लड़की की शादी की अवधि को बढ़ा देना अधिक सहल है। इस मामले में रोग की दवा करने की अपेक्षा रोग की उत्पत्ति को ही रोक देना कहीं अधिक श्रेष्ठ है। × × × इसलिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि बाल-विवाह और बाल-पत्नियों के गर्भवती होने की बुराई को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि एक क़ानून बना कर यह निश्चित कर दिया जाय कि लड़कियों का विवाह १४ वर्ष की अवस्था के पहले नहीं हो सकता।" समिति की यह भी राय है कि लड़कों की शादी १८ वर्ष की अवस्था के पहले नहीं होनी चाहिए।

सहवास-वय-समिति की सिफ़ारिशें रायसाहब हरविलास शारदा महोदय के बाल-विवाह बिल की धाराओं से इस प्रकार पूर्णतया मिलती हैं कि इसे देख कर आश्चर्य होता है। शारदा महोदय के बिल का भी यही आशय है कि बालकों का विवाह १८ वर्ष और बालिकाओं का विवाह १४ वर्ष की अवस्था के पहले होना क़ानून बना कर रोक दिया जाय। बालकों के विवाह-वय के सम्बन्ध में कोई विशेष झगड़ा नहीं है, किन्तु बालिकाओं के विवाह की कम से कम अवस्था १४ वर्ष निर्धारित करने के प्रस्ताव का घोर विरोध किया जा रहा है। यह विरोध कोई नई बात नहीं है। ब्रिटिश-सरकार ने भारतीय समाज के हित के लिए उपस्थित की जाने वाली व्यवस्थाओं का

सदा से विरोध किया है और धर्म के नाम पर धर्म की हत्या करने वाले, कूपमण्डूक, उन्नति-विरोधी सनातनधर्मी (!!!) समाज ने इस घातक अनुष्ठान में सरकार का समर्थन करने में भी कभी त्रुटि नहीं की है। किन्तु इस बार सरकार के बाल-विवाह बिल का पक्ष ग्रहण करने के कारण देश की उन्नति के विरोध करने का सारा भार अकेले श्रीयुत एम० के० आचार्य और महामना मालवीय जी जैसे धर्म-धुरन्धरों पर ही आ पड़ा है !

काल में व्यवस्थापिका सभा के ग़ैर-सरकारी और प्रजा के चुने हुए सदस्यों ने सहवास-वय को बढ़ाने के अनेक प्रयत्न किए ; पर प्रत्येक बार सरकारी सदस्यों के विरोध या उदासीनता और धर्म के ठेकेदारों की नीचता के कारण उनके प्रयत्न असफल हुए। सन् १९२२ ई० में श्रीयुत सोहनलाल जी ने वैवाहिक और अवैवाहिक दोनों अवस्थाओं में सहवास-वय को बढ़ाने के लिए एक बिल पेश किया था ; पर धर्म के ठेकेदारों के विरोध और सरकार की उदासीनता के कारण वह बिल पास नहीं हो

शारदा-बिल के समर्थन में शिमला में एसेम्बली-भवन के सामने महिलाओं का प्रदर्शन

महिलाएँ जो झण्डे लेकर एसेम्बली-भवन में खड़ी थीं उनमें लिखा था—"मनुष्यता के नाम पर बाल-विवाह बिल का समर्थन कीजिए।"

सन् १८६० ई० में, जब भारतीय दण्ड-विधान प्रथम बार भारत में प्रचलित हुआ था, उस समय स्त्री के लिए सहवास की सम्मति देने का वय १० वर्ष था। ३० वर्षों के लम्बे समय के बाद सन् १८९१ ई० में यह वय बढ़ा कर १२ वर्ष किया गया। इसके बाद पूरे ३४ वर्षों तक सहवास-वय में फिर कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। सन् १९२५ ई० में यह वय बढ़ा कर १३ वर्ष किया गया और इस समय भी यही वय निश्चित है। सन् १८९१ ई० से लेकर सन् १९२५ ई० तक ३४ वर्षों के सुदीर्घ

सका। इस अवसर पर तत्कालीन होम-मेम्बर सर विलियमविन्सेण्ट ने सरकारी मन्तव्य प्रकट करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यह बिल उसी अवस्था में सिलेक्ट कमिटी के पास भेजा जा सकता है, जब यह शर्त पहले ही स्वीकार कर ली जाय कि वैवाहिक अवस्थाओं में इस बिल का प्रयोग नहीं किया जायगा ! सन् १९२४ ई० में पुनः डॉक्टर हरिसिंह जी गौड़ ने एक बिल पेश किया, जिसका आशय यह था कि वैवाहिक और अवैवाहिक दोनों अवस्थाओं में सह-

वास-वय बढ़ाकर १४ वर्ष कर दी जाय। सिलेक्ट कमिटी ने इस बिल पर विचार करते समय वैवाहिक अवस्था में सहवास-वय को घटाकर केवल १३ वर्ष रहने दिया। इस संशोधित रूप में जब यह बिल बड़ी व्यवस्थापिका सभा में पेश हुआ, तो ग़ैर-सरकारी सदस्यों ने इस बिल में यह संशोधन उपस्थित किया कि सहवास-वय वैवाहिक अवस्था में १४ वर्ष और अवैवाहिक अवस्था में १६ वर्ष कर दिया जाय। विदेशी सरकार तथा धर्म का ढोंग रचने वाले कूप-मण्डूक दल के घोर विरोध करने और संशोधन के विपक्ष में मत देने पर भी संशोधन का प्रथम खण्ड एक अल्प बहुमत, किन्तु द्वितीय खण्ड एक बहुत ही विशाल बहुमत से पास हो गया। इतने पर भी सरकार ने इस अत्यन्त उपयोगी बिल के सम्बन्ध में लोकमत का आदर न किया। उसने बिल के अन्तिम पाठ को, जिसके बाद वह ऐक्ट या क़ानून बन जाता, पास न होने देने का निश्चय कर लिया और 'जयचन्दों' तथा 'अमीचन्दों' की सहायता से उसका यह निश्चय सफलीभूत हुआ। इसके बाद ग़ैर-सरकारी मेम्बरों के आँसू पोछने तथा भारत की भोली जनता को फुसलाने के अभिप्राय से सर एलेक्ज़ेण्डर मुडिमैन ने यह बिल पेश किया कि भारतीय दण्ड-विधान की धारा ३७५ का सुधार करके सहवास-वय वैवाहिक अवस्था में १३ वर्ष और अवैवाहिक अवस्था में १४ वर्ष कर दिया जाय। यह बिल पास हो गया और यही आजकल का सहवास-वय-सम्बन्धी इस देश का क़ानून है! पर इससे जनता के प्रतिनिधियों को सन्तोष न हुआ और तीसरी व्यवस्थापिका सभा में सर हरिसिंह गौड़ महोदय ने पुनः एक बिल पेश किया, जिसका आशय यह था कि सहवास-वय वैवाहिक अवस्था में १४ और अवैवाहिक अवस्था में १६ वर्ष कर दिया जाय। सरकार ने इस बिल को भी विफल करने का प्रयत्न आरम्भ किया; किन्तु इस बार वह स्वयं अपने जाल में फँस गई! सरकार ने जनता के प्रतिनिधियों को आश्वासन दिलाया कि हम सहवास-वय के सम्बन्ध में वर्तमान परिस्थिति की पूर्णरूप से परीक्षा करना चाहते हैं और परीक्षा के बाद यदि आवश्यक समझा जायगा, तो इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कोई कार्रवाई की जायगी। इस कारण श्रीयुत गौड़ महोदय के बिल पर विचार करना स्थगित कर दिया गया और यह निश्चित किया गया कि सहवास-वय के सम्बन्ध में लोकमत जानने के लिए एक जाँच-कमिटी बनाई जाय। इसी निश्चय के अनुसार वर्तमान सहवास-वय समिति की नियुक्ति हुई, जिसने पर्याप्त परीक्षा और व्यापक अनुसन्धान के बाद, न केवल सहवास-वय को बढ़ा देने, वरन् बाल-विवाह और बाल-पत्नियों के गर्भवती होने की घातक प्रथा का मूलोच्छेद करने के लिए एक वैवाहिक क़ानून बनाने की भी सिफ़ारिश की है।

इस समिति में सभापति के अतिरिक्त कुल १० सदस्य थे, जिनमें हिन्दू-मुसलमान, कट्टर-सुधारक, बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष, सब प्रकार के लोग शरीक थे। समिति ने पूरे एक साल तक जाँच की है। साल भर में समिति ने बर्मा के अतिरिक्त भारतवर्ष के अन्य सभी प्रान्तों का दौरा किया है, जिनमें समिति को ६०० लिखित बयान मिले हैं और ४०० आदमियों ने समिति के सामने उपस्थित होकर प्रश्नोत्तर के रूप में अपने बयान दिए हैं। बयान देने वालों में सब विचारों के मनुष्य थे। कई मनुष्यों ने अपनी व्यक्तिगत सम्मति न देकर किसी संस्था, सभा या समिति की सम्मति प्रकट की। बहुत से डॉक्टरों—पुरुष और स्त्री, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, भिन्न-भिन्न जातियों और सम्प्रदायों के अग्रगण्य नेताओं तथा कट्टर और सुधारक विचारों के व्यक्तियों ने भी साक्षी दी। समिति ने ग्रामीण जनता के विचारों का पता लगाने के लिए बम्बई, मद्रास, बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा तथा संयुक्त-प्रान्त के अनेक गाँवों में भी दौरा किया। गाँवों के पुरुषों और स्त्रियों दोनों की ही गवाहियाँ ली गईं। कई गाँवों के आदमियों ने तो बालिकाओं के विवाह और उनके गर्भवती होने की बुराई को रोकने के लिए क़ानून बनाए जाने पर इतना अधिक ज़ोर दिया कि उसे देख कर समिति के सदस्यों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। समिति ने देश के भिन्न-भिन्न भागों में लड़के और लड़कियों के कई स्कूल भी देखे। हिन्दू और मुसलमानों की सम्मतियाँ ली गईं। सहवास को बढ़ाने के पक्ष और विपक्ष में दिए जाने वाले शास्त्रीय तर्कों पर भी विचार किया गया। दलित जातियों के प्रतिनिधियों की बातें भी सुनी गईं। इस प्रकार रिपोर्ट में सभी श्रेणियों और

विचारों के मनुष्यों की सम्मतियों पर विचार करने के अधिक से अधिक जो प्रयत्न किए जा सकते थे, वे सब प्रयत्न समिति ने किए। ऐसी अवस्था में यदि समिति की रिपोर्ट को सहवास-वय के सम्बन्ध में लोकमत का दर्पण कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। वर्तमान समय में इस विषय पर इससे अधिक निर्दोष और बहु-सम्मत रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकना असम्भव है। जनता ने इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों का जितना हार्दिक स्वागत किया है, उतना स्वागत आज तक किसी भी व्यवस्था या क़ानून का नहीं हुआ था। इस रिपोर्ट का सबसे गहरा सम्बन्ध स्त्रियों से है और स्त्रियों ने ही सबसे अधिक इसका समर्थन किया है। सहवास-वय समिति की सुयोग्य सदस्या श्रीमती बृजलाल नेहरू जैसी विदुषी रमणी से लेकर गाँवों में रहने वाली अशिक्षित स्त्रियों तक सबकी सम्मति इस विषय में एक है। विगत ४ सितम्बर को, जिस दिन लेजिस्लेटिव एसेम्बली में शारदा-बिल पर विचार प्रारम्भ होने वाला था, लगभग ५० महिलाएँ और बालिकाएँ, जिनमें हिन्दू-मुसलमान, धनी-दरिद्र सब श्रेणी की स्त्रियाँ सम्मिलित थीं, एसेम्बली की कार्रवाई आरम्भ होने के पहले ही एसेम्बली-भवन के सामने जाकर खड़ी हो गईं। उनके हाथों में बड़े-बड़े पोस्टर थे, जिन पर लिखा हुआ था, "मानव-जाति के कल्याण के लिए शारदा-बिल का समर्थन करो," "बाल-विवाह के लिए प्रथा दोषी है, धर्म नहीं," "यदि शारदा-बिल का विरोध करोगे, तो दुनियाँ तुम्हारी मूर्खता पर हँसेगी" इत्यादि। एसेम्बली के सदस्यों के एसेम्बली-भवन के पास पहुँचने पर सभी महिलाओं ने एक साथ ऊँचे स्वर में कहा—"हम लोग शारदा-बिल का समर्थन करती हैं।" इस प्रकार की घटनाएँ शारदा-बिल और उसका समर्थन करने वाली सहवास-वय समिति की रिपोर्ट की लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

देश के बड़े-बड़े ग्यारह विद्वानों के एक साल के परिश्रम और लगभग तीन लाख रुपयों के व्यय से जो रिपोर्ट तैयार की गई है, उसका सारांश यह है—

(१) वैवाहिक अवस्था में पत्नी के लिए सहवास की सम्मति प्रदान कर सकने का कम से कम वय १५ वर्ष निर्धारित कर देना चाहिए।

(२) अवैवाहिक अवस्था में स्त्री के लिए सहवास की सम्मति प्रदान कर सकने का कम से कम वय १८ वर्ष निर्धारित कर देना चाहिए।

(३) बाल-विवाह और बाल-सहवास की बुराई को कठोरतापूर्वक रोकने के अभिप्राय से इस आशय का एक क़ानून बना देना चाहिए कि लड़की का ब्याह १४ वर्ष की अवस्था से पहले न किया जाय।

उपरोक्त सिफ़ारिशों में तीसरी सिफ़ारिश ही सबसे प्रधान है। एक प्रकार से यही सिफ़ारिश सहवास-वय समिति की बृहत् रिपोर्ट का प्राण है। इस सिफ़ारिश को निकाल देने से रिपोर्ट की सारी उपयोगिता और उसका सारा महत्व नष्ट हो जाता है। किन्तु दुःख की बात है कि देश के कुछ गण्यमान्य नेता रिपोर्ट की इसी धारा को विफल कर देने के लिए अपनी समस्त शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। श्री० एम० के० आचार्य ने बड़ी व्यवस्थापिका सभा में प्रस्ताव किया है कि सहवास-वय समिति की रिपोर्ट विलम्ब से प्रकाशित होने के कारण उसका अध्ययन करने के लिए अभी तक पर्याप्त समय नहीं मिला है। अतः शारदा महोदय के बाल-विवाह बिल पर विचार करना व्यवस्थापिका सभा के अगले अधिवेशन तक के लिए स्थगित किया जावे। महामना मालवीय जी ने इस मूर्खतापूर्ण और घातक प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा है कि "मैं बाल-विवाह की बुराइयों से जितना परिचित हूँ, उतना शायद ही कोई अन्य व्यक्ति परिचित होगा; तथापि बाल-विवाह की प्रथा भारतवर्ष के लिए नवीन नहीं है। हिन्दुओं ने हज़ारों वर्षों तक इस प्रथा के अनुसार जीवन व्यतीत किया है। × × × हम लोगों ने अभी तक इस प्रथा के उद्देश्य और लाभों को नहीं समझा है। × × × सरकार ने यदि शिक्षा का प्रचार किया होता तो आज इस बिल के उपस्थित करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती × × × मैं चाहता हूँ कि यह बिल शीघ्र से शीघ्र पास हो, किन्तु सम्प्रति केवल तीन महीनों के लिए स्थगित कर दिया जाय।" इन परस्पर-विरोधी बातों का क्या अर्थ हो सकता है, इसे महामना मालवीय जी ही समझ सकते हैं! ऐसी असम्बद्ध बातों का अर्थ समझना हमारे जैसे साधारण मनुष्यों की बुद्धि से परे की बात है। महामना एक समर्थ वक्ता हैं; वे एक ही

साँस में दो परस्पर-विरोधी बातें कह सकते हैं और बड़ी प्रभावोत्पादक रीति से कह सकते हैं! एक साथ ही "बाल-विवाह की बुराइयों से मैं जितना परिचित हूँ, उतना शायद ही कोई अन्य व्यक्ति परिचित होगा" और "बाल-विवाह के उद्देश्य और लाभों को हम लोगों ने अभी तक नहीं समझा है" कहते हुए महामना मालवीय जी को किसी प्रकार की लज्जा या सङ्कोच का अनुभव नहीं हुआ! सार्वजनिक क्षेत्र में पिछले २६ वर्षों से—विशेष कर सामाजिक मामलों पर—महामना की सदा दोमुँही नीति रही है। ऐसी दशा में हम उनके भाषण की टीका करके शिष्टता की हत्या नहीं करना चाहते। जिस समय वक्ता अपने हृदय की बातें न कह कर, केवल बनावटी बातें व्यक्त करता है और अपने श्रोताओं को धोखा देना चाहता है, उस समय भाषण की ऐसी ही दुर्दशा होती है!

श्रीयुत जयकर महोदय ने ठीक ही कहा है कि "मुझमें राजनीतिक मामलों को कुत्तों की भाँति शीघ्र सूँघ लेने की विचित्र शक्ति है। ××× तीन महीने तो क्या, तीन साल के बाद भी यदि इस बिल पर विचार किया जाय तो कट्टर सम्प्रदाय उन्हीं बहानों का अवलम्बन करेगा, जिनका वह आज कर रहा है; उस समय कहा जायगा कि सहवास-वय समिति में सभी विचारों के मनुष्य नहीं हैं; समिति की रिपोर्ट पक्षपातपूर्ण है; इसलिए दूसरी समिति बनाई जानी चाहिए, जो नए सिरे से इस विषय की जाँच करेगी" इत्यादि। समिति ने जिस खोज और परिश्रम से देश के भिन्न-भिन्न मतों का संग्रह किया है, उसे देखते हुए कहना पड़ता है कि समिति की रिपोर्ट को स्वीकार कर लेने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं होना चाहिए। पश्चाद्दर्शी विचारों के मनुष्य संसार में सदा रहे हैं; इस समय हैं और भविष्य में भी रहेंगे। ब्रिटिश सरकार ने जिस समय रक्तरञ्जित सती-प्रथा का उन्मूलन किया था, उस समय भी भारतवर्ष में ऐसे 'आचार्यों' और 'मालवीयों' की कमी नहीं थी, जिन्होंने सरकार की सेवा में डेपुटेशन और मेमोरेण्डम भेज कर प्रार्थना की थी कि पवित्र सनातनधर्म पर आघात न किया जाय और धर्म के नाम पर असहाय अबलाओं को जीते हुए अग्नि में जला देने की बर्बरतापूर्णप्रथा को सुरक्षित रक्खा जाय! आज भी सड़े हुए सनातनधर्म के नाम पर बर्बरता की दोहाई दी जा रही है और विवेकहीन सनातनी पण्डितों के डेपुटेशन तथा श्रीयुत आचार्य और महामना मालवीय जी जैसे देशवासियों की मूर्खता से अनुचित लाभ उठाने वाले दोमुँहे नेता सरकार को यह समझाने की चेष्टा कर रहे हैं कि विधवाओं के हाहाकार और बाल-पत्नियों के करुण-क्रन्दन को बन्द करना सनातनधर्म पर आघात करना है!! आशा है, सरकार ने सती-प्रथा का उन्मूलन करने में जिस दृढ़ता और दूरदर्शिता से काम लिया था, बाल-विवाह की 'भयावह और नाशक' (Grave and corroding) प्रथा का मूलोच्छेद करने में भी उसी दृढ़ता और दूरदर्शिता का परिचय देगी। सती-प्रथा के बन्द हो जाने के बाद जिस प्रकार धर्म के ठेकेदारों का निरर्थक विरोध स्वयमेव बन्द हो गया था, उसी प्रकार बाल-विवाह का क़ानून पास हो जाने पर भी पण्डितों और मठाधीशों का कृत्रिम विरोध आप से आप शान्त हो जायगा। 'नवयुवक भारत' की दृष्टि में सनातनधर्म (?) की दोहाई देने वाले टकसाली बूढ़े अब अधिक धूल नहीं झोंक सकते!

* * *

इन पंक्तियों के छपते-छपते हमें यह जान कर बड़ा हर्ष हुआ कि श्रीयुत एम० के० आचार्य का यह प्रस्ताव कि शारदा-बिल पर विचार करना एसेम्बली के अगले अधिवेशन तक स्थगित किया जाय, एक बहुत बड़े बहुमत से गिर गया। अब बिल की एक-एक धारा पर विचार हो रहा है। अब तक एसेम्बली के प्रायः सभी दलों के प्रमुख सदस्यों ने जिस प्रकार एक स्वर से शारदा-बिल का समर्थन किया है, उसे देखते हुए यह बात निश्चित सी जान पड़ती है कि शारदा-बिल के पास होकर क़ानून बन जाने में अधिक विलम्ब न लगेगा। परमात्मा व्यवस्थापिका सभा के इस शुभ कार्य में सहायक हो!

* * *

सम्वाददाताओं से—

पिछले सात वर्षों में 'चाँद' ने समाज की जो सेवा की है, उसमें 'चाँद' के सहृदय सम्वाददाताओं का बहुत बड़ा भाग रहा है। बहुत से महानुभावों ने निर्मम

और क्रूर समाज के अत्याचारों से त्रस्त, अभागिनी बहिनों और दुर्दशा-ग्रस्त कुल-वधुओं की रोमाञ्चकारी कहानी प्रकाशित करा कर समाज की अमूल्य सेवा की है। इन सत्य सम्वादों के प्रकाशन और प्रचार से, न जाने कितनी गृहलक्ष्मियों और देवियों का जीवन नरक की घोर यन्त्रणा में परिणत होने से बच गया है, और कितने ही अनाथ बालकों तथा दलित भाइयों को निराशा के निविड़ अन्धकार में जीवनदायिनी आशा-ज्योति का प्रकाश पाने में सहायता मिली है। 'चाँद' की इन सेवाओं के रूप में अपने हृदय की चिर-सञ्चित अभिलाषाओं को सफल होते हुए देख कर हमारे तृषित प्राणों को भी जीवन की कुछ निर्जन-नीरव घड़ियों में पुलकित और उल्लसित होने का मधुर अवसर प्राप्त हुआ है। एतदर्थ हम अपने सहृदय और विद्वान् सम्वाददाताओं के प्रति चिर-कृतज्ञ हैं और हृदय से उन्हें धन्यवाद देते हैं। किन्तु हाल ही में एक ऐसी शोचनीय घटना घटित हो गई है, जिसके लिए हम खेद प्रकाशित किए बिना नहीं रह सकते।

विगत अगस्त मास के 'चाँद' में 'मूक-वेदना' शीर्षक एक चिट्ठी छपी थी, जिसकी प्रेषिका थीं—एक श्रीमती कमलादेवी मार्फ़त लाला प्यारेलाल वकील खीरी-लखीमपुर। अगस्त के 'चाँद' के प्रकाशित होने के दो ही तीन दिनों के बाद खीरी-लखीमपुर के सुप्रसिद्ध वकील श्री० सूर्यनारायण जी दीक्षित की ओर से हमें उक्त पत्र प्रकाशित करने के लिए मानहानि के अभियोग की सूचना मिली। श्री० दीक्षित जी का वक्तव्य था कि उक्त पत्र बिलकुल झूठ है, और वह जान-बूझ कर उनकी मानहानि करने के लिए लिखा गया है और सारे इशारे उन्हीं के परिवार को लक्ष्य कर किए गए हैं। श्री० दीक्षित जी ने हमसे सम्वाददाता का नाम और पता भी जानना चाहा था; पर हमने अपने व्यवसाय की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए सम्वाददाता का नाम बताने से स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया। इसके दूसरे ही दिन हमें अपने प्रिय मित्र पण्डित वंशीधर जी मिश्र, एम० ए०, एल्-एल्० बी० का पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि उक्त पत्र श्री० सूर्यनारायण जी दीक्षित की सुपुत्री कुमारी तेजरानी दीक्षित, बी० ए० को लक्ष्य करके लिखा गया था। कुमारी दीक्षित से हम उनकी बाल्यावस्था से ही परिचित हैं; श्रीमती विद्यावती जी सहगल ने उन्हें कुछ समय तक स्थानीय क्रॉस्थवेट गर्ल्स कॉलेज में पढ़ाया भी था। उनके समान विदुषी बालिका को लक्ष्य करके उक्त पत्र लिखा गया था, यह जान कर हमारे आश्चर्य और दुःख की सीमा न रही। अपनी शङ्काओं का समाधान करने के लिए जो जाँच हमने कराई, उससे हमें यह भी पता चला कि जिस नाम से चिट्ठी हमारे पास भेजी गई थी, उस नाम का कोई व्यक्ति खीरी-लखीमपुर में नहीं है; और चिट्ठी में वास्तविक नाम, पता, जाति, उपाधि आदि छिपा कर दो-चार ऐसी घरेलू बातों का वर्णन कर दिया गया है, जिससे खीरी-लखीमपुर जैसे छोटे नगर में कोई भी आदमी अनायास समझ सकता है कि ये बातें श्री० सूर्यनारायण जी दीक्षित के घर की हैं। इन सब बातों का पता लगा कर श्री० दीक्षित जी को इस सम्बन्ध में पत्र लिखने में स्वभावतः कुछ विलम्ब होगया। इतने में श्री० दीक्षित जी ने हमारे विरुद्ध मान-हानि का मुक़द्दमा दायर कर दिया। ख़ैर, हम खीरी-लखीमपुर की अदालत में उपस्थित हुए और मित्रवर पण्डित वंशीधर जी मिश्र की कृपा तथा पण्डित सूर्यनारायण जी दीक्षित के सौजन्य से मुक़द्दमा सुलह हो गया। पण्डित वंशीधर जी ने इस शोचनीय प्रसङ्ग को दूर करने में जो कठिन परिश्रम और प्रशंसनीय प्रयत्न किया, उसके लिए हम हृदय से उनके आभारी हैं।

जिस क्षुद्र-बुद्धि व्यक्ति ने व्यक्तिगत या पारिवारिक अथवा सार्वजनिक वैमनस्य से उत्तेजित होकर यह जो निन्दनीय और अदूरदर्शितापूर्ण कार्य किया है, उसने न केवल हमें तथा श्री० दीक्षित को कष्ट पहुँचाया है, वरन् समाज का घोर अपकार किया है। इस एक उत्तरदायित्व-शून्य व्यक्ति के कलुषित कार्य के कारण हमें भविष्य में अपने सम्वाददाताओं के साथ विशेष सतर्क व्यवहार करना पड़ेगा। जो लोग अपने व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष के गर्हित आवेगों से पीड़ित होकर इस प्रकार के निन्द्य कर्म कर बैठते हैं, उन्हें सोचना चाहिए कि वे अपनी मानसिक कुप्रवृत्तियों को तृप्त करने के लिए कितना भयङ्कर पाप करते हैं। उनके ऐसे एक कार्य का फल समाज के अनेक निर्दोष और निरीह प्राणियों के लिए घातक सिद्ध सकता है। आशा

है, भविष्य में कोई सज्जन इस प्रकार की नीचता का व्यवहार करके 'चाँद' की विमल चन्द्रिका को कलङ्कित करने का गर्हित प्रयत्न न करेंगे।

* * *

देशी नरेशों का पतन

राजस्थान और मध्य-भारत के सुयोग्य नरेशों ने एक युग में भारतीय स्वतन्त्रता की रक्षा की थी; किन्तु उन्हीं प्रतापशाली नरेशों के वंशज आज स्वयं तो पतित हैं ही, अभागे देश को भी रसातल की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं! आजकल के अधिकांश देशी नरेश जिस समय सिंहासन पर विराजमान रहते हैं, उस समय दीन प्रजा की पसीने की कमाई को विलासिता और ऐशो-आराम के सामान जुटाने में पानी की तरह बहाते हैं, वारुणी और वाराङ्गना की उपासना द्वारा देश के नैतिक वायुमण्डल को दूषित करते हैं और विदेशी शासकों का चरण-चुम्बन करके भारत के राष्ट्रीय गौरव को लज्जित करते हैं; किन्तु ये बातें उतन दुखद नहीं हैं, जितना उनकी विलासिता का वह नग्न और निर्लज्ज नृत्य, जो प्रायः उनके अधिकारच्युत किए जाने के बाद आरम्भ होता है। जिन मनुष्यों में आत्मसम्मान का लेश-मात्र भी अवशिष्ट रहता है, वे अधिकारच्युत होने के बाद लज्जा से अपना मुँह छिपा लेते हैं; किन्तु भारत के अधिकांश देशी नरेश इतने निर्लज्ज और पतित हो गए हैं कि जिस समय ब्रिटिश सरकार उन्हें दुश्चरित्र अथवा अयोग्य बताकर पदच्युत कर देती है, उस समय उनकी विलासिता और उच्छृङ्खलता घटने के बदले और भी अधिक भीषण रूप धारण कर लेती है! कोई नरेश पदच्युत होने के बाद एकाधिक रूपवती और पतिपरायणा रानियों के रहते हुए भी अमेरिकन युवती के प्रेम-पाश में आबद्ध होते हैं; तो कोई मरणासन्न वार्द्धक्य में आठवाँ और नवाँ विवाह रचाने की चेष्टा करते हैं!! कोई अपनी पैशाचिक वासनाओं को तृप्त करने के लिए मातृभूमि को त्याग कर फ्रान्स की भोगभूमि को अपना निवास-स्थल बनाते हैं, तो कोई भारत की ही पवित्र छाती पर अपनी पापमयी वासनाओं को चरितार्थ करने में लज्जित नहीं होते!

इन्दौर के भूतपूर्व नरेश तुकोजीराव होलकर का एक वेश्या के लिए राज्यच्युत होकर देश-विदेश मारे-मारे फिरने की दुखद स्मृति अभी भूलने भी न पाई थी कि झबुआ के अधिकारच्युत राजा उदयसिंह ने अपने निन्दनीय आचरण से भारतीय समाज के हृदय के दुख को पुनः ताज़ा कर दिया है। झबुआ के भूतपूर्व राजा उदयसिंह पिछले वर्ष गद्दी से उतार दिए गए थे और आजकल वे तुकोजीराव होलकर की परित्यक्त लीलाभूमि इन्दौर में निवास कर रहे हैं। राजा साहब की अवस्था लगभग ५४ वर्ष की है; स्वास्थ्य अच्छा नहीं है; सम्भव है थोड़े ही दिनों में इस क्षणभङ्गुर संसार को त्याग कर किसी अन्य लोक के पथ के पथिक बन जायँ! परन्तु इतने पर भी उक्त राजा साहब नया विवाह करने की चिन्ता में हैं! जोधपुर रियासत के समीप मौज़ा पाली की एक अष्टादश वर्षीय कन्या से आपका विवाह लगभग निश्चित भी हो चुका है। झबुआ की प्रजा और राज्य के कर्मचारी इस निन्दनीय विवाह का विरोध करके अपने औचित्य का ही पालन रहे हैं। किन्तु राजा साहब को उनके विरोध की कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता क्यों हो? वह लज्जा और शील को तो पहले ही तिलाञ्जलि दे चुके हैं! राजा साहब की इच्छा है कि किसी निरापद स्थान में चुपके से गँठबन्धन हो जाय, प्रजा रो-पीट कर आप चुप हो जायगी! राजा साहब का यह नवाँ विवाह है। उनका आठवाँ विवाह केवल सात या आठ महीने पहले हुआ था। पिछले १५ वर्षों में राजा साहब की पाँच रानियाँ मर चुकी हैं; इस समय तीन जीवित हैं। इन रानियों की दशा कितनी शोचनीय होगी, इसका कुछ अनुमान इनके आराध्यदेव के पतित जीवन से लगाया जा सकता है। सुनने में आया है कि राजा साहब इन रानियों के दुःख-सुख की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं देते। अब वार्द्धक्य की कामाग्नि में नवीं आहुति की तैयारी की जा रही है!

यह विवाह कितना हानिकारक और आपत्तिजनक है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। ऐसे विवाहों को हम विवाह कहने के लिए भी तैयार नहीं हैं। इस विवाह को यदि लड़कियों का व्यापार या व्यभिचार का प्रचार कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। लड़की के माता-पिता ने निश्चय ही गहरी रक़म लेकर अपनी

(शेष मैटर ७४८ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)
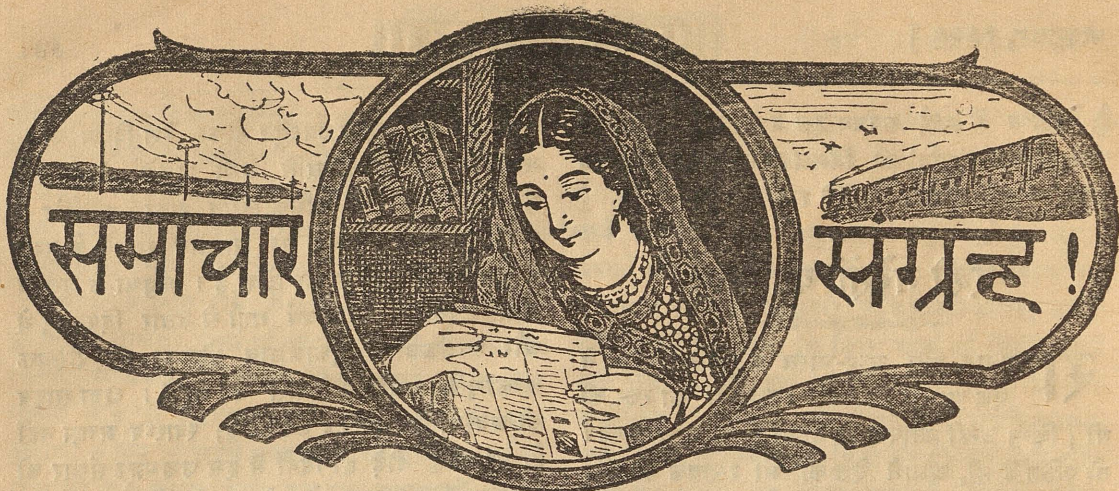
विधवा-विवाह-सहायक सभा

विगत २ अगस्त को कानपुर के प्रमुख सज्जनों की एक सभा "प्रताप" कार्यालय में हुई, जिसमें यह निश्चय किया गया कि कानपुर को केन्द्र बनाकर संयुक्त-प्रान्त के ज़िलों में विधवा-विवाह का प्रचार करने के लिए लाहौर की विधवा-विवाह-सहायक सभा की एक शाखा कानपुर में खोली जाय। सर्वसम्मति से श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा सभा के प्रधान नियुक्त हुए। श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी, डॉक्टर मुरारीलाल, डॉक्टर जवाहरलाल, लाला दीवानचन्द्र—प्रिन्सिपल डी० ए० वी० कॉलेज इत्यादि कार्यकारिणी समिति के सदस्य चुने गए। इस सभा का प्रधान उद्देश्य उचित उपायों से विधवा-विवाह का प्रचार करना है। सर्वसम्मति से सभा का सदस्य होने का चन्दा चार आना मात्र रक्खा गया। विवाह के उम्मीदवारों से किसी प्रकार की फ़ीस या दान नहीं माँगा जायगा। विवाह की इच्छुक विधवाओं की यथाशक्ति सहायता भी की जायगी। विधवा-विवाह-सम्बन्धी हिन्दी, उर्दू, अङ्गरेज़ी साहित्य मुफ़्त भेजा और बाँटा जायगा। सभा का उद्देश्य बहुत ही प्रशंसनीय है। आशा है, कार्य भी उद्देश्य के अनुरूप ही होगा।

* * *

जैन-समाज की घृणित दशा

पण्ढरपुर के आश्रम में एक जैन विधवा ७ मास का गर्भ लेकर पहुँची है। उसने गर्भ के सम्बन्ध में लगभग आधे दर्जन नाम लिए हैं, जिनमें एक मोटर-ड्राइवर है, दूसरा मुसलमान है, तीसरा महार है, इत्यादि। विधवा-विवाह के विरोधी आँखें खोल कर देखें!

* * *

लड़की भगाने का उचित दण्ड

इलाहाबाद-हाईकोर्ट के जस्टिस सेन महोदय ने हाल ही में मेरठ ज़िले के तीन बदमाशों की अपील ख़ारिज़ करके उनकी तीन-तीन साल की सज़ा बहाल रक्खी है। मामला यह था कि कालो नाम की १६ वर्ष की एक लड़की अपने पिता खुशाली के साथ सकेरी नामक गाँव में रहती थी। उसी गाँव के दो राजपूत और एक मुसलमान युवक काली को धर्म-भ्रष्ट करना चाहते थे। एक दिन काली अपने घर के सामने सड़क पर अकेली घूम रही थी। उसी समय दोनों राजपूत युवक वहाँ आ पहुँचे; एक ने उसका मुँह बन्द किया और दूसरा उसे उठाकर अपने घर ले गया, जहाँ उनका मुसलमान मित्र उनकी राह देख रहा था। तीनों ने काली को डरा-धमका कर लड़के का पोशाक पहनाया और उसे साथ लेकर रेलवे स्टेशन चले गए। ये लोग टिकट लेकर गाड़ी में बैठे ही थे कि काली का पिता खुशाली प्लेटफ़ार्म पर दौड़ता हुआ आया और तीनों गुण्डों को गाड़ी में बैठे हुए देख कर उसने पुलिस को सूचना दी। पुलिस ने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। मेरठ के दौरा जज ने तीनों को दोषी पाया और तीन-तीन साल की कड़ी क़ैद की सज़ा दी। इलाहाबाद-हाईकोर्ट के जस्टिस सेन महोदय ने अभियुक्तों की अपील ख़ारिज़ करते हुए टीका की है कि स्त्रियों और बच्चों की चोरी की जो रिपोर्टें मिलती हैं, उनसे भी यह अपराध अधिक भयङ्कर है। यह तभी बन्द हो सकता है, जब जनता और अदालत दोनों मिल कर इसे बन्द करने का प्रयत्न करें।

* * *

महिला व्यवस्थापक

बिहार और उड़ीसा प्रान्त की लेजिस्लेटिव काउन्सिल का शारदी अधिवेशन विगत ३ सितम्बर को राँची में आरम्भ हुआ। प्रथम दिन ही काउन्सिल ने एक बड़े ही शुभ कार्य से अपनी कार्रवाई का आरम्भ किया। काउन्सिल ने बहुत अधिक बहुमत से इस आशय का एक प्रस्ताव पास किया कि स्त्रियों को भी व्यवस्थापिका सभा का सदस्य निर्वाचित या नियुक्त होने का अधिकार दिया जाय। बिहार और उड़ीसा की स्त्रियाँ अब अपने प्रान्त की व्यवस्था करने में समुचित भाग ले सकेंगी। इस आदर्श व्यवस्था के लिए बिहार और उड़ीसा की काउन्सिल के सदस्य धन्यवाद के पात्र हैं।

* * *

गढ़वालियों का घोर पतन

गढ़वाल में दुगड्डा नाम का एक क़सबा है। उसके पास गोदी एक छोटा सा ग्राम है। वहाँ के लोग आम तौर से कन्या-विक्रय किया करते हैं। यह प्रथा इतनी भीषण हो गई है कि एक आदमी के विषय में समाचार मिला है कि अब तक वह अपनी लड़की को पाँच बार बेंच चुका है। पहली बार उसने ३००) लेकर लड़की की शादी की थी। कुछ दिनों के बाद उसी लड़की को ७५०) में बिजनौर में बेंच आया। तीसरी बार उस पापी बाप ने अपनी लड़की को ४००) में सहारनपुर ज़िले के एक गड़ेरिए के हाथ बेंचा। फिर उसी लड़की का सौदा रुड़की के एक मास्टर के हाथ तय हुआ। बाद में वह चाँदपुर के शुक्राचार्य नामक एक व्यक्ति के हाथ ८००) में बेंच दी गई। इस समय लड़की की उम्र क़रीब २० साल की है। अब तक पाँच बार बिक चुकी है! न जाने भविष्य में उसे कितनी बार और बिकना है! इस लड़की के बाप को इस व्यापार से मालदार होते देखकर तमाम दुगड्डा तथा आस-पास के लोग अपनी लड़कियों को देश में बेंचने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। इनकी देखादेखी ब्याही औरतें भी भगाई जाती हैं। जब हमारे शासक स्वयं इस प्रकार के अनर्थों में प्रायः देशी नरेशों के सहायक हो रहे हैं जैसा कि अन्यत्र बतलाया गया है—तो सरकारी सहायता की आशा करना पत्थर से पानी निकालने के समान दुराशा मात्र है!

* * *

कायस्थों में अन्तर्उपजातीय विवाह

बिहार प्रान्त में सम्भवतः श्रीवास्तव और अम्बष्ट कायस्थों में कोई अन्तर्उपजातीय विवाह अभी तक नहीं हुआ था। हर्ष की बात है कि एक ही जाति के भीतर के अनेक भेद-प्रभेद अब धीरे-धीरे हटते जा रहे हैं। हाल ही में भागलपुर के प्रसिद्ध रईस बा० कमलेश्वरी सहाय (अम्बष्ट) की लड़की की शादी मुन्शी शमशेरजङ्ग बहादुर (श्रीवास्तव)—डिपुटी मैजिस्ट्रेट के सुपुत्र श्री० रणवीरजङ्ग बहादुर के साथ हुई है। इस विवाह के अवसर पर बिहार प्रान्त के बहुत से प्रसिद्ध व्यक्ति, जैसे श्री० सच्चिदानन्दसिंह, बा० ब्रजकिशोर प्रसाद, सर ज्वालाप्रसाद, राजा राधिकारमणसिंह, रायबहादुर द्वारकानाथ, बा० श्यामनन्दनसहाय, कुमार गङ्गानन्दसिंह, बा० बलदेवसहाय, रायबहादुर भगवतीसहाय इत्यादि उपस्थित थे। इन महापुरुषों की उपस्थिति से कायस्थ-जाति में अन्तर्उपजातीय विवाहों को जो प्रोत्साहन मिला है, उससे आशा की जाती है कि इस प्रकार के विवाह बिहार प्रान्त के कायस्थों में शीघ्र ही प्रचलित व्यवहार का रूप धारण कर लेंगे।

* * *

मारवाड़ी-समाज की दुरवस्था

मिर्ज़ापुर का समाचार है कि एक मारवाड़ी-बालिका, जिसकी अवस्था १५-१६ वर्ष की है और जिसका विवाह हो चुका है, पुलिस के द्वारा एक वेश्या के यहाँ बरामद की गई है। वह अपने ससुराल वालों के अत्याचारों से तङ्ग आकर वेश्या के घर पहुँची थी, किन्तु सौभाग्यवश उसके धर्म का नाश होने के पहले ही उसकी रक्षा हो गई! मारवाड़ियों के मन्दिरों की भी बहुत सी शिकायतें सुनी जा रही हैं; पर मारवाड़ी-समाज को किसी बात की चिन्ता नहीं! मारवाड़ी समाज के सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से 'चाँद' का आगामी अङ्क "मारवाड़ी अङ्क" के नाम से एक वृहत् विशेषाङ्क निकल रहा है, पर सुनने में आया है कि कलकत्ते में अभी से—बिना देखे ही—उसके बहिष्कार के लिए कमिटियाँ बन रही हैं। परमात्मा से हमारी प्रार्थना है कि वह मारवाड़ी-भाइयों को अपना शत्रु और मित्र पहिचानने की क्षमता प्रदान करें!

* * *

कुमारी का बलिदान

अन्धविश्वासों से हिन्दू-समाज किस प्रकार जर्जर हो रहा है, इसका एक शोचनीय दृष्टान्त हाल ही में पञ्जाब की एक भयङ्कर घटना से प्राप्त हुआ है। जालन्धर ज़िले में मुसम्मात कौर नाम की एक सिक्ख स्त्री थी, जिसकी अवस्था लगभग २५ वर्ष की थी। उसकी शादी ९ वर्ष पहले हुई थी, पर अभी तक उसके कोई सन्तान न थी। लगभग ३ महीने पहले एक दिन वह एक फ़क़ीर के पास गई और उससे कहा कि मेरे लिए तुम देवी की पूजा कर दो, जिससे देवी प्रसन्न होकर मुझे सन्तान दें। फ़क़ीर ने स्त्री को कुछ दवाइयाँ दीं और उसके साथ चण्डी-पाठ किया। फ़क़ीर ने स्त्री को यह भी सम्मति दी कि तुम ९ कुमारी बालिकाओं को भोजन कराओ, और कहा कि प्राचीन काल में देवी को प्रसन्न करने के लिए एक कुमारी बालिका की बलि दी जाती थी, किन्तु आजकल ऐसा करना क़ानूनन् जुर्म है और ऐसा करने की कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं। मुसम्मात कौर दो महीने तक देवी की पूजा करती रही। पूजा समाप्त हो जाने के बाद एक दिन उसने अपने पति से कुमारी बालिका के बलिदान की चर्चा की। पति ने उसे बहुत डाँटा और कहा कि ऐसी मूर्खता कभी न करना। पर स्त्री न मानी। एक दिन जब उसका पति घर से बाहर चला गया, तो उसने अपने पड़ोस की एक चार वर्ष की बच्ची को फुसला कर घर के भीतर बुलाया और उसकी हत्या करके उसके कटे हुए शरीर पर खड़े होकर मन्त्रों का जाप करते हुए स्नान किया। इसके बाद मृतक बालिका के शरीर को घर में ही गाड़ कर वह एक अन्य गाँव में भाग गई। अन्त में वह पकड़ी गई और उसने अदालत के सामने अपना अपराध स्वीकार किया। जालन्धर के सेशन जज ने हत्या के अपराध में उसे फाँसी की सज़ा सुनाई। स्त्री-शिक्षा के अभाव में हिन्दू-समाज का जीवन कितना अन्धकारमय हो गया है, इसका यह घटना एक क्षुद्र उदाहरण मात्र है।

(७४५ पृष्ठ का शेषांश)

कन्या के जीवन के सर्वनाश किए जाने की अनुमति दी होगी। धर्म के ठेकेदारों और समाज के व्यवस्थापकों की आँखों के सामने यह दुराचार हो रहा है; पर उन्हें इसे रोकने की चिन्ता नहीं। जिन धर्माध्यक्षों और समाज के व्यवस्थापकों की जीविका ही ऐसे दुराचारों से चलती हो, उनसे यह आशा करना ही व्यर्थ है। पर हमारी समझ में नहीं आता कि राजस्थान का नवयुवक-समुदाय क्यों निश्चेष्ट है! कामुक बुड्ढे और लोभी पुरोहित तो अपनी पाप-लीला का जाल फैलाकर इस दुनियाँ से चल बसेंगे; पर उनके पापों का फल भोगना होगा नवयुवक-समुदाय को। ऐसी अवस्था में राजस्थान के नवयुवकों को शीघ्रातिशीघ्र ऐसे अत्याचारों का, चाहे वे किसी पतित नरेश के द्वारा किए जाते हों, अथवा किसी दरिद्र और लोभी माता-पिता के द्वारा, विरोध करने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए। भारतमाता जब तक नवयुवकों के बलिदान से सन्तुष्ट न होंगी, तब तक वह अपने विमल-विशुद्ध-तेजोमय रूप में प्रकट नहीं हो सकतीं!

* * *

गोविन्द-भवन की पुनरावृत्ति

कलकत्ते के गोविन्द-भवन नाम की नारकीय संस्था से पाठकगण भली प्रकार परिचित हैं। सुनने में आया है कि आजकल बीकानेर के मन्दिरों में गोविन्द-भवन की पुनरावृत्ति की जा रही है। बीकानेर के मन्दिरों में रासलीला के नाम पर खुलेआम व्यभिचार किया जा रहा है, पर बीकानेर-निवासियों के कान पर जूँ नहीं रेंगती। भले घर की बहू-बेटियाँ रासलीला में भाग लेती हैं और दुराचारी कीर्तनकारों के हाथ उनके सतीत्व और सम्मान का हरण किया जाता है। अभी थोड़े ही दिनों की बात है कि एक कीर्तनकार से एक डागे की स्त्री के गर्भ रह गया और वह धूर्त कीर्तनकार कई हज़ार का माल लेकर भाग गया। जब बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बेजोड़-विवाह आदि रोकने की चेष्टा की जाती है, तब तो धर्मध्वजियों की आँखें लाल-पीली हो जाती हैं; पर अपनी आँखों के सामने अपनी बहुओं और बेटियों का सतीत्व हरण होते हुए देखकर उन्हें लज्जा भी नहीं आती! इससे अधिक कुछ लिखने से हमें भय होता है कि फिर कहीं मारवाड़ी-समाज 'चाँद' का बहिष्कार न कर दे!!

वार्षिक मूल्य		छः माही मूल्य
६॥)		३॥)

वर्ष ७, खण्ड २

मई, सन् १९२९ से अक्टूबर, सन् १९२९ ई० तक

सम्पादक—

श्रीरामरखसिंह सहगल

सञ्चालिका—

श्रीमती विद्यावती सहगल

'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,

इलाहाबाद

मुद्रक—

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,

इलाहाबाद

१—गद्य

* * *

गृह-विज्ञान

* * *

* * *

* * *

रङ्ग-भूमि

(सम्पादकीय)

* * *

विविध-विषय

* * *

विश्व-वीणा

* * *

सम्पादकीय विचार

* * *

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ

२—पद्य

* * *

३—चित्र-सूची

१—तिरङ्गे

२—आर्ट-पेपर पर रङ्गीन

३—सादे

प्रत्येक

सन्तानहीन माता

की

हार्दिक उत्कण्ठा

कौन स्त्री ऐसी है, जो सन्तानों के लिए अपने हृदय में भीतर ही भीतर उत्सुक न हो ? माता का पद ऐसा स्पृह्य तथा सुखमय है कि सभी स्त्रियाँ इसे प्राप्त करना चाहती हैं—परन्तु कितनी ही ऐसी हैं जिनकी स्वप्नमयी आकांक्षाएँ व्यर्थ हो जाती हैं।

आन्तरिक इन्द्रियों के रोग के कारण आशाएँ सफल नहीं होतीं। सभी औषधियाँ की जाती हैं, पर व्यर्थ।

पर "फ़ेलूना" स्त्रियों की एक अपूर्व दवा है, जो कई वर्षों के विस्तृत प्रयोग का फल है। फ़ेलूना की सहायता से सहस्रों स्त्रियों के सुख-स्वप्न सच्चे सिद्ध हुए हैं। यह सभी स्त्री-रोगों का मूल नाश कर देता है और सारे शरीर को शुद्ध करके ठीक तथा पुष्ट कर देता है। स्त्री-सुलभ सभी दुखदायक व्याधियों को दूर भगाता है—और सबसे बड़ी बात यह कि प्रकृति के महत्त्वपूर्ण उत्पादन-कार्य में अचूक सहायता देता है।

सन्तानोत्पत्ति के लिए जो स्त्रियाँ अस्वस्थ हैं, उन्हें अब निराश न होना चाहिए। 'फ़ेलूना' उनकी बड़ी सहायता करेगा और हर हालत में स्वास्थ्य को शीघ्र ही अतीव उन्नत बना देगा।

भारतवर्ष, बर्मा तथा लङ्का में सभी केमिस्टों के यहाँ २।) फ़ी बोतल बिकता है। सीधे सोल एजण्टों के यहाँ से भी इस पते पर मँगाया जा सकता है—

पटेल एण्ड धोंडी, पोस्ट-बॉक्स ८३८, बम्बई अथवा पोस्ट-बॉक्स ६२०, कलकत्ता

Printed and Published by R. SAIGAL—Editor—at The Fine Art Printing Cottage, Twenty-eight, Edmonstone Road, Allahabad.